ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी-जैन ग्रन्थमाला—संस्कृत ग्रन्थाङ्क १९

व्रत-तिथि-निर्णय

श्री नेमिचन्द्र शास्त्री



भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी-जैन-संस्कृत-ग्रन्थमाला सम्
डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए० डी० लि
डॉ० ए० एन० उपाध्याय, एम० ए० डी०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण
१९५६ ई०
मूल्य तीन रुपये

ओम्प्रक
ज्ञानमण्ड
कबीरचौरा, बना

पूज्य गुरुदेव

श्रीमान् पण्डित कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री

के करकमलोंमें

सादर समर्पित

श्रद्धावनत

नेमिचन्द्र शास्त्री

विषय-सूची

जा रहा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रन्थसे उक्त कमी सर्वथा दूर हो जायगी, पर यह निश्चित है कि बहुत कुछ अंशोंमें इस लघुकाय कृति द्वारा व्रत-पालनमें सहायता प्राप्त होगी। और जबतक इस विषयपर विशालकाय ग्रन्थ सङ्कलित नहीं होता है, तबतकके लिए यह ग्रन्थ निर्णयसिन्धुके समान ही उपयोगी सिद्ध होगा।

त्यौहारोंकी व्यवस्था

विजयादशमी, होली प्रभृति त्यौहारोंको जैन भी अन्य धर्मावलम्बियोंके साथ मनाते हैं। इन त्यौहारोंका जैनधर्मकी दृष्टिसे कोई महत्त्व नहीं है। इस प्रसंगमें कतिपय धार्मिक त्यौहारोंकी तिथि एवं विधि विधानव्यवस्था पर प्रकाश डाला जायगा।

जैन आगमके अनुसार नवीन वर्षका प्रारम्भ श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को होता है। इस दिन भगवान् महावीरकी प्रथम दिव्य ध्वनि खिरी थी।

वीरशासन जयन्ती व्यवस्था

बताया गया है कि युगका प्रारम्भ, सुषम सुषमादि कालचक्र अथवा उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप कालों का आरम्भ इसी तिथिसे हुआ है। युगकी समाप्ति आषाढ़ पूर्णिमाको होती है, पश्चात् श्रावण कृष्ण प्रतिपदाको अभिजित् नक्षत्र, बालवकरण और रौद्रमुहूर्त्तमें युगका आरम्भ हुआ करता है। यथा—

'सावणबहुले पाडिवरुद्दमुहुत्ते सुहोदये रविणो।
अभिजस्स पढमजोए जुगस्स आदी इमस्स पुढं॥[1]

धवला टीका, त्रिलोकसार, लोकविभाग आदि धार्मिक ग्रन्थोंके अलावा ज्योतिष्करण्डक, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति प्रभृति ज्योतिषविषयक ग्रन्थोंसे भी उक्त कथनका समर्थन होता है।

भगवान् महावीरका प्रथम दिव्योपदेश इसी तिथिको हुआ था। इसकी महत्ताके सम्बन्धमें श्री जुगलकिशोरजी मुख्तारका अभिमत है कि

1 तिलोयपण्णत्ती १।७०।

जा रहा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रन्थसे उक्त कमी सर्वथा दूर हो जायगी, पर यह निश्चित है कि बहुत कुछ अंशोंमें इस लघुकाय कृति द्वारा व्रत व्यवस्थामें सहायता प्राप्त होगी। और जबतक इस विषयपर विशालकाय ग्रन्थ संकलित नहीं होता है, तबतकके लिए यह ग्रन्थ निर्णयसिन्धुके समान ही उपयोगी सिद्ध होगा।

त्यौहारोंकी व्यवस्था

विजयादशमी, होली प्रभृति त्यौहारोंको जैन भी अन्य धर्मावलम्बियोंके साथ मनाते हैं। इन त्यौहारोंका जैनधर्मकी दृष्टिसे कोई महत्त्व नहीं है। इस प्रकरणमें कतिपय धार्मिक त्यौहारोंकी तिथि एवं विधि विधान व्यवस्था पर प्रकाश डाला जायगा।

जैन आगमके अनुसार नवीन वर्षका प्रारम्भ श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को होता है। इस दिन भगवान् महावीरकी प्रथम दिव्य ध्वनि खिरी थी।

वीरशासन जयन्ती व्यवस्था

बताया गया है कि युगका प्रारम्भ, सुषम सुषमादि कालचक्रका अथवा उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप कालों का आरम्भ इसी तिथिसे हुआ है। युगकी समाप्ति आषाढी पूर्णिमाको होती है, पश्चात् श्रावण कृष्ण प्रतिपदाको अभिजित् नक्षत्र, बालवकरण और रौद्रमुहूर्तमें युगका आरम्भ हुआ करता है। यथा—

'सावणबहुले पाडिवरुद्दमुहुत्ते सुहोदये रविणो।
अभिजिस्स पढमजोए जुगस्स आदी इमस्स पुढं॥

धवला टीका, त्रिलोकसार, लोकविभाग आदि धार्मिक ग्रन्थोंके अलावा ज्योतिष्करण्डक, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति प्रभृति ज्योतिषविषयक ग्रन्थोंसे भी उक्त कथनका समर्थन होता है।

भगवान् महावीरका प्रथम दिव्योपदेश इसी तिथिको हुआ था। इसकी महत्ताके सम्बन्धमें श्री जुगलकिशोरजी मुख्तारका अभिमत है कि

---

१ तिलोयपण्णत्ती १।७०।

"कृतज्ञता और उपकारस्मरण आदिकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह पर्व प्रतिपद् तिथि दूसरी अनादि तिथियोंसे किसी भी बातमें अधिक महत्व रखती है, क्योंकि दूसरी पर्वस्वरूप तिथियाँ जब अपने विशेष निमित्तकारणोंसे महत्व रखती हैं, तब यह तिथि पतित, दलित और मार्गच्युत प्राणियोंके उत्थान एवं कल्याणके साथ संबंध रखती है और इसीलिए [illegible] कृतज्ञ प्राणियोंके द्वारा [illegible] इसका इतना अधिक महत्त्व दिया जाता है"।

धवलसिद्धान्त और तिलोयपण्णत्तिमें इस तिथिको [illegible] तिथि कहा गया है। यथा —

'वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले।
पाडिवदपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्हि॥[1]
× × × ×
[2]छासट्ठिदिवसविरहिद चउणाणकालम्मि परिसमत्तम्मि।
तेणागयस्स [illegible] ॥
वासस्स पढममासे सावणणामम्मि बहुलपडिवाए।
अभिजीणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्मतित्थस्स॥

अर्थात्—अवसर्पिणीके चतुर्थकालके अन्तिम भागमें तैंतीस वर्ष, आठ माह और पन्द्रह दिन शेष रहनेपर वर्षके श्रावण नामक प्रथम महीनेमें कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके दिन अभिजित् नक्षत्रके उदित रहनेपर धर्मतीर्थ उत्पन्न हुए।

वीरशासन जयन्ती श्रावण कृष्णा प्रतिपदाको अभिजित् नक्षत्रके होनेपर ही सम्पन्न की जानी चाहिए। अभिजित् नक्षत्रका प्रमाण आगममें १९ घटी माना गया है। उत्तराषाढ़ा नक्षत्रकी अन्तिम १५ घटियाँ तथा श्रवणा नक्षत्र आदिकी ४ घटियाँ ही अभिजित्की घटियाँ होती हैं। प्राय

१ धवलाटीका प्रथम भाग पृ० ६३।
२ तिलोयपण्णत्ती प्रथमाधिकार गाथा ६८-६९।

आषाढी पूर्णिमा पूर्वाषाढाके अन्त और उत्तराषाढाके आदिमें पड़ती है। पूर्णिमाके दिन उदयमें पूर्वाषाढा नक्षत्र रहता है तथा प्रतिपदाके प्रात कालके समय उत्तराषाढा नक्षत्र आ हो जाता है। अतएव वीर शासन जयन्ती उसी तिथिको मनानी चाहिए जिस तिथिको उत्तराषाढा की अन्तिम १५ घटियाँ तथा श्रवण नक्षत्रकी ४ घटियाँ आवें। यह स्थिति कभी कभी द्वितीया तिथिको भी आ सकती है, क्योंकि नक्षत्रमानके अनुसार अभिजित् द्वितीयाको आ सकता है। वीरशासन जयन्तीमें अभि जित् मानकी प्रधानता है। अभिजित्मान नक्षत्रकाल गणनाके अनुसार लिया गया है और तिथि चान्द्रमानके अनुसार गृहीत है। अत दोनों मानोंका कभी कभी सन्तुलन नहीं होगा तथा कभी सन्तुलन हो भी जाया करेगा। यत तिथि मान जितना घटता बढ़ता है, नाक्षत्रमानमें इससे कम हीनाधिक्ता होती है। अत दोनों मानोंमें प्राय एक वर्षमें ५ दिनका अन्तर होता है, इससे कभी कभी श्रावण प्रतिपदाके दिन—जिस दिन उदयकालमें प्रतिपदा हो, उस दिन अभिजित् नक्षत्र नहीं भी आ सकता है। इस प्रकारकी स्थितिमें द्वितीया तिथिको ही अभिजित् पड़ेगा, अत अभिजित् नक्षत्रके दिन ही वीरशासन प्रवृत्तिका समय आवेगा। उदा हरणार्थ या कहा जा सकता है कि आषाढ़ा पूर्णिमा सवत् २००६में मंगल वारको २० घटी १५ पल है। इस दिन मूल नक्षत्रका प्रमाण १८ घटा १५ पल है तथा बुधवारको प्रतिपदा १५ घटी ३० पल है और पूर्वाषाढा २० घटी ३० पल है। इस स्थितिमें वीरशासन जयन्ती किस दिन मनाई जानी चाहिए।

मगलवारको पञ्चाङ्गम अकित पूर्णिमा २०।१५ है। अत अहोरात्र प्रमाणमेंसे पूर्णिमाको घटाया तो अनकित प्रतिपदाका प्रमाण हुआ— (६०—२०।१५) = ३९।४५ अकित प्रतिपदा, इसम पञ्चाग अकित प्रतिपदाको जोड़ा तो ३९।४५ + १५।३० = ५५।१५ कुल प्रतिपदा। किन्तु बुधवारको १५ घटी ३० पल ही प्रतिपदाका मान है। इस दिन मश्न निकालना है कि कौन सा पड़ता है। (६०।० – १८।१५ =

४१।८' अनवित पूर्वाषाढा, अत ४१।४५ + २०।३० पंचाङ्ग अंकित =६२।१५ पूर्वाषाढाका कुल मान हुआ, किन्तु बुधवारको २० घटी ३० पल ही पूर्वाषाढा है। इसके पश्चात् उत्तराषाढाका आरम्भ हो जाता है। अत बुधवार को (६०।०—२०।३०) = ३९।३० उत्तराषाढा है। बुधवारको श्रवण नहीं आ सकेगा, अत श्रवणकी प्रथम चार घटिया हमें नहीं मिलेंगी। ऐसी स्थितिमें अभिजित् नक्षत्र, जो कि उत्तराषाढा और श्रवणके सयोगसे निष्पन्न होता है, गुरुवारको मिलेगा। इस दिन द्वितीया तिथि हो जायगी, ऐसी स्थितिमें वीर शासन जयन्ती गुरुवार द्वितीयाको ही मनानी होगी। निष्कर्ष यह है कि वीरशासन जयन्ती अभिजित् नक्षत्रके होनेपर ही सम्पन्न करना अधिक उचित है। यह काल मध्यममानसे प्राय सर्वदा प्रात ८ ९ बजेके मध्यमें आयगा। अतएव इसदिन भगवान् महावीर स्वामीकी पूजा करना, उपवास करना तथा भगवान्‌के उपदेशोंके प्रचारके लिए सभा आदिका आयोजन करना चाहिए। साधारणतया जिसदिन प्रतिपदा पञ्चागमें उदयकालमें हो रहती है उस दिन प्राय अभिजित् नक्षत्र भी आ ही जाता है। अत यहाँ प्रतिपदाका मान उदयकालीन ही ग्रहण करना चाहिए। दो प्रतिपदाएँ होनेपर जो प्रतिपदा उदयकालमें १० घटी या इससे अधिक हो, उसीमें यह दिन पडता है। अतएव अभिजित् नक्षत्रके आनेपर ही प्रतिपदाको ग्रहण करना शास्त्रसम्मत है और यही धर्मतीर्थके प्रवर्तनका काल है।

भगवान् पार्श्वनाथ का निर्वाण-दिवस भगवान् पार्श्वनाथका निर्वाण दिवस प्राय सर्वत्र मनाया जाता है। भगवान् पार्श्वनाथके निर्वाणके सम्बन्धमें बताया गया है—

सिदसत्तमीपदोसे सावणमासम्मि जम्मणक्खत्ते।
सम्मेदे पासजिणो छत्तीसजुदो गदो मोक्खं॥

—तिलोयपण्णत्ती ४।१२०७

अर्थात्—पार्श्वनाथ जिनेन्द्र श्रावण मासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको

[illegible] हुए [illegible] ।

उपर्युक्त [illegible] है—

> [illegible] ।
> [illegible] ॥
> [illegible] ।
> [illegible] ॥
>
> —[illegible]

[illegible]—[illegible] और [illegible] किया ।

उपर्युक्त दोनों तिथियोंमें तिथि एक ही है, पर मासमें अन्तर है । अब विचार यह करना है कि भगवान् [illegible] किया जाय । [illegible] है, वही [illegible] माना जाता है [illegible] है । [illegible] किया जाता है । [illegible]—"प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते" अर्थात् सूर्यके अस्त होनेके बाद दो घटिका समयको प्रदोषकाल कहते हैं । अमरकोशमें प्रदोषका अर्थ—"प्रदोषो रजनीमुखम्" अर्थात् रजनी—रात्रिके प्रारम्भ—[illegible] नाम प्रदोष है । [illegible] जाती है । किन्तु निर्णयसिन्धुमें प्रदोष [illegible] बताया गया है । [illegible] लिए [illegible] रात्रिको भी प्रदोषके अन्तर्गत लिया गया है ।

भगवान् [illegible] काल यदि प्रदोष [illegible] लिया जाय तो भी [illegible] है क्योंकि भगवान्ने रात्रिमें [illegible] लिया है । उपर्युक्त [illegible] "[illegible]"

अर्थात् उषाकाल माना गया है। यह निश्चित है कि तिलोयपण्णत्ती उत्तर पुराणसे पहलेकी रचना है तथा भगवान्के निर्वाणकालकी मान्यता प्रदोषकालकी अधिक प्रामाणिक है। प्रदोषकालमें निर्वाण होनेसे भी निर्वाणोत्सव जनतामें प्रातःकाल ही होता चला आ रहा होगा। इसी कारण उत्तरपुराणकारने भगवान् पार्श्वनाथका निर्वाणकाल उषाकाल मान लिया है। अतएव भगवान् पार्श्वनाथका निर्वाणोत्सव सप्तमी तिथिकी रात हो जानेपर अष्टमीके प्रातःकालमें होना चाहिए। यदि सप्तमीको विशाखा नक्षत्र मिल जाय तो और भी उत्तम है, अन्यथा सप्तमीकी समाप्ति होनेपर अष्टमीको प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व ही निर्वाणोत्सव सम्पन्न करना अधिक शास्त्रसम्मत है। यहाँ अष्टमी तिथिका आरम्भ नहीं माना जायगा, क्योंकि सूर्योदयके पहले तक सप्तमी ही मानी जायगी। इस प्रकारके उत्सवोंमें उदया तिथि ही ग्रहण की जाती है। जिन स्थानोंपर षष्ठीकी समाप्ति और सप्तमीके प्रातःमें निर्वाणोत्सव सम्पन्न किया जाता है, यह भ्रान्त प्रथा है। इसी प्रकार अपराह्नमें निर्वाणोत्सव मनाना भी भ्रान्त है।

रक्षा-बन्धन

रक्षाबन्धन पर्वकी कथा प्रायः विदित ही है। इस दिन ७०१ मुनियोंकी रक्षा होनेके कारण ही यह पर्व रक्षाबन्धनके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। हरिवंशपुराणके बीसवें सर्गमें मुनि विष्णुकुमारका आख्यान आया है। रक्षाबन्धनकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें उदया तिथि ही ग्रहण की गई है। इसका प्रधान कारण यह है कि उदयकालीन पूर्णिमा जिस दिन होगी, उस दिन श्रवण नक्षत्र आ ही जायगा। गणितका नियम इस प्रकार का है कि चतुर्दशीकी रात्रिको प्रायः श्रवण नक्षत्र आ ही जाता है। श्रुतसागर मुनिने मिथिलामें चतुर्दशीकी रात्रिको श्रवण नक्षत्रका कम्पन देखा था। आराधनाकथाकोशमें बतलाया गया है—

मिथिलायामथ ज्ञानी श्रुतसागरचन्द्रवाक्।
मुनीन्द्रा कम्पितं नक्षत्रं श्रवणं श्रमणोत्तम ॥

कम्पमान समालोक्य हाहाकार विधाय च।
उपसर्गा मुनीन्द्राणां घतते महता महान्॥

इससे स्पष्ट है कि श्रवण नक्षत्र चतुर्दशीकी रातमें प्राय आ जाता है। गणितसे भी श्रवण चतुर्दशीके सन्ध्याकालमें आ ही जाता है। परन्तु यह चतुर्दशी भी उदया होनी चाहिए। उदयकालमें एकाध घटी होने पर भी चतुर्दशीकी रातमें श्रवण आ जायगा। अत रक्षाबंधन पूर्णिमाको श्रवणके रहते हुए सम्पन्न किया जायगा।

इस पर्वके दिन विष्णुकुमार मुनिकी पूजाके पश्चात् यज्ञोपवीत बदलनेकी क्रिया भी सम्पन्न की जाती है। बताया गया है—

श्रावणे मासि नक्षत्रे श्रवणे पूर्ववत्क्रियाम्।
पूजाहोमादिकं कुर्यान्मौञ्जीं कक्ष्या परित्यजेत्॥

श्रावण मासमें पूर्णिमाके दिन श्रवण नक्षत्रके होने पर हवन, पूजन आदिके पश्चात् यज्ञोपवीतको बदलना चाहिए। ज्योतिषशास्त्रमें भी आया है—

सम्प्राप्ते श्रावणस्यान्ते पौर्णमास्यां दिनोदये।
स्नानं कुर्वीत मतिमान् श्रुतिस्मृतिविधानत॥

हवन करते समय इस बातका ध्यान रखना होगा कि हवनके समयमें भद्रा न हो। भद्राकालमें हवन करना वर्जित है[1]। अत पूर्णिमाको जिस समय भद्रा हो, उस कालको त्यागकर अन्य समयमें हवन क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए। यदि प्रात काल भद्रा हो तो मध्याह्नमें और मध्याह्नोत्तर भद्रा होने पर प्रात हवन कार्य कर लेना चाहिए।

१—भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा।
श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी॥

× × ×

नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमे यज्ञक्रियासु च।
उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते॥

साधारणतया मध्याह्के अभावमें हवन मध्याह्नोत्तरकालमें किया जाता है। बताया गया है "ततोऽपराह्णसमये हवनकार्यं यज्ञोपवीतधारणकार्यञ्च करणीय प्रतिष्ठे।" अतः अपराह्णकालमें अर्थात् एक बजे हवनकार्यको सम्पन्न करना चाहिए।

यज्ञोपवीत बदलनेका मन्त्र यह है—

ओं नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकृतायाहं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा।

व्रती व्यक्तियोंको—रक्षाबन्धनव्रत करनेवालोंको पूर्णिमाका उपवास करना चाहिए। इस दिन विष्णुकुमार मुनिकी पूजा तथा अन्य गुरुओंकी पूजाके पश्चात् मध्याह्नमें हरिवंशपुराणका स्वाध्याय करना चाहिए। तीनों कालोंमें "ओं ह्रीं अर्हं श्रीचन्द्रप्रभजिनाय कर्मभस्मविधूनन सर्वशान्तिवात्सल्योपवर्द्धन कुरु कुरु स्वाहा" मन्त्रका जाप करना चाहिए। रात्रि जागरण करते हुए भक्तामरस्तोत्रका पाठ एवं कल्याणमन्दिरस्तोत्रका पाठ करना चाहिए। प्रातः प्रतिपदाके दिन नित्य कर्मसे निवृत्त होकर भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामीकी पूजाके उपरान्त णमोकार मन्त्रकी तीन मालाएँ जपनी चाहिए। अनन्तर एक अनाज का भोजन—दूध भात या भात-दही अथवा रोटी दूधका आहार करना चाहिए। नमक, मीठा, फल और शाक-सब्जीका त्याग इस दिन करना होता है। केवल एक अन्नसे पारणा की जाती है। यह व्रत आठ वर्षों तक किया जाता है, पश्चात् उद्यापन कर दिया जाता है। इस दिन श्रेयांसनाथ भगवान्का निर्वाण भी हुआ है।

भाद्रपद मासमें अनेक पर्व और व्रत हैं, किन्तु उनका विवेचन व्रतोंके अन्तर्गत किया जायगा। इस महीनेके केवल वासुपूज्य निर्वाणोत्सवकी व्यवस्था पर प्रकाश डाला जा रहा है। वासुपूज्य स्वामीके निर्वाणोत्सव दिवसके सम्बन्धमें आचार्योंमें मतभिन्नता है। तिलोय पण्णत्तीमें बताया गया है—

वासुपूज्य-निर्वाण दिवस

[१]फग्गुणबहुले पचमि अवरह्ने अस्सिणीसु चंपाए ।
रुयाहियछसयजुदो सिद्धिगदो वासुपुज्जजिणो ॥

अर्थात् वासुपूज्य जिनेन्द्र फाल्गुन कृष्णा पञ्चमीके दिन अपराह्नकाल में अश्विनी नक्षत्रके रहते छह सौ एक मुनियोंसे युक्त होते हुए चम्पापुर से सिद्धिको प्राप्त हुए हैं।

उत्तरपुराणमें उपर्युक्त मान्यता दिखलाई पड़ती है। उसमें बतलाया गया है–

अथमन्दरशैलस्य सानुस्थानविभूषणे ।
वने मनोहरोद्याने पल्यङ्कासनमाश्रित ॥
मासे भाद्रपदे ज्योत्स्नाचतुर्दश्यापराह्णके ।
विशाखायां ययौ मुक्तिं चतुर्णवतिसंयतैः ॥
परिनिर्वाणकल्याणपूजाप्रान्ते महोत्सवैः ।
अवन्दिषत ते देवं देवाः सेवाविचक्षणाः ॥

—उत्तरपुराण पर्व ५८, श्लोक० ५२ ५४

अर्थ—जब भगवान् वासुपूज्य स्वामीकी आयुम एक मास अवशेष रह गया तब योग निरोधकर रजतमालिका नामक नदीके किनारेकी भूमि पर वर्तमान मन्दरगिरिकी शिखरको सुशोभित करनेवाले मनोहरोद्यानमें पर्यङ्कासनसे स्थित हुए तथा भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीके दिन अपराह्नके समय विशाखा नक्षत्रमें चौरानबे मुनियोंके साथ मुक्तिको प्राप्त हुए सेवा करनेमें अत्यन्त निपुण देवोंने निर्वाणकल्याणकको पूजाके उपरान्त बड़े उत्सवके साथ भगवान्की वन्दना की।

यद्यपि प्राचीनताकी दृष्टिसे वासुपूज्य स्वामीका निर्वाणोत्सव फाल्गु[न] कृष्ण पञ्चमीको ही मनाया जाना चाहिए, किन्तु ज्योतिषशास्त्रकी गणना[के] *अनुसार फाल्गुन कृष्णा पञ्चमीको अश्विनी नक्षत्रकी स्थिति नहीं घटि[त]*

१—तिलोयपण्णत्ती अधिकार ४, गाथा ११९६।

—निर्णयसिन्धु पृ० ९४।

होती है। क्योंकि यह नियम है कि प्रत्येक महीनेकी पूणमासीको उस महीनेका नक्षत्र अवश्य आ जाता है। पूर्णिमाओंके दिन पड़नेवाले नक्षत्रोंके नामोंके आधारपर महीनोंका नामकरण किया गया है। जैसे चैत्र महीनेकी पूर्णिमाको चित्रा नक्षत्र पड़नेसे यह मास चैत्र कहलाया, अगली पूर्णिमाको विशाखा नक्षत्र पड़नेसे अगला मास वैशाख कहलाया, इससे अगले महीनेकी पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्र पड़नेसे वह अगला मास ज्येष्ठ हुआ। इसी प्रकार आगेके महीनोंका नाम भी पूणमासियोंके नक्षत्रोंके आधारपर रखा गया है। इस स्थितिके आधारपर विचार करनेसे अवगत होता है कि फाल्गुन पूर्णिमाको पूर्वाफाल्गुनीका अन्त और उत्तराफाल्गुनी का आरम्भ होना चाहिए। अश्विनी नक्षत्रकी स्थिति फाल्गुन शुक्ला पञ्चमीको आती है। अत नक्षत्र और तिथिका समन्वय फाल्गुन शुक्ला पञ्चमीको हो जाता है। इस प्रकारसे हम इस निष्कर्षपर भी पहुँचते हैं कि 'फग्गुणबहुले' के स्थानपर 'फग्गुणसुक्के' पाठ होना चाहिए, 'सुक्के' के स्थानपर 'बहुले' पाठ भ्रमसे रखा गया है।

अब उत्तरपुराणकी मान्यतापर विचार किया जाता है। उत्तरपुराणमें भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको विशाखा नक्षत्रके रहते हुए वासुपूज्य स्वामीका निर्वाण बतलाया गया है। ज्योतिषकी गणनानुसार विशाखा नक्षत्र भाद्रपद मासमें चतुर्दशीके दिन कभी नहीं पड़ सकता है। यह भाद्रपदमें सर्वदा शुक्ल पक्षकी पञ्चमी या षष्ठीको पड़ेगा। क्योंकि इस महीनेकी पूर्णिमा पूर्वाभाद्रपद या उत्तराभाद्रपदमें होगी। चतुर्दशीके दिन शतभिषा या पूर्वाभाद्रपदमेंसे कोई भी नक्षत्र रह सकता है। सन्ध्या समय तो पूर्वा भाद्रपदकी स्थिति आ ही जाती है। अत विशाखा नक्षत्र चतुर्दशीको कभी नहीं पड़ा होगा। उत्तरपुराणकी अन्य तिथियोंका मेल भी नक्षत्रोंके साथ नहीं बैठता है। तिलोयपण्णत्तीके प्राय सभी नक्षत्र तिथियोंसे मिल जाते हैं। एकाध स्थलपर अशुद्ध पाठ आ जानेसे तिथि-नक्षत्रोंमें समन्वय नहीं हो पाता है, पर शुद्ध पाठ रख देनेसे समन्वय आ जाता है। अत उत्तरपुराणकी मान्यता अशुद्ध मालूम पड़ती है। अथवा उत्तर पुराणके

पाठमें 'दिनगमाला' के स्थानपर 'पूर्वाह्णे' पाठ रखा जाय तो यह तिथि शुद्ध मानी जा सकती है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वर्तमानकालमें समाजमें उत्तरपुराणका ही प्रचार स्वरूप क्यों दिखलायी पड़ता है? तिलोयपण्णत्तीका प्रभाव क्षीण क्यों हो गया? इसके दो कारण हैं। सबसे पहला कारण तो यह है कि 'तिलोयपण्णत्ती' ग्रन्थ ही बहुत समयतक समाजके सामने नहीं आया। अमुद्रित रहनेके कारण जनसाधारण उससे अपरिचित ही रहे। दूसरी बात यह भी है कि तिलोयपण्णत्ती करणानुयोगका ग्रन्थ प्राकृत भाषामें है, अतः इसका स्वाध्याय प्रायः बन्द ही रहा। उत्तरपुराण पौराणिक ग्रन्थ है, अतः इसके स्वाध्यायका प्रचार सभी प्रकारके व्यक्तियोंके बीच होता रहा। फलतः उत्तरपुराणकी मान्यता हिन्दी कवियों, पण्डितों तथा अन्य समस्त ज्योतिषीतक फैल गई। जिसके फलस्वरूप आज समस्त निर्वाणोत्सव इसी ग्रन्थके आधारपर समाजमें प्रचलित है।

प्रचलित मान्यताके अनुसार इस निर्वाणोत्सवको चतुर्दशीकी सन्ध्याके उपरान्त सम्पन्न न करना चाहिए। जिस दिन अपराह्णकालमें चतुर्दशी मिले, उसी दिन उत्सवका सम्पन्न किया जाय।

मेरा अपना अभिमत यह है कि समस्त निर्वाणोत्सव 'तिलोयपण्णत्ति' के अनुसार सम्पन्न करना चाहिए। जैनाम्नायमें उत्तरकालीन ग्रन्थोंकी अपेक्षा पूर्ववर्ती आचार्योंका मत अधिक प्रामाणिक माना गया है। यदि कोई उत्तरवर्ती आचार्योंका किसी पूर्व आचार्यके मतका विरोध करता है, तो उस स्थितिमें पूर्वका मत ही ग्रहणीय है। आचार्योंका मत प्राचीनके अनुसार कायम रखना होना चाहिए। अतएव यतिवृषभाचार्यके विचारानुसार कार्तिक अमावस्याको सम्पन्न करना ही प्रमाणसंगत है।

ऐतिहासिक दृष्टिसे भगवान् महावीरके निर्वाणकालके लिए दो मत शिलालेख तथा प्रमाण प्राप्त होते हैं। भगवान् महावीरका निर्वाण ई० पू०

और द्वितीय चतुर्दशी, जो कि वस्तुतः अमावस्या है, उसके प्रातःकालमें मनाया जायगा। यहाँ सबसे बड़ी नियामक बात स्वाति नक्षत्रकी है, जिस दिन स्वातिका योग चतुर्दशीके अवसानमें प्राप्त हो, उसी दिन निर्वाणोत्सव सम्पन्न करना चाहिए। अमावस्याके उदयमें तो स्वाति आता है, पर राततक नहीं रहता है। अतएव चतुर्दशीके समाप्तिकालमें स्वाति नक्षत्रके रहनेपर यह उत्सव सम्पन्न किया जाता है। यहाँ तिथिका नियामक नक्षत्रको मानना चाहिए।

दीपावलीके दिन बहियोंको बदला जाता है तथा लक्ष्मीकी पूजा भी करनेकी प्रथा हमारे समाजमें वर्तमान है। अतः यहाँ बही और लक्ष्मी पूजाके समयकी व्यवस्थापर भी प्रकाश डालना आवश्यक है। लक्ष्मी पूजाका समय प्रदोषकाल माना गया है। बताया गया है—"प्रदोष समये लक्ष्मीं पूजयित्वा ततः क्रमात्," "दीपान् दत्वा प्रदोषे तु लक्ष्मीं पूज्य यथाविधि," "प्रदोषार्धरात्रव्यापिनी मुख्या;" "प्रदोषस्य मुख्य स्यादधरात्रेऽनुष्ठेयामावाश्च"। अर्थात् लक्ष्मीपूजा प्रदोष समयमें शुभ लग्नमें करनी चाहिए। प्रदोष शब्दका अर्थ लक्ष्मी पूजाके लिए रात्रिके प्रथम प्रहरके उपरान्त द्वितीय प्रहर पर्यन्त समय ग्रहण किया गया है। यदि इस दिन भद्रा हो तो भद्राके समयके उपरान्त तृतीय या चतुर्थ प्रहरमें भी पूजा की जा सकती है। लक्ष्मीपूजाका समय प्रत्येक वर्ष पृथक् निर्धारित करना होगा। साधारणतया यह पूजा ९ बजेके उपरान्त और दो बजेके बीचमें होता है। इसके लिए धनु लग्न सर्वोत्तम, कुम्भ मध्यम और मीन निकृष्ट है। उत्तम लग्न किसी कारणसे न मिले तो उत्तम लग्नका नवांश अवश्य लेना चाहिए।

दीपावली पूजाकी विधि

दुकान या बड़े फर्मके बसना मुहूर्त—लक्ष्मी पूजन करनेके पूर्व अष्ट-द्रव्य तैयारकर चौकियोंपर रख ले। एक चौकीपर मंगल कलशकी स्थापना करे। गद्दीपर बही खाता, दावात क़लम, नवीन वस्त्र, रुपयोंकी थैली आदि रखे। प्रथम मंगलाष्टक पढ़कर रखी हुई सभी वस्तुओंपर पुष्प अर्पण करे। अनन्तर

स्वस्ति विधान, देवशास्त्र गुरुका अर्घ, पञ्चपरमेष्ठी पूजन, नवदेवपूजन, महावीर स्वामी पूजन, गणधर पूजन करे। अनन्तर बहियोंपर साथिया बनानेके उपरान्त 'श्री ऋषभाय नम', 'श्री महावीराय नम', 'श्री गौतम गणधराय नम' 'श्रीकेवलज्ञानसरस्वत्यै नम' और 'श्री लक्ष्म्यै नम' लिखकर 'श्रीवर्द्धताम्' लिखे। अनन्तर निम्नाकारमें श्रीका पर्वत बनावे।

० श्री ०	शैलाम स्वस्तिक बनानेका नियम
० श्री श्री ०	श्री
० श्री श्री श्री ०	卐
० श्री श्री श्री श्री ०	
० श्री श्री श्री श्री श्री ०	श्री वर्द्धमानाय नम

इसके पश्चात् "श्री देवाधिदेव श्री महावीरनिर्वाणात् २४८२तमे वीराब्दे श्री २०१३तमे विक्रमाब्दे १९५६ इस्वीयमवत्सरे शुभलग्ने स्थिरमुहूर्ते श्री जिनार्चन विधाय अद्य कार्तिककृष्णामावास्याया शुभवासरे लाभवेलायां नूतनवसनामुहूर्तं करिष्ये"।

सब बहियोंपर यह लिखकर पान, लड्डू, सुपाडी, पीली सरसों, दूबा और हल्दी रखे। पश्चात् "श्री वर्द्धमानाय नम, श्री महालक्ष्म्यै नम, ऋद्धि सिद्धिभवतुतराम्" केवलज्ञानलक्ष्मीदेव्यै नम, मम सर्वसिद्धि र्भवतु, काममागल्योत्सवा सन्तु, पुण्य वर्द्धताम्, धन वर्द्धताम्" पढ कर बही-खातोंपर अन्न चढावे। अनन्तर मगल कलशवाली चौकीपर रुपयोंकी थैलीको रखकर उसमें "श्रीलीलायतन महीकुलग्रह कीर्तिप्रमोदास्पद वाग्देवीरतिकेतन जयरमाक्रीडानिधान महत्। स स्यात्सर्वमहोत्सवैकभवन य प्रार्थितार्थप्रद प्रात पश्यति कल्पपादपदलच्छाय जिनाङ्घ्रिद्वयम्"॥ श्लोक पढकर साथिया बनावे। पश्चात् लक्ष्मीपूजन[1] करे और लक्ष्मीस्तोत्र, पुण्याहवाचन, शान्ति, विसर्जन करे।

---

१ यह पूजन हमारे पास है।

भगवान् ऋषभदेव आदि तीर्थंकर हैं। इस कालके वह सर्वप्रथम तीर्थप्रवर्त्तक हैं। उनके निर्वाण दिवसका उत्सव सम्पन्न करना अत्यावश्यक है। भगवान् ऋषभदेव स्वामीके निर्वाण दिवसके सम्बन्धमें तिलोयपण्णत्तीमें बताया गया है।

माघकृष्णा चतुर्दशी
ऋषभनिर्वाण दिवसोत्सव

माघस्स किण्ह चोद्दसि पुव्वण्हे णिययजम्मणक्खत्ते।
अट्ठावयम्मि उसहो अजुदेण समं गओ णोमि॥

—अधि० ४, गाथा ११८५

अर्थ—ऋषभनाथ तीर्थंकर माघकृष्णा चतुर्दशीके पूर्वाह्णकालमें अपने जन्म नक्षत्रके रहते—उत्तराषाढ़ाके वर्तमान रहते कैलाश पर्वतसे दस हजार मुनियोंके साथ निर्वाणको प्राप्त हुए। उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

आदिपुराणमें भी लगभग इसी प्रकारका निम्न उल्लेख उपलब्ध है—

माघकृष्णचतुर्दश्यां भगवान् भास्करोदये।
मुहूर्तेऽभिजिति प्राप्तपल्यङ्को मुनिभिः समम्॥
प्राग्दिङ्मुखस्तृतीयेन शुक्लध्यानेन रुद्धवान्।
योगत्रितयमन्त्येन ध्यानेन घातिकर्मणाम्॥

—आदि० पर्व ४७, श्लो० ३३८ ३९

अर्थ—माघ कृष्णा चतुर्दशीके दिन सूर्योदयके समय शुभ मुहूर्त और अभिजित् नक्षत्रमें भगवान् ऋषभदेव स्वामी पूर्व दिशाकी ओर मुँह कर अनेक मुनियोंके साथ पर्यंकासनसे विराजमान हुए, उन्होंने तीसरे सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति नामके शुक्ल ध्यानसे तीनों योगोंका निरोध किया और अघातिया कर्मोंको नष्ट कर निर्वाण प्राप्त किया।

तिलोयपण्णत्ती और आदिपुराण दोनों ही भगवान् ऋषभदेव स्वामीकी तिथि एक मानते हैं, निर्वाणका समय भी दोनोंका एक ही है। केवल नक्षत्रोंमें अन्तर है। तिलोयपण्णत्तीकारने भगवान् ऋषभदेव स्वामीके जन्म नक्षत्रको ही निर्वाण नक्षत्र माना है, किन्तु आदिपुराणकार

जिनसेन स्वामी अभिजित् नक्षत्रको भगवान्‌का निर्वाण नक्षत्र मानते हैं। अभिजित् नक्षत्रकी ज्योतिषमें भोगात्मक रूपमें पृथक् स्थिति नहीं मानी गयी है, क्योंकि अभिजित् नक्षत्र उत्तराषाढ़ाकी अन्तिम १५ घटियाँ तथा श्रवणकी आदिकी ४ घटियाँ, इस प्रकार कुल १९ घटी प्रमाण होता है। तिलोयपण्णत्तीमें उत्तराषाढ़ाका ज़िक्र है, अतः यहाँ स्पष्ट है कि भगवान्‌का निर्वाण उत्तराषाढ़ाके अन्तिम चरणमें हुआ है। यही अन्तिम चरण अभिजित्‌में आता है। अन्तिम चरणको शुभ माना जाता है तथा श्रवणका प्रथम चरण भी शुभ माना गया है। इसी शुभत्वके कारण उत्तराषाढ़ाके चतुर्थ चरण और श्रवणके प्रथम चरणकी संज्ञा अभिजित् की गयी है। अतएव दोनों कथनोंमें विरोध नहीं है। ज्योतिषकी गणनासे भी माघ कृष्ण चतुर्दशीको उदयकालमें उत्तराषाढ़ाकी समाप्ति आती है। अतः माघी पूर्णिमाको मघा नक्षत्रका आना निश्चित है, मघा उत्तराषाढ़ासे १६ वाँ नक्षत्र पड़ता है, माघ कृष्णा चतुर्दशीसे पूर्णिमाकी १७ की संख्या है, अतः गणनासे यह सिद्ध है कि माघ कृष्णा चतुर्दशीको उत्तराषाढ़ा नक्षत्र ही है।

निर्वाण तिथियोंके लिए नियामक नक्षत्र है, अतएव तिथियोंकी घटा बढ़ीमें नक्षत्रोंके अनुसार ही तिथिकी व्यवस्था करनी चाहिए। जिस दिन चतुर्दशीके प्रातःकालमें उत्तराषाढ़ाका चतुर्थ चरण वर्तमान रहेगा, उसी दिन भगवान्‌का निर्वाणोत्सव मनाया जायगा। प्रातःकाल सूर्योदयके समय नित्य पूजाके उपरान्त भगवान् ऋषभदेव स्वामीकी पूजा करे। पश्चात् सिद्धभक्ति, श्रुत भक्ति, चारित्र भक्ति, योगि भक्ति, निर्वाण भक्ति या निर्वाण काण्ड पढ़कर पूजन समाप्त करे। प्रभावनाके लिए हवन दियाका आयोजन भी किया जा सकता है। सन्ध्या समय सभाका आयोजन कर भगवान् ऋषभदेव स्वामीके जीवन दर्शन आदि पर प्रकाश डालना चाहिए। जैन धर्मकी प्राचीनता भगवान् ऋषभदेवके चरित्रसे स्पष्ट सिद्ध होती है।

निर्वाणोत्सवमें धार्मिक विधेय कृत्य

भगवान् ऋषभदेव आदि तीर्थंकर हैं। इस कालके यह सर्वप्रथम तीर्थप्रवर्त्तक हैं। उनके निर्वाण दिवसका उत्सव सम्पन्न करना अत्यावश्यक है। भगवान् ऋषभदेव स्वामीके निर्वाण दिवसके सम्बन्धमें तिलोयपण्णत्तीमें बताया गया है।

माघकृष्णा चतुर्दशी ऋषभनिर्वाण दिवसोत्सव

माघस्स किण्ह चोद्दसि पुव्वण्हे णियय जम्मणक्खत्ते।
अट्ठावयम्मि उसहो अजुदेण समं गओ णोमि ॥
—अधि० ४, गाथा ११८५

अर्थ—ऋषभनाथ तीर्थंकर माघकृष्णा चतुर्दशीके पूर्वाह्नकालमें अपने जन्म नक्षत्र रहते—उत्तराषाढ़ाके वर्तमान रहते कैलाश पर्वतसे दस हजार मुनियोंके साथ निर्वाणको प्राप्त हुए। उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

आदिपुराणमें भी लगभग इसी प्रकारका निम्न उल्लेख उपलब्ध है—

माघकृष्णचतुर्दश्यां भगवान् भास्करोदये।
मुहूर्तेऽभिजिति प्राप्तपल्यङ्को मुनिभिः समम् ॥
प्राग्दिङ्मुखस्तृतीयेन शुक्लध्यानेन रुद्धवान्।
योगत्रितयमन्त्येन ध्यानेन घातिकर्मणाम् ॥
—आदि० पर्व ४७, श्लो० ३३८-३९

अर्थ—माघ कृष्णा चतुर्दशीके दिन सूर्योदयके समय शुभ मुहूर्त और अभिजित् नक्षत्रमें भगवान् ऋषभदेव स्वामी पूर्व दिशाकी ओर मुँह कर अनेक मुनियोंके साथ पर्यंकासनसे विराजमान हुए, उन्होंने तीसरे सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति नामके शुक्ल ध्यानसे तीनों योगोंका निरोध किया और अघातिया कर्मोंको नष्ट कर निर्वाण प्राप्त किया।

तिलोयपण्णत्ती और आदिपुराण दोनों ही भगवान् ऋषभदेव स्वामीकी तिथि एक मानते हैं, निर्वाणका समय भी दोनोंका एक ही है। केवल नक्षत्रोंमें अन्तर है। तिलोयपण्णत्तीकारने भगवान् ऋषभदेव स्वामीके जन्म नक्षत्रको ही निर्वाण नक्षत्र माना है, किन्तु आदिपुराणकार

जिनसेन स्वामी अभिजित् नक्षत्रको भगवान्‌का निर्वाण नक्षत्र मानते हैं। अभिजित् नक्षत्रकी ज्योतिषमें भोगात्मक रूपमें पृथक् स्थिति नहीं मानी गयी है, क्योंकि अभिजित् नक्षत्र उत्तराषाढ़ाकी अन्तिम १५ घटियाँ तथा श्रवणकी आदिकी ४ घटियाँ, इस प्रकार कुल १९ घटी प्रमाण होता है। तिलोयपण्णत्तिमें उत्तराषाढ़ाका जिक्र है, अत यहाँ स्पष्ट है कि भगवान्‌का निर्वाण उत्तराषाढ़ाके अन्तिम चरणमें हुआ है। यही अंतिम चरण अभिजित्‌में आता है। अन्तिम चरणको शुभ माना जाता है तथा श्रवणका प्रथम चरण भी शुभ माना गया है। इसी शुभत्वके कारण उत्तराषाढ़ाके चतुर्थ चरण और श्रवणके प्रथम चरणकी संज्ञा अभिजित् की गयी है। अतएव दोनों कथनोंमें विरोध नहीं है। ज्योतिषकी गणनासे भी माघ कृष्ण चतुर्दशीको उदयकालमें उत्तराषाढ़ाकी गणना आती है। अत माघी पूर्णिमाको मघा नक्षत्रका आना निश्चित है, यथा उत्तराषाढ़ासे १६ वाँ नक्षत्र पड़ता है, माघ कृष्णा चतुर्दशीसे पूर्णिमाकी १७ वीं संख्या है, अत गणनासे यह सिद्ध है कि माघ कृष्णा चतुर्दशीको उत्तराषाढ़ा नक्षत्र ही है।

निर्वाण तिथियोंके लिए नियामक नक्षत्र है, अतएव तिथियोंकी घटा-बढ़ीमें नक्षत्रोंके अनुसार ही तिथिकी व्यवस्था करनी चाहिए। जिस दिन चतुर्दशीको प्रात काल उत्तराषाढ़ाका चतुर्थ चरण वर्तमान रहेगा, उसी दिन भगवान्‌का निर्वाणोत्सव मनाया जायगा। प्रात काल सूर्योदयके समय नित्य पूजाके उपरान्त भगवान ऋषभदेव स्वामीकी पूजा करे। पश्चात् सिद्धभक्ति, श्रुत भक्ति, चारित्र भक्ति, योगि भक्ति, निर्वाण भक्ति या निर्वाण काण्ड पढ़कर पूजन समाप्त करे। प्रभावनाके लिए इस दिनका आयोजन भी किया जा सकता है। सन्ध्या समय सभाका आयोजन कर भगवान् ऋषभदेव स्वामीके जीवन दर्शन आदि पर प्रकाश डालना चाहिए। जैन धर्मकी प्राचीनता भगवान् ऋषभदेवके चरितसे स्पष्ट सिद्ध होता है।

निर्वाणोत्सवमें धार्मिक विधेय कृत्य

भगवान् महावीर स्वामीका जन्मदिन महावीर जयन्तीके नामसे प्रसिद्ध है। भगवान्का जन्म चैत्रशुक्ला त्रयोदशीको उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें हुआ था। तिलोयपण्णत्तीमें भगवान्के जन्म समयके सम्बन्धमें बताया गया है—

चैत्रशुक्ला त्रयोदशी महावीर जयन्ती

सिद्धत्थरायपियकारिणीहिं णयरम्मि कुंडले वीरो।
उत्तरफग्गुणिरिक्खे चित्तसियातेरसीए उप्पण्णो॥

—ति० अ० ४, गाथा ५४९

अर्थ—भगवान् महावीर कुण्डलपुरमें पिता सिद्धार्थ और माता प्रियकारिणीसे चैत्रशुक्ला त्रयोदशीके दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

उत्तरपुराणमें भगवान्के जन्मदिनका वर्णन निम्नप्रकार है—

नवमे मासि सम्पूर्णे चैत्रे मासि त्रयोदशी।
दिने शुक्ले शुभे योगे सत्यर्यमणि नामनि।

—पर्व ४७ श्लो० २६२

अर्थ—नौवाँ मास पूर्ण होने पर चैत्रशुक्ला त्रयोदशीके दिन अर्यमा-उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें, शुभ योगमें भगवान् महावीरका जन्म हुआ।

निर्वाणभक्तिके निम्न श्लोकोंसे भगवान्के जन्मकाल पर भी सुन्दर प्रकाश पड़ता है—

चैत्रसितपक्षफाल्गुनि शशाङ्कयोगे दिने त्रयोदश्याम्।
जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने॥
हस्ताश्रिते शशाङ्के चैत्रज्योत्स्ने चतुर्दशीदिवसे।
पूर्वाह्णे रत्नघटैर्विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम्॥

—नि० भ० श्लो० ५-६

अर्थ—भगवान् महावीरका जन्म चैत्रशुक्ला त्रयोदशीके दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें शुभलग्नमें, जब शुभग्रह उच्च राशिके थे, हुआ था। देवोंने भगवान्का जन्मकल्याणक चतुर्दशीके दिन, जब चन्द्रमा हस्तनक्षत्र पर था, पूर्वाह्णमें सम्पन्न किया।

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि भगवान्का जन्म मध्यरात्रिके उपरान्त जब कि

पारणा समझते—अक्षय तृतीयाके दिन उनका प्रथम पारणा ग्रहणकी कलासे गणित करके दिशा विदिशाओंमें स्थापित किये हुए भुजाओंको लिये हुए है, यह देखना सार है—देखाधीर घटनाओंका सूचक है।

यह तिथि भी उदया मान्य है। जिस दिन उदयकालमें उक्त तृतीया हो, उसी दिन अक्षय तृतीयाका उत्सव सम्पन्न करना चाहिए। दान देना, पूजा करना, अतिथिसत्कार करना आदि विशेष कार्योंको इस तिथिमें करना चाहिए।

श्रुतपञ्चमी पर्व अत्यन्त प्रसिद्ध पर्व है। यह पर्व ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमीको सम्पन्न किया जाता है। इस दिन षट्खण्डागमका प्रणयन समाप्त हुआ था। चतुर्विध संघने मिलकर आगमकी पूजा की थी तथा उत्सव सम्पन्न किया था। बताया गया है कि सौराष्ट्र देशके गिरिनारपर्वतकी चन्द्रगुफामें आचार्य धरसेनने आषाढ शुक्ला एकादशीके प्रभातमें भूतबलि और पुष्पदन्त नामक दो मुनीन्द्रोंको आगम साहित्य पढ़ाया था। गुरुदेवके दिवंगत होनेपर उस शिष्य युगलने कर्म साहित्यपर षट्खण्डागम सूत्रकी रचना आरम्भ की। बीचमें ही पुष्पदन्त आचार्यके भी किसी कारणसे पृथक् हो जानेपर भूतबलिने ही अवशेष ग्रन्थको समाप्त किया। यह ग्रन्थराज ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमीको पूर्ण हुआ तथा इसी दिन इसकी अर्चना की गई। श्रुतावतार कथामें आचार्य इन्द्रनन्दिने बतलाया है—

श्रुतपञ्चमी

ज्येष्ठसितपञ्चम्यां चातुर्वर्ण्यसंघसमवेतः ।
तत्पुस्तकोपकरणैर्व्यधात् क्रियापूर्वकं पूजाम् ॥
श्रुतपञ्चमीति तेन प्रख्यातिं तिथिरियं परमाप ।
अद्यापि येन तस्यां श्रुतपूजां कुर्वते जैनाः ॥

—श्रुतावतार श्लो० १४३-१४४

अर्थात्—ज्येष्ठशुक्ला पञ्चमीको चतुर्विध संघने बड़े वैभव और उत्साहके साथ जिनवाणी माताकी पूजा की थी। तभीसे यह पर्व श्रुत

पञ्चमी नामसे प्रख्यात हो गया है। आज भी जैन समाजमें इस दिन श्रुतपूजा की जाती है।

इस तिथिकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें इतना ही जान लेना आवश्यक है कि जिस दिन उदयकालमें छ घटी प्रमाण यह तिथि मिलेगी, उसी दिन श्रुतपञ्चमी पर्व सम्पन्न किया जायगा। यदि उदयकालमें छ घटी प्रमाण तिथि न मिले तो उससे पूर्व दिन ही पञ्चमी मान ली जायगी। मात्र उदया तिथिको श्रुत पञ्चमी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि चतुर्विध सब पूजा या व्रतके लिए छ घटी प्रमाण तिथिको, तबतक ग्राह्य मानता है, जबतक अपवाद रूप विशेष विधान नहीं होता। इस दिन श्रुत पूजाके साथ सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति और शान्तिभक्तिका पाठ करें। विशेष विधान करना हो तो निम्न मन्त्रकी १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए।

ओं अर्हन्मुखकमलवासिनि पापात्मक्षयकरि श्रुतज्ञानज्वालासहस्र प्रज्वलिते सरस्वति अस्माकं पापं हन हन दह दह क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः क्षीरवरधवले अमृतसम्भवे वं वं हूं हूं फट् स्वाहा।

व्रत और पर्व विचार

जीवन शोधनके लिए व्रतोंकी आवश्यकता है। समस्त श्रावकाचार और मुन्याचार व्रताचरण रूप ही है। तपश्चरण भी व्रतान्तर्गत ही है। प्रारम्भमें उपवास तपश्चरणको सम्पन्न करनेके लिए अनेक प्रकारके व्रतोंका विधान किया गया है। व्रत शब्दकी परिभाषा सागारधर्मामृतमें निम्न प्रकार बतलायी गयी है।

> सङ्कल्पपूर्वकः सेव्यो नियमोऽशुभकर्मणः।
> निवृत्तिर्वा व्रतं स्याद्वा प्रवृत्तिः शुभकर्मणि॥ सागार० अध्याय २

अर्थात्—सेवन करने योग्य विषयोंमें सङ्कल्पपूर्वक नियम करना अथवा हिंसादि अशुभ कर्मोंसे सङ्कल्पपूर्वक विरक्त होना अथवा पात्रदानादिक शुभ कर्मोंमें सङ्कल्पपूर्वक प्रवृत्ति करना व्रत है।

रत्नत्रय, दशलक्षण, अष्टाह्निका, षोडशकारण, मुक्तावली, पुष्पा

उज्ज्वली आदि व्रतोंके सम्पन्न करनेसे आत्मनिर्मलताके साथ महान् पुण्य का बन्ध होता है। आचार्य वसुनन्दीने अपने श्रावकाचारमें व्रतोंके फलों का निरूपण करते हुए लिखा है—

> फलमेयस्से भोत्तूण देव मणुएसु इंदियजसुक्खं।
> पच्छा पावइ मोक्खं थुणिज्जमाणो सुरिं देहिं॥

रत्नत्रय, षोडशकारण, जिनगुण सम्पत्ति, नन्दीश्वरपंक्ति, विमानपंक्ति आदि व्रतोंके पालन करनेके फलसे यह जीव देव और मनुष्योंमें इन्द्रिय जनित सुख भोगकर, पश्चात् देवेन्द्रोंसे स्तुति किया जाता हुआ मोक्षपद प्राप्त करता है।

व्रताचरणकी आवश्यकतापर जोर देते हुए लिखा गया है—

> व्रतेन यो विना प्राणी पशुरेव न संशय।
> योग्यायोग्य न जानाति भेदस्तत्र कुतो भवेत्॥

व्रत रहित प्राणी निस्सन्देह पशुके समान है। जिसे उचित अनुचितका ज्ञान नहीं है, ऐसे मनुष्य और पशुमें क्या भेद है? अत व्रतविधान करना प्रत्येक नर नारीके लिए आवश्यक है।

व्रतोंके भेद प्रभेद

शास्त्रकारोंने व्रतोंके प्रधान नौ भेद बतलाये हैं। उनके नाम इसी ग्रन्थमें निम्न प्रकार हैं—

सावधीनि, निरवधीनि, दैवसिकानि, नैशिकानि, मासावधिकानि, वात्सरकानि, काम्यानि, अकाम्यानि, उत्तमार्थानि, इति नवधा भवन्ति।

अर्थात्—सावधि, निरवधि, दैवसिक, नैशिक, मासावधि, वर्षावधि, काम्य, अकाम्य और उत्तमार्थ ये नौ भेद व्रतोंके हैं। निरवधि व्रतोंमें कव लचन्द्रायण, तपोऽञ्जलि, जिनमुखावलोकन, मुक्तावली, द्विकावली, एकावली आदि हैं। सावधि व्रत दो प्रकारके होते हैं—तिथिकी अवधिसे किये जाने वाले सुखचिन्तामणि भावना, पञ्चविंशतिभावना, द्वात्रिंशत्भावना, सम्यक्त्व पञ्चविंशतिभावना और णमोकार पञ्चत्रिंशत्भावना आदि हैं। दिनोंकी अवधिसे किये जानेवाले व्रतोंमें दु खहरणव्रत, धर्मचक्रव्रत, जिनगुणसम्पत्ति,

सुखसम्पत्ति, शीलकल्याणक, श्रुतिकल्याणक, चन्द्रकल्याणक आदि हैं। दैवसिकव्रतोंमें दिनकी प्रधानता रहती है, पवतिथियों तथा दशलक्षण रत्नत्रय आदि दैवसिकव्रत हैं। आकाशपञ्चमी जैसे व्रत नैशिक माने जाते हैं। जिन व्रतोंकी अवधि महीनेकी होती है, वे मासिक कहे जाते हैं जैसे षोडशकारण, मेघमाला आदि मासिक हैं। जो व्रत किसी अभीष्टकामनाकी पूर्तिके लिए किये जाते हैं, वे काम्य और जो निष्काम रूपसे किये जाते हैं वे अकाम्य कहलाते हैं। काम्यव्रतोंमें संकटहरण, दुःखहरण, धनदकलश आदि व्रतोंकी गणना है। उत्तम व्रतोंमें सिंहनिष्क्रीडित, भाद्रवनसिंहनिष्क्रीडित, सर्वतोभद्र आदि हैं। अकाम्योंमें कर्मचूर, कर्मनिर्जरा, मेरुपंक्ति आदि हैं।

व्रतोंकी संख्या आरम्भमें बहुत थोड़ी थी। पौराणिक साहित्यमें व्रतोंकी संख्याका विकास स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होता है। पद्मपुराण और आदि पुराणमें श्रावकाचार और श्रावकोंने व्रतोंका उल्लेख, दशलक्षण, रत्नत्रय, षोडशकारण और अष्टाह्निका व्रतोंके पालनके रूपमें ही हुआ है। श्रावकाचारोंमें रत्नकरण्डश्रावकाचार, अमितगतिश्रावकाचार, सागारधर्मामृत, स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा, गुणभूषणश्रावकाचार और लाटी संहितामें मूलगुण, बारह व्रत, ग्यारह प्रतिमा और सल्लेखनाका ही निरूपण है, व्रतोंका नहीं। पुराणोंमें सबसे प्रथम हरिवंशपुराणमें और श्रावकाचारोंमें वसुनन्दिश्रावकाचारोंमें कुछ प्रमुख व्रतोंकी विवेचना की गयी है। वसुनन्दिश्रावकाचारमें पञ्चमीव्रत, रोहिणी व्रत, अश्विनीव्रत, सौख्यसम्पत्तिव्रत, नन्दीश्वरपंक्ति व्रत और विमानपंक्ति व्रत इन छः व्रतोंका उल्लेख मिलता है। हरिवंशपुराणमें सुप्रतिष्ठके नानाविध उपवासोंका वर्णन करते हुए सर्वतोभद्र, वसन्तभद्र, महासर्वतोभद्र, रत्नावली, उत्तम मध्यम जघन्य सिंहनिष्क्रीडित आदि महोपवासोंका वर्णन किया है। धवलाटीकामें आचार्य वीरसेनने भी उपवासोंकी उग्रताका विवेचन किया है। हरिवंशपुराणमें बतलाया गया है—

व्रतोंका विकास

तपोविधिविशेषे स सर्वतोभद्रपूर्वके ।
वपुर्विभूषयाम्चक्रे सिंहनिष्क्रीडितोत्तरे ॥

श्रवणादपि पापघ्नानुपवासमहाविधीन् ।
शृणु यादव ! ते वच्मि समाधाय मन क्षणम् ॥
एकादिपूपवासेषु पञ्चान्तेषु यथाक्रमम् ।
अन्तयो कृतयोरादौ शेषमगसमुद्भवे ॥
कल्पितश्चतुरस्रोऽय प्रस्तार पञ्चमङ्गक ।
सर्वतोऽप्युपवासाश्च गण्या पञ्चदशाऽत्र हि ॥
पञ्चभिर्गुणितास्ते स्यु सरयया पञ्चसप्तति ।
ताडिता पञ्चभि पञ्च पारणा पञ्चविंशति ॥
सर्वतोभद्रनामायमुपवासविधि कृत ।
विधत्ते सेवतोभद्र निर्वाणाभ्युदयोदयम् ॥
पञ्चादिषु नवान्तेषु भद्रोत्तरवसन्तक ।
विधिस्तत्रोपवासास्तु प ञ्चत्रिंशत्सम परम् ॥

इससे सिद्ध है कि उपवासोंके सुनने और उनके अनुष्ठान करने मात्रसे पापोंका ध्वंस होता है, आत्मामें पुण्यका संचय होता है। उपवास कर्म निर्जराके भी हेतु हैं। वीरसेनाचार्यने कर्मनिर्जराके लिए किये गये उग्र तपश्चरणमें ही उपवासोंका वर्णन किया है। अत संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओंके आचग्रन्थोंमें थोड़से ही व्रतोंका उल्लेख मिलता है। आराधना कथाकोश, हरिषेणकथाकोशसे भी महत्त्वशाली रत्नत्रय, षोडशकारण, अष्टाह्निका, दशलक्षण, पुष्पाञ्जलि, जैसे प्रमुख व्रतोंको सम्पन्न करके पुण्यार्जन करनेवाले व्यक्तियोंकी कथाएँ ही उपलब्ध हैं। भट्टारकों द्वारा विरचित व्रतोद्यापनोंमें दशलक्षण, रत्नत्रय, षोडशकारण, अष्टाह्निका, पुष्पाञ्जलि, अनन्तव्रत, रविवारव्रत, नवग्रहव्रत, कवलचान्द्रायण, चतुर्दशी, सुगन्धदशमी, ऋषिपञ्चमी, कर्मचूर, चन्दनषष्ठी, मुकुटसप्तमी, निदशल्य अष्टमी, रोट तीज, रोहिणी प्रभृति व्रतोंकी उद्यापन विधि बतलायी गयी है। इन समस्त उद्यापनोंका रचनाकाल चौदहवीं शताब्दिसे सोलहवीं शती तकका है। कतिपय व्रतोंका उद्यापन विधान इधरसे प्रकाशित हुआ है। श्री जैनसिद्धान्तभवन आराके हस्तलिखित गुटकेमें लगभग २४ २५ व्रतो-

वर्णन संगृहीत है। व्रतविधिके लिए संस्कृत और प्राकृत साहित्यमें कोई एक ग्रन्थ नहीं है, जिसके आधारपर व्रतोंके स्वरूप, उनकी विशेष तिथियों, उनके अनुष्ठान, जाप्य मन्त्र, पारणामें ग्रहण की जानेवाली वस्तुका परिज्ञान किया जा सके। यह एक कमी थी। यद्यपि फुटकर रूपमें पुराणों, कथाग्रन्थों, श्रावकाचारों, उद्यापनों आदिमें व्रतोंके सम्बन्धमें पूरी सामग्री वर्तमान है, तो भी एक प्रामाणिक ग्रन्थकी कमी थी। हिन्दीमें किशनसिंहने अपने क्रियाकोशमें व्रतोंका सविस्तार वर्णन कर बहुत अंशोंमें यह कमी पूरी की है। सन् १९५२ में 'जैन व्रत विधान-संग्रह' श्री पं० बारेलालजी द्वारा संकलित प्रकाशित हुआ है। इन सभी ग्रन्थोंमें तिथि और व्रत व्यवस्थाका उतना सांगोपांग विवेचन नहीं है जितना चाहिए। विशेष तिथियोंके ऊपर निर्णयात्मक दृष्टिसे प्रकाश डालना अत्यावश्यक है। प्रस्तुत ग्रन्थमें तिथियोंकी व्यवस्थापर सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

नवीन वर्षका आरम्भ वीरशासनजयन्तीसे माना जाता है, अतः श्रावण माससे व्रतोंकी गणना करनी चाहिए। श्रावणमासमें वीरशासन जयन्तीव्रत, अक्षयनिधि, गरुडपंचमी, षष्ठीव्रत, मोक्षसप्तमी, अक्षयफल दशमी, द्वादशीव्रत और रक्षाबन्धन आते हैं। वीरशासनजयन्तीकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें विचार किया जा चुका है। इस व्रतको उसी दिन सम्पन्न करना होता है। इस दिन उपवास किया जाता है तथा पूजाके अनन्तर 'ॐ ह्रीं महावीरस्वामिने नमः' इस मन्त्रका जाप तीनों काल किया जाता है।

अक्षयनिधिव्रत श्रावणशुक्ला दशमीको पूजा स्वाध्यायके पश्चात् धारण करे। इस दिन एकाशनकर संयमका अभ्यास करे। श्रावणशुक्ला दशमी, जिस दिन उदयकालमें छः घटी हो उस दिन उपवास करे। दिनको धर्मध्यानपूर्वक बिताकर, रात्रि जागरण करे। श्रावणशुक्ला एकादशीसे भाद्रपद कृष्णनवमी तक एकाशन करे। अनन्तर दशमीका उपवास कर, पूर्वोक्त रीतिसे धर्मध्यानपूर्वक रात्रि बिताकर एकादशीको एकाशन करे।

द्वादशीको दोनों समय भोजन करे। यह व्रत दशवर्षतक किया जाता है। इसमें त्रिकाल णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए। प्रत्येक व्रत धारणा और निष्ठापन समय इसी ग्रन्थमें वर्णित शान्तिविधानके करने तथा उद्यापनमें बतलायी गयी विधिके अनुसार करना चाहिए।

अक्षयफलदशमी व्रत श्रावणशुक्ला नवमीको एकाशन कर धारण करना चाहिए और शुक्ला दशमीका उपवास कर धर्मध्यानपूर्वक दिन व्यतीतकर रात्रि जागरण करना चाहिए। त्रिकाल 'ॐ ह्रीं वृषभजिनाय नमः' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। दस वर्षतक इस व्रतका पालन कर उद्यापन किया जाता है। व्रतकी तिथि छः घटी प्रमाण उदयमें होनेपर ही ग्रहण की जाती है, अन्यथा पहले दिन व्रत सम्पन्न किया जाता है।

मोक्षसप्तमी व्रत श्रावणशुक्ला षष्ठीके दिन ग्रहण कर एकाशन किया जाता है। सप्तमीको धर्मध्यानपूर्वक उपवास करे। अष्टमीको पारणा करे। यह व्रत सात वर्षोंमें पूर्ण होता है। इसमें 'ॐ ह्रीं पार्श्वनाथाय नमः' मन्त्रका त्रिकाल जाप करना चाहिए। व्रतके लिए तिथि यहाँ भी छः घटी प्रमाण ही ग्रहण की गयी है।

गरुडपञ्चमी व्रत श्रावणशुक्ला चतुर्थीको एकाशन पूर्वक धारणकर पञ्चमीका उपवास विधिपूर्वक करना चाहिए। पाँच वर्ष व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन किया जाता है। त्रिकाल 'ॐ ह्रीं अर्हद्भ्यो नमः' मन्त्रका जाप करे।

मनोकामना सिद्ध करनेके लिए श्रावणशुक्ला षष्ठीका व्रत किया जाता है। यह व्रत पञ्चमीको एकाशनपूर्वक धारण किया जाता है। धारण करनेके दिन जिनालयमें जाकर नित्य नियम पूजा करनेके उपरान्त भगवान् नेमिनाथकी पूजाके साथ भक्तामर और कल्याणमन्दिर स्तोत्रोंका पाठ करे। तथा इसी दिनसे 'ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथायनमः' इस मन्त्रका जाप करे। षष्ठीके दिन उपवास करे, पञ्चमीके समान पूजा पाठ कर, धूप देकर भक्तामर स्तोत्रका पाठ करे और त्रिकाल 'ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथाय

नम' इस मन्त्रका जाप करे। सप्तमीके दिन पारणा करे। पारणामें केवल एक ही अनाज रहना चाहिए। छ वर्षतक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर देना चाहिए। तिथिका मान छ घटी ही लेना चाहिए।

रत्नावधनकी व्यवस्था पर पूर्वमें प्रकाश डाला जा चुका है। इस दिन उपवास करना तथा "ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमाराय नम" मन्त्रका जाप करना चाहिए।

भाद्रपदमास अत्यन्त पवित्र है। इस महीनेमें सबसे अधिक व्रत आते हैं। बताया गया है कि इस महीनेमें दशलक्षण, षोडशकारण, रत्नत्रय, पुष्पाञ्जलि, आकाशपञ्चमी, सुगन्धदशमी, अनन्तचतुर्दशी, श्रुतस्कन्धव्रत, निर्दोषसप्तमी, चन्दनषष्ठी, तीसचौबीसी, जिनमुखावलोकन, रुक्मिणीव्रत, निःशल्यअष्टमी, दुग्धरसी, धनदकलश, शीलसप्तमी, नन्दसप्तमी, काँजी बारस, लघुमुक्तावली, त्रिलोकतीज, श्रवणद्वादशी और मेघमाला व्रत सम्पन्न किये जाते हैं। इसी कारण मल्लिपुराणमें कहा गया है—

अहो भाद्रपदाख्योऽयं मासोऽनेकव्रताकरः।
धर्महेतुपरो मध्येऽन्यमासानां नरेन्द्रवत् ॥

अर्थात्—जिस प्रकार मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजा माना जाता है, उसी प्रकार समस्त मासोंमें भाद्रपदमास श्रेष्ठ है, क्योंकि यह अनेक प्रकारके व्रतोंका स्थान स्वरूप है और धर्मका प्रधान कारण है।

इस पर्वका आरम्भ भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीसे होता है। पर्यूषणका आरम्भ दिन सृष्टिका आदि दिन है। क्योंकि छठवें कालके अन्तमें भरत और ऐरावतमें खण्ड प्रलय होता है। बताया गया है—

पर्यूषणकी व्यवस्था

सवत्तयणामणिलो गिरितरुभूपहुदि चुण्णण्ण करिय।
भमदि दिसंत जीवा मरंति मुच्छंति छट्ठंते॥
छट्ठमचरिमे होंति मरुदादी सत्तसत्त दिवसवही।
अदिसीदरवारविसयम्गीरजधूमवरिसाओ।

तेहिंतो सेसजणा णस्संति विसग्गिवरिसदड्ढमही ।
इगिजोयणमेत्तमधो चुण्णीकिज्जदि हु कालवसा ॥
त्रिलोकसार गाथा ६४-६७

अर्थात्—छठवें कालके अन्तमें संवर्त नामक पवन पर्वत, वृक्ष, पृथ्वी आदिको चूर्णकर समस्त दिशा और क्षेत्रमें भ्रमण करता है। इस पवनके कारण समस्त जीव मूर्च्छित हो जाते हैं। विजयार्धकी गुफामें रक्षित ७२ युगलोंके अतिरिक्त समस्त प्राणियोंका संहार हो जाता है। इस कालके अन्तमें पवन, अत्यन्त शीत, क्षार रस, विष, कठोर अग्नि, धूलि और धुँआकी वर्षा एक एक सप्ताहतक होती है। इसके पश्चात् उत्सर्पिणीकालका प्रवेश होता है। अर्थात् छठवें कालके अन्त होनेके ४९ दिन पश्चात् नवीन युगका आरम्भ होता है।

छठवें कालका अन्त आषाढी पूर्णिमाको होता है क्योंकि नवीन युगका आरम्भ श्रावण कृष्णा प्रतिपदाको अभिजित् नक्षत्रके होनेपर होता है। अतः आषाढी पूर्णिमाके अनन्तर श्रावणी प्रतिपदासे ४९ दिनोंकी गणना की तो इनकी समाप्ति भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीको हुई। अतएव भाद्रपदशुक्ला पंचमी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके आरम्भका दिन हुआ। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके छहों कालों—सुषमसुषमा, सुषमा, सुषम दुःषमा, दुःषमा, सुषमादुःषमा, और दुःषमादुःषमाका अन्त सदा आषाढी पूर्णिमाको होता है। अतः सृष्ट्यादि भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीका दिन है। इसी दिनकी स्मृतिमें यह पर्व आरम्भ हुआ है। इसकी आरम्भ तिथि भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी है और समाप्तितिथि भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी है। बीचमें किसी तिथिकी कमी हो जानेपर यह व्रत एक दिन पहले से किया जाता है। इसमें समाप्तिकी तिथि चतुर्दशी ही नियामक है। दो चतुर्दशियोंके होनेपर भी जिस दिन षष्ट्यादिक प्रमाणानुसार व्रतके लिए चतुर्दशी मानी जायगी, उसी दिन इस पर्वकी पूर्णता हो जाती है। व्रती व्यक्ति पूर्णिमाको संयम रखता है।

यह व्रत एक वर्षमें तीन बार आता है—माघ, चैत्र और भाद्रपदमें।

प्रत्येक महीनेमें शुक्लपक्षकी चतुर्थीको संयम कर पञ्चमीसे व्रत किया जाता है तथा चतुर्दशीको उपवास पूर्ण कर पूर्णिमाको संयमके साथ समाप्त किया जाता है।

उत्तम मार्ग तो यही है कि दस उपवास किये जावें। यदि दसों उपवास करनेकी शक्ति नहीं हो तो पंचमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी इन चार दिनोंमें उपवास और शेष छः दिनोंमें एकाशन करना चाहिए। यह व्रतका मध्यम विधि है।

विधि

अन्य सभी प्रकारके व्रतोंका विशेष विवरण इस ग्रन्थमें किया ही गया है। अतः समस्त व्रतोंकी विधिके सम्बन्धमें अगले प्रकरणों द्वारा जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

अष्टमी और चतुर्दशीको पर्व तिथि कहा जाता है। प्रत्येक महीनेकी दोनों अष्टमी और दोनों चतुर्दशियोंको प्रोषधोपवास करना चाहिए। इन तिथियोंके व्रत उदयकालमें छः घटीसे अल्प रहने पर पहले दिन किये जाते हैं। अभिषेक, पूजन, स्वाध्याय और धर्मध्यान पूर्वक इन व्रतोंको सम्पन्न करना चाहिए। व्रती श्रावकको अष्टमीके दिन[1] सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, आलोचना सहित चारित्र भक्ति और शान्तिभक्तिका पाठ करना चाहिए तथा चतुर्दशीको सिद्ध भक्ति, चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पञ्चगुरु भक्ति और शान्ति भक्ति करनी चाहिए[2]। जिस व्यक्तिको केवल अष्टमीका व्रत परिमितकालके लिए करना हो, उसे उपवासपूर्वक 'ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धाधिपतये नमः' का त्रिकाल जाप करना चाहिए। आठ वर्ष व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर देना होता है। चतुर्दशीका व्रत करनेवाले आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशीसे आरम्भ कर प्रत्येक मासकी प्रत्येक त्रयोदशीको धारणा, चतुर्दशीको व्रत और

पर्वतिथियाँ

---

१ अष्टम्यां सिद्ध श्रुत चारित्र शान्तिभक्तयः ।

२ सिद्धे चैत्ये श्रुते भक्तिस्तथा पञ्चगुरुस्तुतिः ।
शान्तिभक्तिस्तथा कार्या चतुर्दश्यामिति क्रिया ॥

—संस्कृत क्रियाकाण्ड

तेहिंतो सेसजणा णस्सति विसग्गिवरिसदड्डमही ।
इगिजोयणमेत्तमधो चुण्णीकिज्जदि हु कालवसा ॥
त्रिलोकसार गाथा ६४-६७

अर्थात्—छठवें कालके अन्तम संवर्त नामक पवन पर्वत, वृक्ष, पृथ्वी आदिको चूर्णकर समस्त दिशा और क्षेत्रम भ्रमण करता है। इस पवनके कारण समस्त जीव मूर्छित हो जाते हैं। विजयार्धकी गुफामें रक्षित ७२ युगलोंके अतिरिक्त समस्त प्राणियोंका संहार हो जाता है। इस कालके अन्तम पवन, अत्यन्त शीत, क्षार रस, विष, कठोर अग्नि, धूलि और धुँआकी वर्षा एक एक सप्ताहतक होती है। इसके पश्चात् उत्सर्पणी कालका प्रवेश होता है। अर्थात् छठवें कालके अन्त होनेके ४९ दिन पश्चात् नवीन युगका आरम्भ होता है।

छठवें कालका अन्त आषाढ़ी पूर्णिमाको होता है क्योंकि नवीन युगका आरम्भ श्रावण कृष्णा प्रतिपदाको अभिजित् नक्षत्रके होनेपर होता है। अतः आषाढ़ी पूर्णिमाके अनन्तर श्रावणी प्रतिपदासे ४९ दिनोंकी गणना की तो इनकी समाप्ति भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीको हुई। अतएव भाद्रपदशुक्ला पंचमी उत्सर्पण और अवसर्पणके आरम्भका दिन हुआ। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके छहो काल—सुषमसुषमा, सुषमा, सुषम दुःषमा, दुःषमा, सुषमादुःषमा, और दुःषमा दुःषमाका अन्त सदा आषाढ़ी पूर्णिमाको होता है। अतः सृष्ट्यादि भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीका दिन है। इसी दिनकी स्मृतिमें यह पर्व आरम्भ हुआ है। इसकी आरम्भ तिथि भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी है और समाप्तितिथि भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी है। बीचमें किसी तिथिकी कमी हो जानेपर यह व्रत एक दिन पहले से किया जाता है। इसमें समाप्तिकी तिथि चतुर्दशी ही नियामक है। दो चतुर्दशियोंके होनेपर भी जिस दिन धर्म्यादिक प्रमाणानुसार व्रतके लिए चतुर्दशी मानी जायगी, उसी दिन इस पर्वकी पूर्णता हो जाती है। व्रती व्यक्ति पूर्णिमाको संयम रखता है।

यह व्रत एक वर्षमें तीन बार आता है—माघ, चैत्र और भाद्रपदमें।

प्रत्येक महीनोंमें शुक्लपक्षकी चतुर्थीको संयम कर पञ्चमीसे व्रत किया जाता है तथा चतुर्दशीको उपवास पूर्ण कर पूर्णिमाको संयमके साथ समाप्त किया जाता है।

उत्तम मार्ग तो यही है कि दस उपवास किये जाय। यदि दसों उपवास करनेकी शक्ति नहीं हो तो पंचमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी इन चार दिनोंमें उपवास और शेष छः दिनोंमें एकाशन करना चाहिए। यह व्रतकी मध्यम विधि है।

विधि

अन्य सभी प्रकारके व्रतोंका विशेष विवरण इस ग्रन्थमें किया ही गया है। अतः समस्त व्रतोंकी विधिके सम्बन्धमें अगले प्रकरणों द्वारा जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

अष्टमी और चतुर्दशीको पर्व तिथि कहा जाता है। प्रत्येक महीनेकी दोनों अष्टमी और दोनों चतुर्दशियोंको प्रोषधोपवास करना चाहिए। इन तिथियोंमें व्रत उदयकालमें छः घटीसे अल्प रहने पर पहले दिन किये जाते हैं। अभिषेक, पूजन, स्वाध्याय और धर्मध्यान पूर्वक इन व्रतोंको सम्पन्न करना चाहिए। व्रती श्रावकको अष्टमीके दिन[1] सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, आलोचना सहित चारित्र भक्ति और शान्तिभक्तिका पाठ करना चाहिए तथा चतुर्दशीको सिद्ध भक्ति, चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पञ्चगुरु भक्ति और शान्ति भक्ति करनी चाहिए[2]। जिस व्यक्तिको केवल अष्टमीका व्रत परिमितकालके लिए करना हो, उसे उपवासपूर्वक 'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धाधिपतये नमः' का त्रिकाल जाप करना चाहिए। आठ वर्ष व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर देना होता है। चतुर्दशीका व्रत करनेवाले आषाढ शुक्ला चतुर्दशीसे आरम्भ कर प्रत्येक मासकी प्रत्येक त्रयोदशीको धारणा, चतुर्दशीको व्रत और

पर्वतिथियाँ

१ अष्टम्यां सिद्ध श्रुत चारित्र शान्तिभक्तयः ।

२ सिद्धे चैत्ये श्रुते भक्तिस्तथा पञ्चगुरुस्तुतिः ।
शान्तिभक्तिस्तथा कार्या चतुर्दश्यामिति क्रिया ॥
—संस्कृत क्रियाकाण्ड

पूर्णिमाको पारणा की जाती है। 'ॐ ह्रीं अनन्तनाथाय नमः' इस मन्त्रका त्रिकाल जाप किया जाता है। १४ वर्ष तक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर देना चाहिए।

व्रतोंके उद्यापन

व्रत विधान अवगत हो जानेपर उनके उद्यापनकी विधिका ज्ञान लेना आवश्यक है। सम्यक् प्रकार व्रतानुष्ठानके पश्चात् उद्यापन कर देने पर ही व्रतोंका फल प्राप्त होता है। उद्यापनकी विधि निम्न प्रकार है।

इस व्रतका उद्यापन भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमाको किया जाता है अथवा पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाके अवसर पर कभी भी किया जा सकता है। उद्यापन करनेके दिन श्री मन्दिरजीमें जाकर सर्वप्रथम एक गोल चौकी या टेबुलपर रत्नत्रय व्रतोद्यापनका मण्डल (माडना) बनाना चाहिए। चौकी चार फुट लम्बी और इतनी ही चौड़ी होनी चाहिए। चौकीपर श्वेत वस्त्र बिछाकर लाल, पीले, हरे, नीले और श्वेत रंगके चावलोंसे मण्डल बनाना चाहिए। इस मण्डलमें कुल १३ कोठे होते हैं। मण्डल गोलाकार बनता है। मण्डलके बीचमें 'ॐ ह्रीं रत्नत्रयव्रताय नमः' लिखे। इसके पश्चात् दूसरा मण्डल सम्यग्दर्शनका होता है, इसमें बारह कोठे हैं। तीसरा मण्डल सम्यग्ज्ञानका होता है, इसमें ४८ कोठे हैं। चौथा मण्डल सम्यक् चारित्र का होता है, इसमें १३ कोठे हैं।

रत्नत्रय व्रतके उद्यापनकी विधि

मन्दिरमें सर्वप्रथम भगवान्के अभिषेकके लिए जल लानेकी क्रिया करे। जलयात्राकी विधि[1] यहाँ दी जाती है। जल लानेके उपरान्त महा

[1] समस्त उद्यापनोंके लिए जलयात्राका विधान यह है कि सौभाग्यवती स्त्रियाँ घरसे कुम्भ लिपटे और कलशसे सुसस्कृत नारियलोंसे ढके कलश जलाशयके पास ले जावें। जलाशयके पूर्व भाग या उत्तर भागमें भूमिको जलसे धोकर पवित्र करे। पश्चात् उस भूमिपर चावलाका चौक बनाकर, चावलाका पुञ्ज रखे और कलशाको उन पुञ्जोंपर

स्थापित कर दिया जाय। चौकके चारों कोनोंपर दीपक जलाना चाहिए। पश्चात् निम्न विधानकर कुँएसे जल निकाला जाय।

पद्मापादनतो महामृतमवानन्दप्रदाना नृणां
जैनो मार्ग इवावभासिविमलो योगीव शीताभवन्।
जैनेन्द्रस्तपनोचितोदकनया क्षीरोदवत्त मता
पूज्य त्वा शुभमुद्धजीवननिधिं कासारसपूजये ॥१॥

ओं ह्रीं पद्मह्रदाय अर्घ्यं निवपामीति स्वाहा। पढ़कर जलाशय—कुँए पर अर्घ चढ़ावे।

श्रीमुख्यदेवी कुलशैलमूर्धपद्मादिपद्माकरपद्मसक्ता।
पय पटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैं प्रयक्ष्ये ॥२॥

ओं ह्रीं श्रीप्रभृतिदेवताभ्य इदं जलादि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा। यहाँसे जलाशय पूजा करे।

गङ्गादिदेवीरतिमङ्गलाङ्गा गङ्गादिविरयातनदीनिवासा।
पय पटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैं प्रयक्ष्ये ॥३॥

ओं ह्रीं गङ्गादिदेवीभ्य इदं जलादि अर्घ्यं निर्वपा०।

सीतानदीविद्धमहाह्रदस्थान् ह्रदेश्वरान्नागकुमारदेवान्।
पय पटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैं प्रयक्ष्ये ॥४॥

ओं ह्रीं सीताविद्धमहाह्रददेवेभ्य इदं जलादि अर्घ्यं नि०।

सीतोत्तराभध्यमहाह्रदस्थान् ह्रदवरान्नागकुमारदेवान्।
पय पटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैं प्रयक्ष्ये ॥५॥

ओं ह्रीं सीतोदाविद्धमहाह्रददेवेभ्य इदं जलादि अर्घ्यं नि०।

क्षारोदकालोदकताथवर्ति श्रीमागधादीनमरानशेषान्।
पय पटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैं प्रयक्ष्ये ॥६॥

ओं ह्रीं लवणोदकालोदमागधादितीर्थदेवेभ्य इदं जलादि अर्घ्य नि०।]

सीतातदन्यद्वयताथवर्तिश्रीमागधादीनमरानशेषान्।
पय पटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैं प्रयक्ष्ये ॥७॥

ओं ह्रीं सीतासीतोदामागधादितीर्थदेवेभ्य जलादि अर्घ्यं०।

समुद्रनाथोल्लयणादमुण्यमख्यायतीताम्बुधिभूतिभोक्त् ।
पय पटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्घफलैं प्रयज्ये ॥८॥

ॐ ह्रीं संख्यातीतसमुद्रदेवस्य जलादि अर्घ्यं० ।

लोकप्रसिद्धोत्तमतीर्थदेवानन्दीश्वरद्वीपसरःस्थितादीन् ।
पय पटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्घफलैं प्रयज्ये ॥९॥

ॐ ह्रीं लोकाभिमततीर्थदेवस्य इद जलादि अर्घ्यं० ।

गङ्गादय श्रीमुखाश्च देव्य आगमाधाश्च समुद्रनाथा ।
हृद्देशिनोऽन्येऽपि जलाशयेशाने सारयन्त्वत्र जिनोत्सिताम्भ ॥

उपर्युक्त श्लोकको पढ़कर कुँएमे जल निकालना आरम्भ करना चाहिए और जलको छानकर एक बड़े बर्तनमें रख लेना, पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर कलशमें जल भरना चाहिए ।

ॐ ह्रीं श्री ह्री धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्मी शान्तिपुष्ट्य श्रीदिक्कुमार्यो जिनेन्द्रमहाभिषेककलशमुखेष्वेतेषु नित्यसन्निहिता भवत भवत स्वाहा ।

तीर्थनानन तीर्थान्तरतुरधिगमोदारदिव्यप्रभाव
स्तृप्तत्रीर्थोत्तमस्य प्रथितजिनपते प्रेषितप्राभृताभान् ।
श्रीमुख्यरत्यातदेवीनिनहकृतमुखाधास्यतोद्धतशक्ति—
प्रागल्भ्यानुद्वरामा जयजयनिनदे शातकुम्भीयकुम्भान् ॥

इस श्लोकको पढ़कर जलशुद्धि विधानपूर्वक करे। विसर्जन कर के जल-कलशोको सौभाग्यवती स्त्रियां अथवा कन्याओं द्वारा ले आना चाहिए। कलशोंकी संख्या ९ रहती है।

जल लाकर भगवान्का अभिषेक करना चाहिए। अभिषेकके पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर केशर मिश्रित जलधारा छोड़नी चाहिए।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्ह नमोऽर्हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेषदोष कल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नम श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्न प्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामरकामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उसा पवित्रतरगन्धोदकेन जिनमभिषिञ्चामि । मम सर्वशान्ति कुरु कुरु तुष्टि कुरु कुरु, पुष्टि कुरु कुरु स्वाहा ।

मिषेक, तदनन्तर स्वस्ति मङ्गल विधान करे। पश्चात् सकलीकरणकी क्रिया करनी चाहिए। यह सकलीकरणकी क्रिया स्नानोपरान्त जलयात्रा-के पूर्व भी की जा सकती है। परन्तु उत्तम मार्ग यही है कि जलयात्राके उपरान्त सकलीकरण क्रिया की जाय। इसके पश्चात् मङ्गलाष्टक, सहस्रनाम आदि स्वस्ति विधान एवं रत्नत्रय व्रतोद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। पूजनके पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर सङ्कल्प छोड़ना चाहिए। सङ्कल्पमें अक्षत, सुपाड़ी, हल्दी, पीली सरसों और एक पैसा रहना चाहिए।

ओं अथ भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणो मते त्रैलोक्यमध्य मध्यासीने मध्यलोके श्रीमदनावृतयक्षसंसेव्यमाने दिव्यजम्बूवृक्षोप लक्षितजम्बूद्वीपे महनीयमहामेरोर्दक्षिणभागे अनादिकालसंसिद्धभरत नामधेयप्रविराजितषट्खण्डमण्डितभरतक्षेत्रे सकलशलाकापुरुषसम्भवावि राजितार्यखण्डे परमधर्मसमाचरणविहारप्रदेशे' अस्मिन् विनेयजनाभिरामे आरानगरे' अस्मिन् दिव्यमहाचैत्यालयप्रदेशे एतदवसर्पिणीकालावमाने प्रवृत्तसुवृत्तचतुर्दशमनुप्रमाणितमहालोकव्यवहार श्रीवृषभस्वामिवीर स्यमहत्तमहापुरुषपरिषत्प्रतिपादितपरमोपशमपवक्रम वृषभसेनसिंहसेन चारसेनादिगणधरस्वामिनिरूपितविशिष्टधर्मोपदेशे पञ्चमकाले प्रथमपादे महतिमहावीरवर्धमानतीर्थङ्करोपदिष्टसद्धर्मव्यतिकरे श्रीगौतमस्वामिप्रति पादितसन्मार्गप्रवर्तमाने श्रेणिकमहामण्डलेश्वरसमाचरितसन्मार्गावशेषे

जलधाराके पश्चात् गन्धोदक लेनेका मन्त्र—

मुक्तिश्रीवनितावरोदकमिदं पुण्याङ्कुरोत्पादकं
नागेन्द्रत्रिदशेन्द्रचक्रपदवीराज्याभिषेकोदकम्।
सम्यग्ज्ञानचरित्रदर्शनलतासंवृद्धिसम्पादकं
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिनस्नानस्य गन्धोदकम्॥

१ इस स्थानपर अपने प्रदेशका नाम जोड़ना चाहिए।

२ इस स्थानपर अपने नगरका नाम जोड़ना चाहिए।

२०१३ मिते[1] विक्रमाब्दे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे पूर्णिमायां तिथौ गुरुवासरे प्रशस्तताराबारयोगकरणनक्षत्रहोरामुहूर्तलग्नयुक्तायाम् अष्टमहाप्रातिहार्य शोभितश्रीमदर्हत्परमेश्वरसन्निधौ अहं रत्नत्रयनामकव्रतं स्थापयामि। ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उसा सर्वशान्तिर्भवतु, सर्वकल्याणं भवतु श्रीं क्लीं नमः स्वाहा।

इसके अनन्तर पुण्याहवाचन, शान्ति, विसर्जन आदिको सम्पन्न करे।

रत्नत्रयव्रतोद्यापन की सामग्री

उद्यापनके लिए पूजन सामग्री, रत्नत्रय यन्त्र, तेरह शास्त्र, मन्दिरके लिए तेरह पूजाके बर्तन, छत्र, चमर, झारी आदि मंगल द्रव्य, चँदोवा तथा नगदी रुपये दान देना चाहिए। उद्यापनके उपरान्त साधर्मी भाइयोंके तेरह घरोंमें फल भेजना चाहिए। यदि शास्त्र और पूजनके बर्तन तेरह-तेरह देनेकी शक्ति न हो तो कमसे कम तीन अवश्य देने चाहिए। इस व्रतका उद्यापन तीन वर्षोंमें किया जाता है। पूजनमें चढ़ानेके लिए ९३ चाँदीके स्वस्तिक, इतनी ही सुपारियाँ, चार नारियल रहने चाहिए। ये नारियल प्रत्येक वलयकी पूजामें चढ़ाने चाहिए। सुपारी, साथिया प्रत्येक अर्घमें देना चाहिए। यह अर्घ माडनेके कोठेमें चढ़ेगा।

दशलक्षण व्रतोद्यापन

इस व्रतके उद्यापनके लिए १०० कोठोंवाला मण्डल गोलाकार बनाना चाहिए। मंडल लाल, श्वेत, हरे, पीले और नीले वर्णके चावलोंसे बनाना चाहिए। इसके पश्चात् रत्नत्रय व्रतोद्यापनके समान ही जल्यात्रा करनी होती है। पूजनकी विधि रत्नत्रय व्रतके समान है। सकलीकरण अंगन्यास आदि क्रियाएँ पूर्ववत् कर लेनी चाहिए। अनन्तर उद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। इस व्रतके उद्यापनके आदिमें बताया गया है—

आदौ गर्भगृहे पूजा क्रियते सद्बुधोत्तमैः ।
जिननामावलिं शुद्धां सकलीकरणादिकम् ॥

---

१ जिस दिन उद्यापन करना हो, उसके तिथ्यादि जोड़ना चाहिए।

सन्मण्डपप्रतिष्ठा च पठ्यते पण्डितोत्तमैः ।
नानाशाखान्विते धीरैः कलागुणविराजिते ॥
शतकमलसमूह वर्तुलाकारचक्रं
भवशतभञ्जनाद सर्वमोक्षप्रपत्रम् ।
परमगुणनिधान सद्यशोधप्रधान
विविधकुसुमपुष्पैः शुद्धयन्त्रे क्षिपामि ॥

उद्यापनके अनन्तर व्रतसमाप्ति सूचक रत्नत्रयवाले संकल्पको यहाँ भी बदलकर रत्नत्रयके स्थानपर दशलक्षणव्रत जोड़ देना चाहिए। अवशेष ग्राम, नगरादि और अपना नाम आदि भी जोड़ लेने चाहिए।

उद्यापनकी सामग्री

छत्र, चमर, झारी आदि मंगलद्रव्य, जयमाला, कलश, दश शास्त्र, मन्दिरके लिए दश बर्तन, दशलक्षण यन्त्र, १०० चाँदीके स्वस्तिक, दश नारियल, १०० मुद्राओंकी आवश्यकता होती है। इस उद्यापनमें दश घरोंमें फल बाँटना आवश्यक है।

षोडशकारण व्रतोद्यापन

इस व्रतके उद्यापनके लिए कुल २५६ कोठका मण्डल बनता है। प्रथम मण्डल दर्शनविशुद्धिका होता है, इसमें १८ कोठक होते हैं। द्वितीय मण्डल विनयसम्पन्नताका होता है, इसमें ५ कोठक होते हैं। तृतीय मण्डल शीलभावनाका होता है, इसमें १० कोठक होते हैं। चौथा मण्डल आभीक्ष्णज्ञानोपयोगका होता है, इसमें ४२ कोठक होते हैं। पाँचवाँ संवेग नामकका मण्डल है, इसमें १४ कोठक हैं। छठवाँ शक्ति समाज नामका मण्डल है, इसमें ४ कोठक होते हैं। सातवाँ शक्तितप नामका मण्डल, है, इसमें २४ कोठक होते हैं। आठवाँ साधु समाधि नामका मण्डल है, इसमें ४ कोठक हैं। नवाँ वैयावृत्य है, इसमें ४ कोठक हैं। दसवाँ अर्हद्भक्ति नामका मण्डल है, इसमें १२ कोठक होते हैं। ग्यारहवाँ आचार्यभक्ति नामक मण्डल है, इसमें १२ कोठक होते हैं।

बारहवाँ बहुश्रुतभक्ति नामका है, इसमें २ कोष्ठक होते हैं। तेरहवाँ प्रवचन भक्ति नामका है, इसमें ५ कोष्ठक होते हैं। चौदहवाँ आवश्यक परिहाणि नामका है, इसमें ६ कोष्ठक हैं। पन्द्रहवाँ मार्ग प्रभावना है, जिसमें १० कोष्ठक होते हैं। सोलहवाँ प्रवचनवात्सल्य नामका मण्डल है, इसमें ४ कोष्ठक होते हैं। इस प्रकार २५६ कोष्ठकका माडना रंगीन चावलोंसे बना लेना चाहिए।

जलयात्रा, अभिषेक, मंगलाष्टक, सकलीकरण, अंगन्यास, स्वस्ति वाचन आदिके उपरान्त षोडशकारण व्रतोद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। सकल्प मन्त्र पूर्ववत् ही पढ़ा जायगा, पर उसमें षोडशकारण व्रतका नाम तथा तिथि नक्षत्रादि जोड़कर संकल्प छोड़ना चाहिए। पश्चात् पूर्ववत् पुण्याहवाचन, शान्ति, विसर्जन करना चाहिए। उद्यापनके अनन्तर १६ घरोंमें फल वितरित करना चाहिए।

उद्यापनकी सामग्री — षोडशकरण यन्त्र, पूजन सामग्री, २५६ चाँदीके स्वस्तिक, २५६ सुपाड़ी, १६ शास्त्र, १६ नारियल, बर्तन, छत्र, चमर आदि मंगलद्रव्य, चंदोवा, दान करनेके लिए नगद रुपये आदि आवश्यक सामान हैं।

अष्टाह्निका — इस व्रतके उद्यापनके लिए प्रत्येक दिशामें तेरह तेरह चैत्यालय बनाकर कुल ५२ चैत्यालयोंका मण्डल बना लेना चाहिए। कपड़ेपर बने माण्डना को काममें कभी भी नहीं लाना चाहिए। चावलों द्वारा निर्मित माड़ना ही उत्तम होता है। माड़ना बन जानेके उपरान्त, पूर्ववत् जलयात्रा और अभिषेक आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए। इस व्रतका उद्यापन आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको करना चाहिए। सकलीकरण अंगन्यास आदिके पश्चात् स्वस्तिवाचन पूर्वक उद्यापन की पूजा करनी चाहिए। अनन्तर रत्नत्रय व्रतोद्यापनमें बतलाये गये संकल्प मन्त्रको पढ़कर संकल्प करना चाहिए। पश्चात् पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करना चाहिए।

मन्दिरमें देनेके लिए आठ आठ उपकरण, आठ शास्त्र, पूजा-सामग्री, घ दोवा, पूजनमें चलानेके लिए ५२ चाँदीके स्वस्तिक, ५२ सुपाडी, चार नारियलकी आवश्यकता होती है। सिद्धचक्र यन्त्र भी बनवाना चाहिए।

उद्यापनकी सामग्री

इस उद्यापनके लिए ८१ कोठोंका मण्डल बनाया जाता है। मण्डल पर ही भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमा विराजमान की जाती है। अभिषेकके लिए जल लानेके पश्चात् सकलीकरण, अंगन्यास, मण्डलाष्टक, स्वस्तिविधान करनेके पश्चात् गन्धकुटीकी पूजा करनी चाहिए। अनन्तर उद्यापनकी पूजा, पश्चात् पूर्वोक्त सकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करना चाहिए। बताया गया है—

रविवार व्रतोद्यापन

आदौ गन्धकुटीपूजा ततः स्नपनमाचरेत्।
पश्चात् कोष्ठगता पूजा कर्तव्या विबुधोत्तमैः ॥
पार्श्वनाथजिनेन्द्रस्य प्रतिमां परमां शुभाम्।
भद्रासनादिविधिना स्थापयेत् स्वस्तिकोपरि ॥
पश्चात् पूजा प्रकर्त्तव्या विधिवद्बुधा मुदा तथा।
उत्तमां सवसामग्रीं मेलयित्वा प्रमुदित ॥

नौ शास्त्र, मन्दिरके लिए नौ बर्तन, उपकरण, चन्दोवा, पूजाके लिए ८१ गोटा या चाँदीके स्वस्तिक, ८१ सुपाडी, ९ नारियल, पूजा सामग्री, नौ श्रावकोंके घर नौ नौ फल वितरित कराके लिए एकत्र करना चाहिए। उद्यापनके अनन्तर नौ श्रावकोंको भोजन कराना चाहिए।

उद्यापनकी सामग्री

शुद्ध कोरा घड़ा लेकर उसे धो लेना चाहिए। पश्चात् श्रीखण्ड, केशर आदि सुगन्धित वस्तुओंका लेपन उस घड़ेपर करना चाहिए। सुवर्ण, चाँदी या पञ्चरत्नकी पुड़िया उस घड़ेमें छोड़नी चाहिए। घड़ेको श्वेत वस्त्रसे आच्छादित कर उस पुष्पमालाएँ पहना देना चाहिए। अनन्तर घड़ेके ऊपर एक बड़ी थाली प्रक्षाल करके रखना, उस थालीमें अनन्तका मण्डल १९६

अनन्तव्रतोद्यापन

लेना। एक दूसरी थालीमें श्रीखण्डसे अनन्त यन्त्र लिखकर अथवा स्वस्ति लिखकर चौबीसी प्रतिमा विराजमान करना। गाँठ दिया हुआ अनन्त पहली थालीमें ही रखा जाता है। अथवा चौकी पर ही चौदह मण्डलका वृत्ताकार माँडना बना लेना, प्रत्येक मण्डलमें चौदह चौदह कोष्ठक बनाना। मण्डलके मध्यमें चौबीसी प्रतिमा विराजमान कर पूजन करना चाहिए। प्रत्येक वलयकी पूजामें नारियल चढ़ाना चाहिए तथा प्रत्येक कोठेपर सुपाड़ी। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अभ्याय्यके पश्चात् उद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। पूजनोपरान्त सकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करना चाहिए।

१४ प्रकारके उपकरण, १४ शास्त्र, पूजाके लिए १९६ सुपाडी, १९६ गोटे या चाँदीके स्वस्तिक, १४ नारियल और पूजन सामग्री एकत्र करनी चाहिए। उद्यापनके पश्चात् १४ श्रावकोंको भोजन कराना चाहिए। अनन्तव्रतका यन्त्र भी बनवाया जाता है।

उद्यापनकी सामग्री

इस व्रतके उद्यापनके लिए २५ कमलका मण्डल बनता है। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरणके पश्चात् उद्यापनकी पूजा की जाती है। उद्यापनके आरम्भमें विधि बतलाते हुए कहा गया है—

पुष्पाञ्जलि व्रतोद्यापन

भो भव्या शृण्वतामस्य सामग्र्यादि विधिं पुरा।
जलादिफलपर्यन्तं सवद्रव्य समुत्तमम्॥
कसालतालभृङ्गारघण्टातोरणमालिका।
चन्द्रोपकदीपमालाधूपस्य दहनानि च॥
भामण्डलादिकान्यत्र चैतेषां पञ्चक पृथक्।
खज्जकमोदकादीनां पञ्चविंशतिकं पुन॥
अन्यानि च सुवस्तूनि स्वाद्यखाद्यानि शुद्धित।
आनेयमिति सङ्कल्यं सर्वं जिनमन्दिरं प्रति॥

पद्मरत्नत्रयस्पूर्णं पञ्चविंशतिपद्मजम् ।
मण्डलं सुन्दरं कुर्यात् मध्ये मेरु सकर्णिकम् ॥
अतो गन्धकुटीसरं जिन मभ्यर्च्य तत्परम् ।
जिनादीन् संपूज्य सूरिपादाब्जं च बुधा क्रमात् ॥

अर्थात्—छत्र, चमर, झारी, तोरण, घटा, धूपदान, चंदोवा, दीवट, भामण्डल, पाँच बर्तन, पाँच शास्त्र, २५ नैवेद्य, २५ सुपाडी, पाँच नारियल, पञ्चरत्नकी पुडिया, २५ चाँदी या गाडेके स्वस्तिक आदि सामग्री एकत्र करके मण्डलके मध्य जिनप्रतिमा विराजमान करके उद्यापन पूजा सम्पन्न करनी चाहिए। पूजापके उपरान्त संकल्प, जाप, पुण्याहवाचन, शान्ति विसर्जन आदि क्रियाएँ करनी चाहिए। अनन्तर कम से कम पाँच श्रावकोंको भोजन कराना, दान देना आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए।

इस व्रतके उद्यापनके लिए तीन मण्डलोंमें चौबीस चौबीस कोठक बनाना चाहिए। मण्डलके मध्यम 'ओं ह्रीं', लिखकर उसपर स्थापना रखनी चाहिए। मण्डलके चारों कोनोंपर "ओं ह्रीं भूत भविष्यवर्त्तमानकालानचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः" लिखना चाहिए। जल्यात्रा, अभिषेक, सकलीकरणके पश्चात् मंगलाष्टक, स्वस्तिविधान, अनन्तर उद्यापनकी ७२ पूजाएँ करनी चाहिए। पूजापके उपरान्त, पूर्वोक्त संकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति विसर्जन आदि क्रियाओंके उपरान्त इस व्रतको जाप लोगोंसे करनी चाहिए।

त्रिलोकतीज व्रतोद्यापन

उद्यापनके लिए ७२ चाँदी या गाडके स्वस्तिक, तीन नारियल, ७२ सुपाडी, उपकरण, बर्तन, कम से कम तीन शास्त्र, पूजन सामग्री आदि एकत्र करनी चाहिए। उद्यापनके अनन्तर २४ श्रावकोंको भोजन कराना, २४ श्रावकोंके घर फल भेजना चाहिए।

इस व्रतके उद्यापनके लिए सात कोठोंका एक वल्याकार मण्डल बनाना चाहिए। अथवा एक कोरे घड़ेको स्वच्छ और सुगन्धित कर

मुकुटसप्तमीव्रत

उसके ऊपर एक थाली रखनी चाहिए। इस थालमें सात कोठे एक ही मण्डलमें बना देना चाहिए। जल्यात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् चतुर्विंशतिजिनपूजा, पश्चात् प्रत्येक व्रतके व्रतकी आदिनाथ स्वामी की पूजा करनी चाहिए। उद्यापनके समय जिनालयको सात-सात उपकरण, सात शास्त्र, चदोवा, माण्डल, बर्तन आदि देना तथा श्रावक और मुनियोंको आहार दान देना चाहिए। यह उद्यापन श्रावण सुदी अष्टमीको किया जाता है।

इस व्रतके उद्यापनके लिए एक मण्डलाकार दस कोठोंका मण्डल बनाना चाहिए। मण्डलके मध्यमें "ॐ ऋषभाय नमः" लिखना चाहिए।

अक्षयफल दशमी व्रतोद्यापन

इस व्रतका उद्यापन श्रावण शुक्ला एकादशीको किया जाता है। जल्यात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके उपरान्त उद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। उद्यापनमें मन्दिरको दस शास्त्र, दस बर्तन, चन्दोवा, मामण्डल, छत्र, चमर आदि देना तथा श्रावकोंको भोजन कराना, पाठशालाओं, औषधालयों एवं अन्य उपयोगी संस्थाओंके लिए दान देना चाहिए। इस व्रतके उद्यापनमें दस श्रावकोंके घर दस दस आम या नारंगी ही वितरित की जाती हैं।

यह व्रत बारह वर्षतक पालन किया जाता है, पश्चात् उद्यापन किया जाता है। उद्यापनके लिए बारह कोठोंका मण्डलाकार मंडल बनाया जाता है। मध्यमें 'ओं ह्रीं असि आ उसाय नमः' लिखा जाता है। मडलके चारों कोनोंपर णमोकार मन्त्र लिख दिया जाता है। जल्यात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् उद्यापन पूजा की जाती है। प्रत्येक कोठेमें प्रथक पूजन किया जायगा। प्रत्येक कोठेके पूजामें एक एक नारियल भी चढाया जाता है तथा गोटे या चाँदीका स्वस्तिक भी रहता है। उद्यापनमें चतुर्मुखी प्रतिमाका निर्माण और प्रतिष्ठा

श्रावण द्वादशी व्रतोद्यापन

करके विराजमान करना चाहिए। चार शास्त्र, चार उपकरण, पूजनके बर्तन, चन्दोवा, तोरण, घण्टा, छत्र, चमर आदि मन्दिरको चढ़ाना चाहिए। चारों प्रकारका दान देना, रोगी दुखियोंकी सेवा करना एवं विद्याका प्रबंध करना चाहिए।

रोहिणी व्रतोद्यापन

पाँच वर्ष, पाँच महीना करनेके उपरान्त इस व्रतका उद्यापन किया जाता है। उद्यापनके लिए एक कोरा मिट्टीका घड़ा लेकर उसे जलसे शुद्ध करनेके पश्चात् उसपर चन्दन और केशरका लेप करना चाहिए। पश्चात् उसे एक श्वेत वस्त्रसे आच्छादित कर पुष्पमाला पहना देना चाहिए। अनन्तर उसके ऊपर एक थाली रखकर पूजा करनी चाहिए। थालमें ऋद्धि यन्त्र बनाया जाय। कुल रोहिणी संख्या व्रतके दिनोंमें ७२ प्रमाण होती है अतः इस व्रतके उद्यापनमें त्रिकाल चतुर्विंशतिपूजन पृथक् पृथक् करना होगा। पूजनकी प्रक्रिया पूर्ववत् है—जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यास, मगलाष्टक, स्वस्तिविधान, अनन्तर ७२ पूजाएँ होती हैं। प्रत्येक पूजाके अन्तमें चाँदी या सोनेका स्वस्तिक, नारियल या सुपाडी चढ़ाई जाती है। उद्यापनमें कमसे कम ५ शास्त्र, पूजनके बर्तन, चन्दोवा झारी घण्टा आदि चढ़ाया जाता है। शक्ति हो तो ७२ श्रावकोंको भोजन कराया जाता है।

आकाशपञ्चमी व्रतोद्यापन

पाँच वर्ष व्रत करनेके उपरान्त इसका उद्यापन भाद्रपद शुक्ला षष्ठी को किया जाता है। उद्यापनके लिए एक घड़ा लेकर शुद्धकर, पुष्पमालाएँ उसे पहनाकर थालीमें सत्रह कोठोंका विनायक यन्त्र बनावे। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, मगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् उद्यापन पूजा करे। यह उद्यापन पूजन प्रकाशित नहीं है, अतः इसमें पृथक् पृथक् मंत्रसे परमेष्ठी पूजन करनेके पश्चात् विनायक यन्त्रकी सत्रह पूजा करनी चाहिए। पूर्ण अर्घ के उपरान्त सकल्प, पुण्याहवाचन आदि क्रियाएँ करें। सत्रह म सुपाडी, स्वस्तिक चढ़ावे। कलशमें पचरत्नकी पुड़िया छोड़नी

मन्दिरके लिए पाँच शास्त्र, पाँच बर्तन, छत्र, चमर, चँदवा आदि दान करना चाहिए। उद्यापनके अनन्तर कम-से-कम पाँच श्रावकोंको भोजन कराना तथा पाँच घरोंमें पाँच पाँच फल भेजना आवश्यक है।

कोकिलापञ्चमी व्रतोद्यापन

इस व्रतके उद्यापनके लिए पञ्चपरमेष्ठी मण्डल बनाया जाता है। प्रथम वलयमें ४६ कोष्ठक, द्वितीय सिद्धवलयमें ८ कोष्ठक, तृतीय आचार्य वलयमें ३६ कोष्ठक, चतुर्थ उपाध्यायमें २५ कोष्ठक और पंचम साधुवलयमें २८ कोष्ठक बनाये जाते हैं। इस प्रकार कुल १४३ कोष्ठक होते हैं। मन्त्रजाप, अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके उपरान्त पञ्चपरमेष्ठी पूजा, जो माघनन्दी आचार्य द्वारा विरचित है, करनी चाहिए। प्रत्येक कोष्ठकमें सुपारी और स्वस्तिक चढ़ाया जाता है तथा प्रत्येक वलयकी पूजामें नारियल, पूजाके पश्चात् पुनः संकल्प, पुण्याह वाचनादि करने चाहिए। मन्दिरके लिए पाँच शास्त्र, पाँच बर्तन, उपकरण, घण्टा, चाँदोवा आदिका दान करना तथा २५ स्त्रियोंको भोजन कराना, यदि शक्ति हो तो १४३ स्त्रियोंको भोजन कराना तथा २५ घरोंमें पाँच पाँच फल बाँटना चाहिए।

चन्दनषष्ठी व्रतोद्यापन

छ वर्ष तक व्रत करनेके उपरान्त इस व्रतका उद्यापन भाद्रपद कृष्णा सप्तमीको होता है। घटको शुद्ध कर उसको पुष्पमाला पहनाकर उसके ऊपर एक बड़ा थाल, जिसमें केशरसे विनायक यन्त्र बनाया गया हो, स्थापित करे। अभिषेक आदि क्रियाओंके पश्चात् उद्यापन करे। उद्यापनमें भूतकालीन चतुर्विंशति, वर्तमानकालीन चतुर्विंशति, भविष्यकालीन चतुर्विंशति, विद्यमान विंशति तीर्थंकर, पञ्चपरमेष्ठी और महावीरस्वामी इस प्रकार कुल छ पूजा की जाती हैं। पूर्ण अर्घके पश्चात् संकल्प, पुण्याहवाचनादि करे। मन्दिरको छ शास्त्र, छ उपकरण, छ बर्तन प्रदान करे। चारों प्रकारका दान दे। कमसे कम छ श्रावकोंको भोजन कराये।

यह व्रत सात वर्ष करनेके उपरान्त भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको इस

व्रतका उद्यापन किया जाता है। पूर्ववत् मिट्टीके कलशके ऊपर थाल रखकर उद्यापनकी पूजा होती है। थालमें सात दलका कमल बनाया जाता है। तथा प्रत्येक दल पर क्रमश: 'ओं ह्रीं अ सि आ उ सा' लिखा जाता है। पूर्ववत् सभी क्रियाओंके करनेके उपरान्त पंच परमेष्ठी और समुच्चय चौबीसी पूजाके पश्चात् ऋषभनाथसे सुपार्श्वनाथ तक सात पूजाएँ की जाती हैं। उद्यापनमें सात शास्त्र, सात उपकरण, सात बर्तन मन्दिरको दिये जाते हैं तथा चारोंका दान दिया जाता है।

निर्दोषसप्तमी व्रतोद्यापन

सोलह वर्ष पर्यन्त करनेके पश्चात् भाद्रपद शुक्ला नवमीको इस व्रत का उद्यापन करना चाहिए। उद्यापनके लिए मिट्टीका कलश लेकर शुद्ध करे, उसे चन्दन और केशरसे लिप्त करे, पश्चात् पुष्पमाला पहनाकर उसपर जिनायक यन्त्र बनाकर थाल रखे और उसी थालमें पूजा करे। अभिषेकादि क्रियाके पश्चात् सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधान, पंच-परमेष्ठी पूजन और समुच्चयचौबीसी पूजनके पश्चात् चौबीसी पूजनमेंसे आरम्भके सोलह तीर्थंकरोंकी पूजा करनी चाहिए। पूर्ण अर्घके अनन्तर संकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करे। उद्यापनमें सोलह उपकरण, सोलह शास्त्र, पूजनके बर्तन मन्दिरको भेंट करे। सोलह श्रावकोंके यहाँ मिठाई फल भेजे। कमसे कम सोलह श्रावकोंको घर बुलाकर भोजन करावे।

निश्शल्य अष्टमी व्रतोद्यापन

इस व्रतका उद्यापन दस वर्ष व्रतका पालन करनेके उपरान्त भाद्रपद शुक्ला एकादशीको होता है। एक घड़ा लेकर उसे पूर्ववत् शुद्ध और सुगंधित कर पुष्पमालाओंसे आच्छादित करे। उसके ऊपर एक थालमें जिनायक यन्त्र बनाकर विराजमान करे। अभिषेक आदि क्रियाओंके पश्चात् पंचपरमेष्ठी, चौबीसी, आदिनाथ, चन्द्रप्रभु, शीतलनाथ, विमलनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामीकी पूजा करे। संकल्प, पुण्याह

सुगन्धदशमी व्रतोद्यापन

वाचन पूर्ववत् करे। उद्यापनमें दस शास्त्र, दस उपकरण, पूजाके बर्तन आदि मंदिरको दान दे। साधर्मी श्रावकोंको भोजन करावे। दस दस फल दस श्रावकोंके घर भेजे। शक्ति हो तो दस घरोंमें बर्तन बाँटे।

इस व्रतके उद्यापनके लिए बीचमें एक अष्टदल कमल बनाकर पश्चात् मण्डलाकार दो पंक्तियोंमें तीस कोष्ठक अर्थात् प्रत्येक पंक्तिमें पन्द्रह

कवलचान्द्रायण व्रतोद्यापन

पन्द्रह कोष्ठक बनावे। अष्टदल कमलके ऊपर सिंहासन रखकर प्रतिमा विराजमान करे, पश्चात् जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यास, मगलाष्टक, स्वस्ति विधान करनेके अनन्तर उद्यापन पूजा करे। पूर्ण अर्घके पश्चात् शान्ति, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करे। उद्यापनके अनन्तर जिनालयको शास्त्र, बर्तन, उपकरण दान दे। तीस श्रावकोंको भोजन करावे तथा तीस श्रावकोंके घर फल और मिठाई भेजे।

इस व्रतमें ६३ उपवास किये जाते हैं, अतः इसका मण्डल भी ६३ कोष्ठकोंका होता है। प्रथम मण्डल तीर्थंकर कहलाता है जिसके चौबीस

जिनगुणसम्पत्ति व्रतोद्यापन

कोष्ठक होते हैं। द्वितीय मण्डल चक्रवर्तीका है, इसके बारह कोष्ठक होते हैं। तीसरा मण्डल नारायणका है, इसके ९ कोष्ठक होते हैं, चौथा मण्डल प्रतिनारायणका है, इसके भी नौ कोष्ठक होते हैं। पाँचवाँ मण्डल बलदेवका है, इसके भी नौ कोष्ठक होते हैं। मण्डलके मध्यम भगवान्की प्रतिमा विराजमान कर उद्यापन पूजन करना चाहिए। आरम्भमें जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यास, मगलाष्टक, स्वस्तिविधानके अनन्तर उद्यापनकी ६३ पूजाएँ करनी चाहिए। उद्यापनकी प्रत्येक पूजाके अन्तिम अर्घमें स्वस्तिक, सुपारी नैवेद्य लेना चाहिए। उद्यापनमें दस शास्त्र, दस उपकरण मन्दिरको देना चाहिए। ६३ श्रावकोंको भोजन कराना तथा ६३ श्रावकोंके यहाँ फल मिठाई भेजना और शक्तिके अनुसार ६३ घरोंमें बर्तन बाँटना चाहिए।

चौदहवर्षतक व्रत पालन करनेके उपरान्त भाद्रपद मासकी पूर्णिमाको इस व्रतका उद्यापन किया जाता है। उद्यापनके दिन एक घड़ा लेकर,

चतुर्दशी व्रतोद्यापन उसे शुद्ध करे। पश्चात् उसी घडापर विनायक-यन्त्र लिखकर एक थाली रखे। इस थालीमें उद्यापन पूजा करनी चाहिए। उद्यापनमें चौदह उपकरण, चौदहशास्त्र, बतन आदि मन्दिरको देना चाहिए। चौदह श्रावकोंको भोजन तथा चौदह घरोंमें फल भेजना चाहिए।

इस व्रतका उद्यापन करनेके लिए ९ दलका कमल मण्डल बनाया जाता है। बीचमें 'ॐ ह्रीं' लिखा जाता है। जलयात्रा, अभिषेक आदिके

निर्जरपञ्चमी व्रतोद्यापन उपरान्त उद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। इस पूजामें पंचपरमेष्ठीकी पृथक् पृथक् पाँच पूजा, चौबीसीपूजन, विद्यमान विंशति तीर्थंकर पूजन, आदिनाथ पूजन और महावीर स्वामीका पूजन, इस प्रकार नौ पूजन किये जाते हैं। उद्यापनमें मन्दिरके लिए नौ उपकरण, नौ शास्त्र, नौ बतन दिये जाते हैं। चारों प्रकारका दान देना, नौ श्रावकोंको भोजन कराना, नौ घरोंमें फल भेजना भी इसकी विधिमें परिगणित है।

इस व्रतके उद्यापनके लिए आठ मण्डलका १४८ कोठोंका मण्डल बनाया जाता है। पहला मण्डल ज्ञानावरणीयका है, इसमें ५ कोठक होते

कर्मक्षय-व्रतोद्यापन हैं। दूसरा दर्शनावरणीयका होता है, इसमें ९ कोठक होते हैं। तीसरा वेदनीयका है, इसमें २ कोठक, चौथा मोहनीयका है, इसमें २८ कोठक, पाँचवाँ आयुका है, इसमें ४ कोठक, छठवाँ नामकर्मका है इसमें ९३ कोठक, सातवाँ गोत्रका है, इसमें दो कोठक एवं आठवाँ अन्तरायका है, इसमें ५ कोठक होते हैं। उद्यापन पूजनके पहले जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण आदि क्रियाएँ पूर्ववत् करनी चाहिए। पश्चात् उद्यापनके उपलक्ष्यमें मन्दिरको कम से कम ८ उपकरण ८ शास्त्र, ८ बतन दे तथा साधर्मियोंको भोजन करावे। शक्तिके अनुसार चारों प्रकारका दान दे।

अवशेष समस्त व्रतोंके उद्यापनके लिए उस व्रतके उपवास या वर्षोंके अनुसार माण्डना बना लेना चाहिए। जिन व्रतोंका माण्डना नहीं बन

अन्य व्रतोंके उद्यापनकी विधि

सकता है, उन व्रतोंके उद्यापनके लिए सुगरकृत मिट्टीके कलशके ऊपर थाल रखकर पूजा करनी चाहिए। पूजाके पहले जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधान सभी उद्यापनोंमें होगा। पूजाके पूर्ण होनेके उपरान्त संकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन किया जायगा। उद्यापनकी पूजाके कार्यमें सुपाड़ी, स्वस्तिक चढ़ाना चाहिए। मन्दिरको उपकरण, बरतन और शास्त्र देने चाहिए। किसी भी व्रतका उद्यापन व्रतकी समाप्तिके दिन किया जाता है। पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाके अवसरपर कभी भी किसी भी व्रतका उद्यापन किया जा सकता है।

प्रथमानुयोग और व्रतविधान

प्रथमानुयोगके शास्त्रोंमें व्रतविधान और व्रतोंके फल प्राप्त करनेवाले व्यक्तियोंके चरित वर्णित हैं। हरिवंशपुराणके ३४ वें सर्गमें सर्वतोभद्र, रत्नावली, सिंहनिष्क्रीडित आदि व्रतोंका विस्तारपूर्वक वर्णन अंकित है। बताया गया है कि श्रेणिकने भगवान्के समवशरणमें गौतम स्वामीसे प्रश्न कर व्रतोंके स्वरूप और उनके फल प्राप्तकर्ताओंके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त की है। पद्मपुराण, आदिपुराण, हरिवंशपुराण, आराधनाकथाकोश व्रतकथाकोष, हरिषेणकथाकोश आदि ग्रन्थोंमें व्रत पालन करनेवाले व्यक्तियोंके चरित वर्णित हैं। इस प्रकरणमें प्रमुख व्रतोंकी कथाओंका संक्षिप्त निरूपण किया जाता है। इन आख्यानोंके अध्ययनसे जनसाधारणकी प्रवृत्ति व्रतधारण करनेकी ओर होगी।

समस्त व्रतोंमें प्रधान रत्नत्रय व्रत है। विधिपूर्वक इस व्रतके पालन करनेसे स्वर्गादिके सुखोंको भोगकर व्यक्ति निर्वाणपद प्राप्त करता है। इस व्रतके पालन करनेवाले राजा वैश्रवणकी कथा निम्न प्रकार है—

सुदर्शन मेरुकी दक्षिणदिशामें विदेहक्षेत्रके कच्छावती देशके मध्य वीतशोकपुर नामके नगरमें वैश्रवण नामका राजा धर्म और नीतिपूर्वक प्रजाका पालन करता था। एक दिन वह नृपति वसन्तऋतुमें वनविहारके

लिए गया। वहाँ प्रकृतिकी सुन्दर छटाको देखकर इसके मनमें अनेक प्रकारकी भावना उत्पन्न होने लगी। इसी मानसिक द्वन्द्वके बीच उसकी दृष्टि पासमें ही एक शिलापर ध्यानस्थ मुनिराजके ऊपर पड़ी। वह हर्ष विभोर हो मुनिराजके पास गया और विनययुक्त हो उनके चरणोंके निकट नमोऽस्तु कहकर बैठ गया। मुनिराजने धर्मवृद्धिका आशीर्वाद दिया, पश्चात् राजाको सम्बोधित करते हुए उपदेश दिया—'राजन्, मिथ्यात्वके कारण ही यह प्राणी संसारमें परिभ्रमण करता है। मिथ्यात्वसे ही नवीन कर्मोंका आस्रव होता है तथा इसके कारण ज्ञान और चारित्र भी विपरीत होते हैं। सम्यग्दर्शन ही आत्माका निजी स्वभाव है, इसके प्राप्त होते ही यह प्राणी आत्माके निज परणतिमें रमण करता है। अतः रत्नत्रयकी प्राप्तिके लिए सर्वदा प्रयास करना चाहिए। रत्नत्रय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रके धारण करनेसे ही जीव सुख शान्ति प्राप्त करता है। रत्नत्रय शरण है, यही मोक्षका मार्ग है। इस रत्नत्रयको जीवनमें लानेके लिए रत्नत्रय व्रतका पालन करना चाहिए। व्रत क्रियारूप अनुष्ठान होता है, इसके पालन करनेसे जीवनमें रत्नत्रयका स्फुरण होता है।

मुनिराजके इस उपदेशको सुनकर राजा वैश्रवणने पुनः मुनिराजसे कहा—'प्रभो! मानव पर्यायकी सार्थकता किसमें है? गृहस्थावस्थामें रहकर व्यक्ति किस प्रकार धर्मका पालन कर सकता है? क्या उस रत्नत्रय व्रतको मुझ जैसे श्रावक भी धारण कर सकते हैं? इस व्रतके धारण करनेका फल क्या है?'

मुनिराज—'राजन्! मानव पर्यायकी सार्थकता धर्मसाधनमें है। जो व्यक्ति इस अमूल्य पर्यायका उपयोग धर्मसाधनके लिए करता है, वह धन्य है। गृहस्थाश्रममें रहकर भी व्यक्ति धर्मका पालन कर सकता है। यह आश्रम ही जीवनकी तैयारीका क्षेत्र है। रत्नत्रय आत्माका धर्म है अथवा यों कहना चाहिए कि आत्मा ही स्वयं रत्नत्रय स्वरूप है। इस रत्नत्रय धर्मको श्रावक भी धारण कर सकता है। विधिपूर्वक रत्नत्रयका पालन करनेसे स्वर्ग मोक्षकी प्राप्ति होती है।

राजा वैश्रवणने मुनिराजसे रत्नत्रय व्रत ग्रहण किया। उसने १३ वर्षों तक यथाविधि इस व्रतका पालन किया। इसके पश्चात् उत्साहपूर्वक व्रतका उद्यापन कर दिया। रत्नत्रय व्रतके आचरणके कारण उस नृपति की आत्मा इतनी पावन हो गयी कि उसे संसार नीरस दिखलायी पड़ने लगा। एक दिन उसे तूफानके कारण एक वृक्ष जड़से उखड़ा हुआ दिखलायी पड़ा। विशालकाय वृक्षका इस प्रकार पतन होते देख राजा सोचने लगा—'इस संसारके सभी मोहक पदार्थ विध्वंसशील हैं। यहाँ सभी पदार्थोंकी पर्याय निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं। एक दिन मुझे भी मृत्युके मुखमें जाना पड़ेगा।'

अतः अब आत्मकल्याणका अवसर आ गया है। वह द्वादश अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन करने लगा, जिससे उसकी आत्मा वैराग्यसे परिपूर्ण हो गयी। उसने राजपाट छोड़कर दिगम्बर-दीक्षा धारण की। रत्नत्रय व्रतके अभ्यासके कारण उसकी आत्मामें अपरिमित शक्तियाँ आविर्भूत हो चुकी थीं। अपनी आयुका अन्तिम समय जान उसने समाधिमरण धारण किया, जिससे वह अपराजित नामक विमानमें अहमिन्द्र हुआ। पश्चात् वहाँसे चयकर मिथिलापुरीमें महाराज कुम्भरायके यहाँ सुप्रभावती महारानीके गर्भसे मल्लिनाथ तीर्थंकर हो उसने निर्वाणपद पाया।

दशलक्षणव्रत अत्यन्त प्रभावशाली है। इस व्रतके निष्काम पालन करनेसे लौकिक अभ्युदयोंके साथ स्वर्ग मोक्षकी प्राप्ति होती है। महान् पापके उदयसे प्राप्त स्त्रीपर्यायका छेद भी इस व्रतके धारण करनेसे हो जाता है। बताया गया है कि

दशलक्षण व्रतकथा

प्राचीन कालमें धातकीखण्डके पूर्वविदेह देशमें सीतोदा नदीके तटपर विशालाक्षा नामकी नगरी थी। इस नगरके राजा प्रियंकरकी पुत्री मृगांकरेखा, इस नृपतिके मन्त्रीकी पुत्री कामसेना, इस नगरीके सेठ मतिसागर की पुत्री मदनवेगा और लक्ष्मभद्र पुरोहितकी पुत्री रोहिणी इन चारोंने एक ही साथ एक ही गुरुसे शिक्षा प्राप्त की थी। एक दिन वसन्त ऋतुमें ये चारों कन्याएँ अपने अभिभावकोंकी आज्ञा लेकर वनक्रीडाके लिए

निकलीं। वे चारों वनकी शोभा देखती देखती बहुत दूर निकल गयीं। वसन्तके कारण वनके प्रत्येक वृक्षमें नया जीवन, नयी स्फूर्ति और नयी उमंग दिखलायी पड़ रही थी। वन सुषमा अपना सर्वत्र साम्राज्य स्थापित किये हुए थी। शीतल, मन्द, सुगन्धित समीर उनके चित्तको विश्रान्ति दे रहा था। वे चारों कन्याएँ आनन्दविभोर हो प्रकृतिके सौन्दर्यावलोकनमें मग्न थीं। इसी बीच उनकी दृष्टि एक वृक्षके नीचे शिलातलपर बैठे हुए मुनिराजकी ओर गयी। उन कन्याओंने भक्तिभावपूर्वक उन योगिराजको नमस्कार किया और उनसे इस निन्द्य स्त्रीपर्यायसे छुटकारा प्राप्त करनेका उपाय पूछा।

मुनिराज—'बालिकाओ! मनुष्य अपने आचरणके कारण ही उन्नत या अवनत होता है। कर्मवश यह परतन्त्र आत्मा अहर्निश राग द्वेषमें संलग्न रहती है। जब तक आत्मा काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया आदि विकारोंसे युक्त है, तबतक इसे संसारमें अनेक पर्याय धारण करना पड़ती है। पर्याय धारण करनेका कारण कर्म ही है। अतः समस्त वैभाविक पर्यायोंके त्यागका कारण आत्मानुभूतिकी प्राप्ति है। जब प्राणीको आत्मानुभूति हो जाती है, तब उसे यथार्थ सुखकी प्राप्ति हो जाती है। यह सुख कहीं बाहरसे नहीं आता है और न यह आत्माके अखण्ड स्वरूपसे भिन्न कोई पदार्थ ही है। अतः अपनी आत्माका निज स्वभाव प्राप्त करनेके लिए तीव्र मोहोदयको हटाना चाहिए। इसके लिए उत्तम दशलक्षण व्रतका पालन करना आवश्यक है। यह व्रत समस्त पापोंको नाश करनेवाला है तथा सभी प्रकारके सुखोंको देनेवाला है।

मुनिराजसे विधिपूर्वक व्रत ग्रहण कर वे चारों कन्याएँ नगरमें वापस लौट आईं और विधिपूर्वक व्रत पालन करनेमें संलग्न हो गईं। विधिपूर्वक दस वर्ष पर्यन्त व्रतका पालनकर उन्होंने उद्यापन कर दिया। आयुके अन्तिम समय समाधिमरण धारण किया, जिससे वे चारों ही कन्याएँ महाशुक्र नामक दसवें स्वर्गमें अमरगिरि, अमरचूल, देवप्रभु और पद्मसारथी नामक महर्द्धिक देव हुए। वहाँसे च्युत होकर वे देव उज्जयिनी नगरीके

राजा मूलभद्रके घर लक्ष्मीमती रानीके गर्भसे पूर्णकुमार, देवराज, गुणचन्द्र और पद्मकुमार नामक सुन्दर पुत्र हुए। समय पाकर इनके विवाह नन्दन नगरके राजाकी कलावती, ब्राह्मी, इन्दुमती और पद्म नामकी कन्याओंके साथ हुए। ये दम्पति बहुत समय तक आनन्दपूर्वक संसारके सुख भोगते रहे। राजा मूलभद्रके विरक्त होकर दीक्षा धारण करनेके उपरान्त चारों पुत्रोंने धर्म नीतिपूर्वक राज्यका संचालन किया। कुछ समय पश्चात् चारों ही संसारसे विरक्त हो गये और दिगम्बरी दीक्षा धारणकर उग्रतपश्चरण किया, जिससे इन्हें कैवल्यज्ञानकी प्राप्ति हुई। पश्चात् योग निरोध कर अघातिया कर्मोंका नाश कर मोक्ष प्राप्त किया।

षोडशकारण व्रत कथा

बिहार प्रदेशमें राजगृही नामकी नगरी है। यहाँ प्राचीनकालमें राजा हेमप्रभु अपनी रानी विजयावती सहित राज्य करते थे। इस राजाके यहाँ महाशर्मा नामक ब्राह्मण नौकर था और इसकी स्त्री का नाम प्रियंवदा था। इस प्रियंवदाके गर्भसे काल-भैरवी नामकी अत्यन्त कुरूपा कन्या उत्पन्न हुई, जिससे देखकर सभी लोग घृणा करते थे।

एक दिन मतिसागर नामक चारणमुनि आकाशमार्गसे गमन करते हुए उस नगरमें आये। महाशर्माने भक्तिपूर्वक पड़गाहकर उन्हें विधिपूर्वक आहार दान दिया। पश्चात् विनयपूर्वक अपनी कन्याके कुरूपा और कुलक्षणी होनेका कारण पूछा। मुनिराजने अवधिज्ञान द्वारा समस्त वृत्तान्त ज्ञातकर कहा—'यह कन्या पूर्वभवमें उज्जयिनी नगरीके राजा महीपालकी विशालाक्षी नामकी पुत्री थी। एक दिन इसने अभिमानमें आकर क्रीड़ासे निवृत्त होकर जाते समय महातपस्वी ज्ञानसूर्य नामक मुनिराजके ऊपर थूक दिया। पश्चात् राजपुरोहित द्वारा धमकाये जाने पर इसे पश्चात्ताप हुआ और इसने मुनिराजके पास जाकर नमोऽस्तु कर क्षमा

मुनिराज—'वत्स ! धर्मका प्रभाव संसारमें अमिट होता है। जो व्यक्ति धर्मधारण करता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। व्रत—तपश्चरण करनेसे आत्मा पवित्र हो जाती है और जन्म-जन्मान्तरके संचित कर्म भस्म हो जाते हैं। अतः उसकी यह कन्या षोडश कारण भावना भावे और इस व्रतका पालन करे तो इसका यह पाप भस्म हो जायगा तथा यह स्त्री लिंग छेद कर मोक्ष भी प्राप्त कर लेगी।'

मुनिराज द्वारा बतलायी हुई विधिसे कुरूपाने इस व्रतका पालन किया। सोलह वर्ष तक उक्त व्रतका पालन करनेके उपरान्त उसने उस व्रतका उद्यापन कर दिया। पश्चात् समाधिमरण धारण कर प्राण त्याग किया, जिससे स्त्री पर्यायका विनाशकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुई। वहाँसे च्युत होकर उक्त व्रत द्वारा किये गये पुण्यार्जनके प्रभावसे उसने विदेह क्षेत्रमें सीमन्धर तीर्थंकरका पद प्राप्त किया। यह सोलहकारण व्रत तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला है, विधिपूर्वक इस व्रतका पालन करनेसे आत्मा अत्यन्त पवित्र हो जाती है।

अष्टाह्निका व्रतके पालन करनेसे आज तक अगणित व्यक्तियोंने अपनी आत्माको पावन किया है। इस व्रतका पालन कर मैनासुन्दरीके व्रतोपार्जित पुण्य द्वारा कोटिभट राजा श्रीपाल तथा उनके ७०० वीरोंका गलित कुष्ठ दूर हुआ। इस व्रतके प्रभावसे अनन्तवीर्यने चक्रवर्तीका पद और जरासिन्धुने प्रतिवासुदेवका पद प्राप्त किया। सुलोचनाने व्रत जनित पुण्यके कारण संन्यासमरण धारणकर स्वर्ग प्राप्त किया। इस व्रतकी प्रसिद्ध कथा निम्न प्रकार है—

अष्टाह्निका व्रतकथा

"अयोध्या नगरीमें हरिषेण नामका चक्रवर्ती सम्राट् अपनी गन्धर्व सेना नामक पटरानीके साथ न्यायपूर्वक शासन करता था। एक दिन सम्राट् अपनी छेयानवे हजार रानियों सहित वनक्रीडाके लिए गया। वहाँ उसने एक निरापद स्थानमें शिलापट्टपर आसीन अरिंजय और अमित

मुनिराजोंके पास गया और नमोऽस्तु कर बोला—'स्वामिन्! मैंने ऐसा कौन सा पुण्य किया है, जिससे यह बड़ी विभूति मुझे प्राप्त हुई है?'

श्रीगुरु—राजन्! इसी अयोध्या नगरीमें कुबेरदत्त नामक सेठके तीन पुत्र थे—श्रीवर्मा, जयकीर्ति और जयवर्मा। श्रीवर्मा शैशवसे ही विचार शील और धार्मिक प्रकृतिका था। एक दिन इसने मुनिराजकी वन्दना कर नन्दीश्वर व्रत लिया। इसने इस व्रतका आचरण बड़ी सावधानीके साथ किया। आयुके अन्तमें समाधिमरण धारण किया, जिससे यह प्रथम स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ और वहाँ असंख्यात वर्षों तक देवोचित सुख भोगकर तुम यहाँ चक्रवर्ती हुए हो। अष्टाह्निका व्रतके प्रभावसे तुमको नवनिधि, चौदह रत्न, छयानवे हजार रानियाँ आदि विभूतिके साथ छ खण्डका राज्य प्राप्त हुआ है। तुम्हारे भाई जयकीर्त्ति और जयवर्माने भी धर्मगुरुसे श्रावकके व्रत ग्रहण किये तथा उन दोनोंने भी अष्टाह्निका व्रतका पालन किया जिसके प्रभावसे समाधिमरण धारण किया तथा स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए। पश्चात् वहाँसे चयकर हस्तिनापुरमें विमल नामक सेठकी स्त्री लक्ष्मीवतीके गर्भसे अरिंजय और अमितंजय नामके पुत्र हुए। ये दोनों भाई हम हैं।' इस प्रकार व्रतका माहात्म्य सुन राजा प्रसन्न हुआ।

यह व्रत समस्त मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। इसके पालन करनेसे दुःख दारिद्रय नष्ट हो जाते हैं तथा अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। सन्तान प्राप्त करनेवालोंको इस व्रतका श्रद्धा और विधिके साथ पालन करना चाहिए, निश्चय उनकी मनोकामना पूर्ण होगी। इस व्रतकी कथा निम्न प्रकार है—

रविव्रत कथा

प्राचीन कालमें वाराणसी नगरीके शासक महीपाल नृपति थे। इसके राज्यमें मतिसागर नामक सेठ अपनी गुणसुन्दरी नामकी स्त्रीके साथ सुखपूर्वक निवास करता था। सेठको सात पुत्र थे, सभी होनहार, योग्य और विद्वान्। एक दिन इस नगरीकी वाटिकाके बाहरी भागमें गुणसागर नामके मुनिराज पधारे। मुनिराजके आगमनका समाचार सुनकर नगरके नर नारी मुनिदर्शनके लिए गये। सेठानी गुणसुन्दरी भी वहाँ

गयी। धर्मोपदेश सुननेके पश्चात् उसने मुनिराजसे करबद्ध प्रार्थना की—'प्रभो! मुझे कोई व्रत दीजिए'।

मुनिराज—'वत्से! श्रावकको दृढ श्रद्धानी होकर अष्ट मूल गुण और उत्तर गुणोंको निर्मल करना चाहिए। बेटी! तुम रविव्रत करना आरम्भ करो। यह व्रत सभी इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला है तथा इसके द्वारा आत्मकल्याण भी होता है'।

गुणसुन्दरी व्रत ग्रहण कर घर आई। उसने अपने परिवारके सभी व्यक्तियोंको मुनिराज-द्वारा ग्रहण किये गये व्रतकी बात कही। सभी लोग रविव्रतकी बात सुनकर हँसने लगे और सबने व्रतका निरादर किया। कुछ समय पश्चात् पापके उदयसे मतिसागर सेठकी सम्पत्ति क्षीण होने लगी। धीरे-धीरे उनके घरमें दरिद्रता देवीने आसन जमा लिया। सेठके सातों पुत्र परदेश चले गये और वे अयोध्यानगरीके सेठ जिनदत्तके घर जाकर नौकरी करने लगे। सेठ-सेठानी वाराणसीमें रहकर दुःख भोगने लगे। उनके यहाँ अन्नाभाव रहनेसे किसी किसी दिन उन्हें निराहार रह जाना पड़ता था। पुत्रोंके वियोगके कारण सेठ सेठानीको और अधिक कष्ट था। एक दिन उस नगरमें अवधिज्ञानी मुनिका आगमन हुआ। सेठके साथ गुणसुन्दरी मुनि वन्दनाके लिए गई और अपनी दरिद्रताका कारण पूछा।

मुनिराज—'बेटी! तुमने लिये गये व्रतकी अवहेलना की है, इसी का यह परिणाम है। अब तुम पुनः रविवारव्रतका करना आरम्भ करो, तुम्हारा संकट सब दूर हो जायगा।' सेठ सेठानीने मुनिराजसे पुनः व्रत ग्रहण कर लिया और दोनोंने विधिपूर्वक व्रतका पालन करना आरम्भ किया। व्रतके प्रभावसे उनका समस्त दुःख दारिद्र्य नष्ट हो गया तथा उनके पुत्र भी उनके पास चले आये। कुछ समय पश्चात् सेठ मतिसागरने आयुका अन्त जान सन्यास मरण धारण किया, जिसके प्रभावसे उसे उत्तम भोगोपभोगकी सामग्री प्राप्त हुई। कुछ कालके पश्चात् उसने निर्वाणपद प्राप्त किया।

श्रुतस्कन्ध व्रत करनेसे ज्ञानावरणीय कर्मकी निर्जरा होती है। जिन्हें

विद्याकी सिद्धि करनी हो, शान्ति प्राप्त हो, उसे इस व्रतका पालन अवश्य करना चाहिए। इस व्रतके प्रभावसे धनकी प्राप्ति, यश कुलकी वृद्धि तथा ज्ञान विज्ञानकी प्राप्ति होती है। कथामें बताया गया है कि प्राचीनकालमें पटना नगरके राजा चन्द्ररुचिकी पटरानी चन्द्रप्रभाके श्रुतशालिनी नामकी सुन्दरी कन्या थी। इस कन्याको जिनमति नामकी आर्यिकाके पास अध्ययनार्थ भेजा गया। कन्या थोड़े ही दिनोंमें विद्यामें पारंगत हो गयी। कन्याने एक दिन वहीं-पर चौकीपर श्रुतस्कन्धका मण्डल बनाकर द्वादशाङ्ग जिनवाणीकी पूजा की, जिसे देखकर आर्यिका अत्यन्त प्रसन्न हुयीं तथा उसे पूर्ण विदुषी समझ राजाके यहाँ भेज दिया।

श्रुतस्कन्धव्रत कथा

एक दिन इस नगरके उद्यानमें वर्द्धमान नामक मुनि आये। मुनिके आगमनका समाचार सुनकर राजा पुरजन-परिजनके साथ उनकी वन्दनाके लिए गया। मुनिराजने धर्मोपदेश दिया, सभीने यथाशक्ति व्रत ग्रहण किये। पश्चात् राजाने कन्याकी ओर देखकर पूछा—'स्वामिन्! यह कन्या किस पुण्यसे इतनी सुन्दरी और विदुषी हुयी है? इसने पूर्व जन्ममें किस प्रकारके व्रत धारण किये हैं?'

मुनिराज—'राजन्! पूर्व विदेहके पुष्कलावती देशमें पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। वहाँ गुणभद्र नामका राजा और गुणवती नामकी रानी थी। एक दिन राजा रानी सहित सीमन्धर स्वामीकी वन्दनाके लिए गया और वहाँ वन्दना कर मनुष्यके कोठेमें बैठकर धर्मोपदेश सुना। पश्चात् राजाने प्रश्न किया—'प्रभो, श्रुतस्कन्ध व्रतका क्या स्वरूप और प्रभाव है?' भगवान्‌की दिव्यध्वनि द्वारा व्रतका स्वरूप और प्रभाव अवगत कर व्रत ग्रहण किया। व्रतके प्रभावसे वे राजा रानी स्वर्गमें इन्द्र और इन्द्राणी हुए। वहाँसे रानीका जीव चय कर तुम्हारे यहाँ श्रुतशालिनी नामकी कन्या हुआ है। इस प्रकार गुरुमुखसे व्रतका माहात्म्य सुनकर कन्याने पुनः श्रुतस्कन्धव्रत धारण किया। विषय और कषायोंको अत्यन्त मन्द कर आत्मशोधनमें संलग्न हो गयी। व्रतके

प्रभावसे अन्तसमयमें समाधिमरण धारण कर अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। वहाँ अनुपम सुख भोगकर अपरविदेहमें कुमुदवती देशके अशोकपुरमें पद्मनाभ राजाकी पट्टरानी जितपद्माके गर्भसे वह जावन्धर नामका तीर्थङ्कर हुआ। साथ ही इसे चक्रवर्ती और कामदेव पद भी प्राप्त हुआ। इस प्रकार श्रुतशालिनीके जीवने श्रुतस्कन्धव्रतके प्रभावसे निर्वाणपद प्राप्त किया।

पुष्पाञ्जलिव्रत आत्मशोधनके साथ सांसारिक इष्ट पदार्थोंकी उपलब्धिका भी कारण है। इस व्रतके आख्यानमें बतलाया गया है कि

पुष्पाञ्जलिव्रत कथा विदेहमें सीता नदीके दक्षिण तटपर मंगलावती देशमें रत्नसंचयपुर नामका नगर है। वहाँ राजा वज्रसेन अपनी रानी जयावती सहित सानन्द राज्य करता था। सन्तान न होनेके कारण रानी अत्यन्त उदास रहती थी। एक दिन जब राजा पत्नीसहित जिन मन्दिरमें दर्शनके लिए गया हुआ था, तो इस दम्पतिने वहाँ ज्ञानसागर मुनिराजके दर्शन किये। अवसर पाकर राजाने मुनिराजसे पूछा—"प्रभो! हमारी रानीको पुत्र न होनेका क्या कारण है? क्या इसे पुत्रकी प्राप्ति होगी"? मुनिराजने कहा—"राजन्, आपके यहाँ शीघ्र ही प्रभावशाली चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा"।

राजा रानीसहित घर आया और आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगा। कुछ समय उपरान्त राजाको एक सुन्दर पुत्रकी प्राप्ति हुई, जिसका नाम रत्नशेखर रखा। रत्नशेखर बचपनसे ही होनहार और प्रतिभाशाली था। एक दिन जब यह बगीचेमें क्रीडा कर रहा था, तब आकाशमार्गसे जाते हुए मेघवाहन नामके विद्याधरने इसे देखा। रत्नशेखरके प्रति मेघवाहनके हृदयमें अपूर्व प्रेम उमड़ा और वह नीचे उतरा तथा इसका मित्र बन गया। रत्नशेखरने मेघवाहनके सहयोगसे पाँच सौ विद्याएँ सीख लीं तथा विमान रचनाका प्रकार भी ज्ञात कर लिया। अब उसने मेघवाहन आदि मित्रोंके साथ ढाई द्वीपके समस्त जिनालयोंकी वन्दनाके लिए प्रस्थान किया। वह विजयार्धपर्वतके सिद्धकूट चैत्यालयमें पूजा स्तवनकर बैठा ही था कि इतनेमें दक्षिणश्रेणीके अधिपति रथनूपुर

नगरकी राजकन्या मदनमञ्जूषा भी सखियों सहित दर्शनके लिए आयी। उसकी जैसे ही रत्नशेखरपर दृष्टि पड़ी, वैसे ही उसने अपना हृदय रत्नशेखरको सौंप दिया। अब वह उदास रहने लगी, राजा रानीने उसकी उदासीका कारण ज्ञातकर स्वयंवर मण्डपका आयोजन किया। स्वयंवरमें रत्नशेखर भी सम्मिलित हुआ। कुमारीने वरमाला रत्नशेखरके गलेमें डाल दी, जिससे अन्य समस्त विद्याधर रुष्ट हुए। वे कहने लगे, "विद्याधर कन्या विद्याधरोंको छोड़कर भूमिगोचरीके साथ विवाह नहीं कर सकती है। जब विवाद अधिक बढ़ गया तो रत्नशेखरका विद्याधरोंके साथ युद्ध होने लगा। उसने अपने पराक्रम द्वारा सभी विरोधी विद्याधरोंको परास्त कर दिया। इसीसमय उसे चक्ररत्नकी भी प्राप्ति हुई। अब उसने षट्खण्ड पृथ्वीको वशमें कर लिया और चक्रवर्तीके पदसे शोभित हो गया।

एक दिन चक्रवर्ती रत्नशेखर माता पिता सहित सुदर्शन मेरुकी वन्दना के लिए गया हुआ था। वहाँ उसने भाग्योदयसे दो चारण मुनियोंके दर्शन किये और अपने भवान्तर मुनिराजसे पूछे तथा यह भी प्रार्थना की कि मदनमञ्जूषा और मेघवाहनका मुझपर क्यों अधिक प्रेम है?

मुनिराज—'सम्राट्! भरत क्षेत्रमें मृणालपुर नामका नगर है। इस नगरका शासन राजा जितारि अपनी रानी कनकावतीके साथ करता था। इस नगरमें श्रुतकीर्त्ति नामका ब्राह्मण अपनी स्त्री बन्धुमतीके साथ रहता था। इस विप्रदेवके प्रभावती नामकी पुत्री थी। इस पुत्रीने जैनगुरु से शिक्षा प्राप्त की थी, अतः इसका सम्यग्दर्शन निरन्तर उज्ज्वल होता जा रहा था।

एक दिन ब्राह्मण सपत्नीक वनक्रीड़ाके लिए गया। वहाँ उसकी स्त्रीको साँपने काट लिया, जिससे उसका प्राणान्त हो गया। पत्नीके वियोगसे विप्रदेव वेदना विह्वल हो गया, उसकी अवस्था उन्मत्त जैसी हो गई। कुमारी प्रभावतीने पिताको बहुत समझाया। संसारका स्वरूप बतलाया तथा कर्मगतिकी विचित्रता समझाकर उसे शान्त किया। पश्चात् उसे दिगम्बर दीक्षा दिलायी। श्रुतकीर्त्तिने उग्र

तपश्चरण कर कुछ ऋद्धियाँ प्राप्त कर लीं तथा अनेक तन्त्र मन्त्र सिद्धकर वह भ्रष्ट हो गया तथा विद्याके प्रभावसे नगर बनाकर गृहस्थी सहित रहने लगा। जब प्रभावतीको यह समाचार प्राप्त हुआ तो वह अपने पिताके पास आई और उसे समझाया—"पिताजी, आपने पवित्र दिगम्बर दीक्षा धारण की है। यह आत्माका कल्याण करनेवाली है। आप इस ममतामें फँसकर अपने धर्मको कलंकित न करें।" पुत्रीकी बातोंका प्रभाव श्रुतकीर्तिपर कुछ नहीं हुआ, वह प्रभावतीकी बातोंसे चिढ़ गया, अतः उसने विद्याबलसे उसे एक नीरव वनमें छोड़ दिया। प्रभावती नमस्कार मन्त्र जपती हुई वनमें बैठी थी कि वहाँ वनदेवी प्रस्तुत हुई और बोली—'बेटी! तुम्हारी दृढ़ता, शीलव्रत और अद्भुत शक्तिने मुझे विस्मित कर दिया है। मैं तुमसे अधिक प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो, कहो। मैं तुम्हारी समस्त इच्छाओंको पूर्ण करना चाहती हूँ'। प्रभावतीने कैलाशयात्राकी इच्छा प्रकट की। देवीने अपने प्रभावसे उसे कैलाशपर पहुँचा दिया। प्रभावती वहाँ भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीके दिन पहुँची, इस दिन देव भी वहाँ भगवान्की पूजा करनेके लिए आये हुए थे। वहाँपर प्रभावतीने पद्मावतीदेवीके निर्देशानुसार पुष्पाञ्जलि व्रत धारण किया और उसका विधिवत् पालन करना आरम्भ कर दिया। उसने वहीं रहकर पाँच वर्ष तक यह व्रत पाला तथा इसके पश्चात् उद्यापन कर दिया। उद्यापनके उपरान्त पद्मावती देवीने इसे मृणालपुर पहुँचा दिया। यहाँ आकर इसने स्वयंप्रभु गुरुसे आर्यिकाके व्रत ग्रहण कर लिये और उग्र तपश्चरण करने लगी। इसकी तपस्याकी प्रशंसा सर्वत्र होने लगी। पिता श्रुतकीर्तिको प्रभावतीकी प्रशंसा सह्य नहीं हुई। अतः उसने उसकी तपस्यामें विघ्न उपस्थित करनेके लिए विद्याएँ भेजीं, पर प्रभावती उन विद्याओंसे तनिक भी विचलित नहीं हुई। अन्तमें समाधिमरण धारणकर अच्युत स्वर्गमें देव हुई। उसका नाम पद्मनाभ रखा गया।

एक दिन पद्मनाभ देवने विचार किया कि हमारे पूर्व जन्मका पिता मिथ्यात्वमें फँस गया है। इसका उद्धार करना आवश्यक है। अतः यह

श्रुतकीर्तिके पास गया तथा उसे खूब समझाया। श्रुतकीर्तिने समस्त प्रपंच छोड़ दिये और वह जिनोक्त तपश्चरणमें संलग्न हो गया। आयुके अंतिम समयमें समाधिमरण धारण किया जिसके प्रभावसे वह स्वर्गमें प्रभासदेव हुआ। वही पद्मनाभदेव स्वर्गसे चयकर तुम रत्नशेखर हुए हो और तुम्हारी स्वर्गकी देवी यह मदनमंजूषा हुई है। मेघवाहन तुम्हारे पूर्वभवके पिता श्रुतकीर्तिका जीव है। पुष्पाञ्जलि व्रतकी इस महिमाको सुनकर चक्रवर्तीने इस व्रतको ग्रहण कर लिया। कुछ समय तक राज्य करनेके उपरान्त उसे विरक्ति हो गई और दिगम्बर दीक्षा धारणकर उग्र तपश्चरण किया। केवलज्ञान लक्ष्मीकी प्राप्ति की। तत्पश्चात् योगनिरोध कर अघातिया कर्मोंको नाशकर मोक्ष प्राप्त किया।

रोहिणी व्रतका समाजमें अधिक प्रचार है। इस व्रतके पालन करनेसे धन, ऐश्वर्य, पुत्र, विद्याकी प्राप्ति एवं अभीष्ट इच्छाओंकी पूर्ति होती है।

रोहिणी व्रत-कथा आख्यान बताया गया है कि हस्तिनापुरका राजकुमार अशोक अपनी प्रिया रोहिणीके शान्त स्वभावके कारण अत्यधिक चिन्तित था। एक दिन उसने मुनिराजके दर्शनकर उनसे अपनी प्रियाके शान्त रहनेका कारण पूछा।

मुनिराज—"कुमार, प्राचीनकालमें इसी नगरमें एक धनमित्र नामका व्यक्ति रहता था। इसके दुर्गन्धा नामकी कन्या उत्पन्न हुई। इस कन्याके शरीरसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकलती थी, जिससे मातापिता अत्यन्त चिन्तित रहते थे कि इसका विवाह किस प्रकार होगा। किसी प्रकार उसका विवाह श्रीषेण नामक व्यसनी व्यक्तिके साथ सम्पन्न हो गया। श्रीषेण भी अपनी पत्नीको एक ही महीनेमें त्यागकर चला गया, जिससे दुर्गन्धाको महान् कष्ट रहने लगा। एक दिन अमृतसेन नामके मुनि उस नगरमें आये। धनमित्र अपनी कन्या दुर्गन्धासहित उनकी वन्दनाके लिए गया। अवसर पाकर उसने दुर्गन्धाके भवान्तर उनसे पूछे।"

मुनिराज—"वत्स! सोरठ देशमें गिरनार पर्वतके निकट एक नगर है। उसमें भूपाल नामका राजा अपनी भार्या सिन्धुमती सहित निवास करता है।

एक दिन वसन्त ऋतुमें राजा रानी सहित वनक्रीडाको गया। मार्गमें मुनिराजको देखकर राजाने रानीसे कहा—तुम लौट जाओ, मुनिराजके लिए आहार तैयार करो। रानी राजाके आदेशानुसार लौट तो आई, पर मुनिराजको वन विहारमें बाधक समझकर उसने कडुवे लौकेका आहार तय्यार किया। मुनिराज चर्य्याके लिए आये। रानीने पड़गाहकर उन्हें कडुवे लौकेका आहार करा दिया, जिससे मुनिराजके शरीरमें अपार वेदना हुई और उनका प्राणान्त हो गया। रानीके दुष्कृत्यकी बात राजाको अवगत हुई, अतः उसने उसे घरसे निकाल दिया। रानीके शरीरमें उसी जन्ममें गलित कुष्ठ उत्पन्न हो गया, जिससे सक्लेश परिणाम पूर्वक उसने प्राण त्याग किये, जिसके प्रभावसे वह नरक गई। वहाँसे च्युत होकर गायका जन्म धारण किया और अब यह तुम्हारे यहाँ दुर्गन्धा हुई है।"

धनमित्र—"स्वामिन्! इसके पापके प्रायश्चित्तके लिए कोई व्रतविधान बतलानेकी कृपा करें, जिससे इसका जीवन सुखी हो सके।"

मुनिराज—"वत्स! सम्यग्दर्शन सहित प्रतिमास रोहिणी नक्षत्रके दिन उपवास करे। इस दिनको चैत्यालयमें धर्मध्यान, पूजन आदिके साथ व्यतीत करे। ५ वर्ष और ५ मास तक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर दे।"

दुर्गन्धाने मुनिराज द्वारा प्रतिपादित विधिके अनुसार उक्त व्रतका पालन किया, जिसके प्रभावसे यह प्रथम स्वर्गमें देवी हुई। वहाँसे च्युत होकर यह तुम्हारी भार्या बनी है। तुम भी पहले भील थे। तुमने एक मुनिराजको घोर उपसर्ग दिया था, जिस पापके कारण तुम सातवें नरक गये। वहाँसे निकलकर अनेक कुयोनियोंमें भ्रमण करनेके पश्चात् एक वणिक्के घर जन्म लिया। तुम्हारा शरीर यहाँ अत्यन्त घृणित और दुर्गन्धित था। तुम्हारे पास भी कोई नहीं आता था। तुमने मुनिराजसे रोहिणी व्रत ग्रहण किया। व्रतके प्रभावसे तुम स्वर्गमें देव हुए। वहाँसे च्युत होकर विदेहमें अर्ककीर्ति चक्रवर्ती हुए। वहाँ दीक्षा धारण कर तपस्या की, जिससे देवेन्द्र पद प्राप्त किया। स्वर्गसे च्युत होकर तुम अशोक नामके राजा हुए हो। राजा अशोकने कालान्तरमें दीक्षा धारणकर तपश्चरण

किया, जिससे उसे निर्वाणपदकी प्राप्ति हुई। रोहिणीने भी समाधिमरण धारण कर स्त्री-पर्यायका छेद कर स्वर्गमें देव पद प्राप्त किया।

लब्धिविधान व्रतका पालन करनेसे समस्त संचित पाप भस्म हो जाता है। आत्मामें ज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है। बतलाया गया है कि

लब्धिविधान व्रत कथा

बनारस नगरीके राजा विश्वसेनकी रानीका नाम विशालनयना था। इसकी दो सखियाँ थीं—चमरी और रंगी। एक दिन राजाने अपनी सभामें एक अभिनयका आयोजन कराया। अभिनय बहुत ही सुन्दर हुआ। रानी अभिनेताओंकी कुशलतापर मुग्ध हो गई और उसने अपना हृदय उन्हें समर्पित कर दिया। रानी एक दिन रातमें अपनी दोनों सखियोंके साथ घरसे निकल पड़ी और भ्रष्ट होकर वेश्या कर्म करने लगी। इन तीनों ने एक दिन मुनिराजकी तपस्यामें विघ्न उत्पन्न किया, उन्हें नाना प्रकारके उपसर्ग दिये। इसी पापके उदयसे उन तीनोंको बहुत कालतक अनेक कुयोनियोंमें भ्रमण करना पड़ा। पश्चात् उज्जयिनी नगरीके पास पलास नामके ग्राममें एक शूद्रके घर तीनों पुत्रियाँ हुई, जो अत्यन्त कुरूपा थीं। इनके माता पिता जन्मते ही मरणको प्राप्त हो गये थे, इनके कुत्सित व्यवहारके कारण ग्रामवासियोंने इन तीनोंको ग्रामसे निकाल दिया था। फलतः तीनों ही भटकती हुई पाटलिपुत्रके उद्यानमें पहुँची। वहाँ मुनिराजके दर्शन कर तीनोंने अपने जन्मको धन्य समझा। उनके उपदेशामृतसे प्रभावित होकर तीनोंने लब्धिविधान व्रत ग्रहण किया और उसका बहुत ही श्रद्धा और भक्तिके साथ पालन करने लगी। व्रताचरणके कारण उनकी परिणति निर्मल होने लगी, परिणामोंमें कोमलता आ गई। उन्होंने आयु के अन्तमें समाधिमरण धारण किया, जिससे व्रतके प्रभावसे वे पाँचवें स्वर्गमें देव हुई। वहाँसे चयकर विशालनयनाका जीव तो मगध देशके बाढवनगरमें काश्यपगोत्रीय साण्डिल्य ब्राह्मणकी साण्डिल्या स्त्रीके गौतम नामका पुत्र हुआ। यही गौतम भगवान् महावीरके समवशरणका प्रथम गणधर हुआ, जिसने निर्वाणपद पाया। चमरी और रंगीके जीव देवपर्याय

से भयंकर मनुष्य हुए। व्रतके प्रभावसे कारण इनकी आत्मामें निर्मलता था, अत निमित्त पाकर ये विरक्त हुए तथा दिगम्बरा दीक्षा धारण कर तप चरण करने लगे। उत्तरोत्तर उग्र तपश्चरण धारण करनेके कारण इन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। पश्चात् कर्मोंका निरोध कर अघातिया कर्मोंका नाश किया और मोक्षपद प्राप्त किया।

इस व्रतका फल अनेक भव्यजीवोंको प्राप्त हुआ है। बताया गया है कि प्राचीनकालमें विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणीमें शिवमन्दिर नामका नगर था। यहाँके राजाका नाम प्रियंकर और रानीका नाम मनोरमा था। इन्हें अपने धन यौवनका अत्यन्त गर्व था, जिससे रानी मनोरमाने सुगुप्त नामके मुनिके ऊपर जो कि नगरमें परिचर्याके लिए जा रहे थे, पानकी पीक थूक दी, जिससे मुनिराज अन्तराय होनेके कारण बिना ही आहार किये वनको लौट गये।

सुगन्धदशमी व्रतकथा

मुनिको उपसर्ग देनेके कारण रानी मरकर गधी हुई, पुनः सूकरी, कूकरी पर्यायोंको धारण करनेके उपरान्त मगधदेशके वसन्ततिलक नगरमें विजयसेन राजाकी रानी चित्रलेखाके गर्भसे दुर्गन्धा नामकी कन्या हुई। कन्याके शरीरमें अत्यन्त दुर्गन्ध निकलता था, जिससे इसके निकट कोई नहीं रह सकता था।

एक दिन उस नगरमें सागरसेन नामके मुनि पधारे। मुनिके दर्शनके लिए सारा नगर उमड़ चला। राजा भी वन्दनाके लिए गया और उसने अवसर पाकर मुनिराजसे पूछा—'प्रभो! मेरी इस कन्याकी यह अवस्था किस कारणसे हुई है?' मुनिराजने दुर्गन्धाकी पूर्वभवावलीका निरूपण कर बताया कि मुनिराजका अपमान करनेका यह फल प्राप्त हुआ है। पुनः राजाने कहा—'स्वामिन्! इस पापसे छुटकारा कैसे होगा?'

मुनिराज—"राजन्! सम्यग्दर्शन सहित श्रावकके व्रत धारण करने एवं सुगन्धदशमी व्रतका पालन करनेसे यह अशुभ कर्म नष्ट हो जायगा। दुर्गन्धाने मुनिराजका आदेश स्वीकार कर सुगन्धदशमी व्रत ग्रहण कर लिया। विधिपूर्वक व्रतके पालन करनेसे निदान बाँधनेके कारण यह स्वर्गमें

अप्सरा हुई। पश्चात् वहाँसे चयकर मगधदेशके पृथ्वीतिलक नगरके राजा महिपालकी रानी मदनसुन्दरीके मदनावती नामकी कन्या हुई। यह कन्या अत्यन्त सुन्दरी और सुगन्धित शरीरवाली थी। इसका विवाह कौशाम्बी-नरेश अरिदमनके पुत्र पुरुषोत्तमके साथ सम्पन्न हुआ। कुछ दिनोंके उपरान्त मदनावतीने संसारसे विरक्त होकर आर्यिकाके व्रत धारण किये। उग्र तपश्चरणके प्रभावसे उसने स्त्रीपर्यायका छेद किया और सोलहवें स्वर्गमें देव हुई। वहाँसे च्युत होकर वह वसुन्धरा नगरीके मकरकेतु राजाके यहाँ कामकेतु नामका पुत्र हुई और दिगम्बरी दीक्षा धारणकर निर्वाणपद प्राप्त किया।

यह व्रत स्वर्गापवर्ग देनेवाला है। इस व्रतके पालन करनेसे धन-धान्यकी प्राप्ति होती है। कहा जाता है कि अपर विदेह क्षेत्रमें गान्धिल नामका देश है, इसमें पाटलीपुर नामके नगरमें नागदत्त नामका एक सेठ और उसकी सुमति नामकी सेठानी रहती थी। निर्धन होनेके कारण नागदत्त और सुमतिको लकड़ी ढोनेका कार्य करना पड़ता था। एक दिन सुमति जंगलसे लकड़ी लेनेके लिए गयी हुई थी। वह प्यासकी वेदनासे त्रस्त होकर एक वृक्षके नीचे थककर बैठ गया। उसने देखा कि बहुतसे व्यक्ति पिहिताश्रव नामके केवलीकी वन्दनार्थ लिए जा रहे हैं। वह भी अपनी वेदना भूलकर सब लोगोंके साथ भगवान्‌की वन्दनार्थ लिए चल दी। समवशरणमें पहुँचकर उसने भक्ति भावपूर्वक भगवान्‌की वन्दना की और एकाग्रचित्तसे उपदेश सुनने लगी। अवसर पाकर उसने अपने दरिद्री होनेका कारण पूछा। भगवान्‌ने उसके भवान्तरोंका वर्णन किया तथा मुनिनिन्दाके कारण ही इस प्रकारकी दरिद्रता प्राप्त होनेकी बात कही। पश्चात् उक्त महापापसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिए जिनगुणसम्पत्ति व्रत पालन करनेकी बात कही। उसने श्रद्धा और भक्तिसहित उक्त व्रत ग्रहण किया। व्रतके प्रभावसे अनेक भव धारणकर वह हस्तिनापुरमें श्रेयान्स नृपति हुई, जिसने भगवान् आदिनाथको आहार दिया, पश्चात्

जिनगुणसम्पत्ति व्रतकथा

दिगम्बरी दीक्षा धारणकर निर्वाणपद प्राप्त किया ।

कुङ्कुमश्री व्रतकथा

हस्तिनापुरके राजा विजयसेनकी रानीका नाम विजयावती था। उसके दो पुत्रियाँ थीं । कुङ्कुमश्री और विभ्रमश्री । इन दोनों बहनोंमें परस्पर अत्यन्त स्नेह था, एकके बिना दूसरी रह ही नहीं सकती थी । राजाने दोनों कन्याओंका विवाह अयोध्याके राजपुत्र जितशत्रुके साथ कर दिया । एक दिन राजा विजयसेनने चारण ऋद्धिधारी मुनिसे पूछा—'प्रभो ! इन कन्याओंमें पारस्परिक प्रेमका क्या कारण है ?' मुनिराज कहने लगे—'इस नगरके सेठ श्रीदत्तकी कन्या जिनमतीका ब्राह्मणकी कन्या मल्लिकासे गाढ़ स्नेह था । दोनोंने मुनिराजके उपदेशसे कुङ्कुमश्री व्रत धारण किया । एक दिन सर्पने इन दोनों कन्याओंको काट लिया । णमोकार मन्त्रका ध्यान करनेके कारण वे स्वर्गमें देवियाँ हुईं । वहाँसे चयकर तुम्हारे यहाँ कन्याएँ हुई हैं । इनका स्नेह भवान्तरसे चला आ रहा है ।' इस प्रकार व्रतकी कथा सुनकर उन कन्याओंने श्रावकके व्रत धारण किये तथा कुङ्कुमश्री व्रत ग्रहण किया । विधिपूर्वक व्रतका पालन किया । आयुके अन्तमें समाधिमरण धारण किया, जिससे स्त्रीलिङ्गका छेदकर स्वर्गमें देव हुए । अब वहाँसे चयकर मोक्षपद प्राप्त करेंगी ।

त्रिलोकतीज कथा

त्रिलोकतीज व्रतका पालन हस्तिनापुरके राजा विशालदत्तकी रानी विजयसुन्दरीने किया था, जिसके प्रभावसे स्त्रीलिङ्ग छेदकर देवपद प्राप्त किया और वहाँसे च्युत होकर मनुष्य पर्याय प्राप्त कर निर्वाणपद पाया ।

ज्येष्ठजिनवरव्रत कथा

इस व्रतको गुजरात देशकी सम्भपुरी नगरीके सोमशर्मा ब्राह्मणके पुत्र यज्ञदत्तकी स्त्री सोमश्रीने धारण किया था, जिसके प्रभावसे वह श्रीधर राजाकी पुत्री कुङ्कुमश्री हुई । मुनिराजके उपदेशसे इस भवमें उसने ज्येष्ठजिनवर व्रत धारण किया । प्रति दिन अभिषेक करके गन्धोदक लाकर अपनी पुत्रवधूकी सासुके

शरीरको लगाकर उसका कुष्ठरोग दूर किया। व्रतके प्रभावसे यह स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुई और भवान्तरमें मोक्षपद प्राप्त करेगी।

इस व्रतके अनुष्ठानसे पुत्रकी प्राप्ति होती है। राजगृही नगरीके मेघनाद राजाकी रानी पृथ्वीदेवी पुत्रके अभावमें उदास रहती थी। एक दिन उसने शुभकर नामक मुनिराजके दर्शन किये और उनसे पुत्र प्राप्तिका उपाय पूछा। मुनिराजने कहा—'भवान्तरमें मुनिदानमें अन्तराय करानेके कारण पुत्रप्राप्तिमें अन्तराय हो रहा है। अतः इस पापके शमनके लिए अक्षयदशमी व्रतका पालन करो। उन दोनोंने मुनिके आदेशानुसार विधिपूर्वक व्रतका अनुष्ठान किया। पश्चात् उसका उद्यापन कर दिया। व्रतके प्रभावसे रानीको सात पुत्र और पाँच कन्याओंकी प्राप्ति हुई। राजाने आयुके अन्तमें समाधिमरण धारण किया, जिससे स्वर्गकी प्राप्ति हुई। पश्चात् मोक्षपद प्राप्त किया।

अक्षयफलदशमी व्रतकथा

इस व्रतके पालन करनेका फल मालव प्रान्तके पद्मावतीपुर नगरके राजा नरब्रह्माकी रानी विजयवल्लभाके गर्भसे उत्पन्न शीलवती नामकी कन्याको प्राप्त हुआ है। इसने मुनिनिन्दा की थी तथा मुनिको उपसर्ग दिया था, इस पापके कारण अनेक कुयोनियोंमें परिभ्रमण करनेके उपरान्त यह उक्त राजाकी कानी, कुबड़ी और कुरूपा कन्या हुई थी। मुनिराज द्वारा श्रवणद्वादशी व्रत धारण करनेके प्रभावसे स्वर्गापवर्ग प्राप्तिके योग्य हुई।

श्रवणद्वादशी व्रतकथा

इस व्रतका पालन सोरठ देशके तिलकपुर नामक नगरके भद्रशाह नामक व्यापारीकी पुत्री विशालाने किया था। यह कन्या सुन्दरी थी, पर मुखके ऊपर श्वेतकुष्ठका दाग था, जो सिद्धचक्रकी आराधना करनेसे आधा हो गया था। भद्रशाहने अपनी इस पुत्रीका विवाह निदान करनेवाले वैद्यके साथ ही कर दिया था। एक दिन देशाटन करते समय भीलोंने वैद्यराजको मारकर उसका सब धन लूट लिया। विशाला किसी प्रकार

आकाशपञ्चमीव्रत आख्यान

चय कर दुःखी होती हुई एक नगरमें गयी। वहाँ मुनिराजके दर्शनकर उनका उपदेश श्रवण किया और उनसे आकाशपंचमी व्रत ग्रहण किया। इस व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे क्रिशालान अनेक पर्याय व्यतीत करनेके उपरान्त निर्वाणपद प्राप्त किया।

णमोकार पैंतीसी व्रताख्यान

इस व्रतका सम्यक् पालन करनेके कारण गोपाल नामका ग्वाला चम्पानगरीमें वृषभदत्त सेठके यहाँ सुदर्शन नामका पुत्र हुआ और उसने विरक्त होकर दिगम्बरी दीक्षा धारण की। तथा तपश्चरण द्वारा कर्मनाश कर निर्वाण पद प्राप्त किया।

बारासौ चौंतीसी व्रत

इस व्रतका पालन उज्जयिनी नगरीके राजा हेमवर्माने किया था, जिसके प्रभावसे तीसरे भवमें विदेहक्षेत्रकी विजयापुरी नगरीमें धनञ्जय राजाके चन्द्रभानु नामका तीर्थङ्कर पुत्र हुआ और पञ्चकल्याणक प्राप्तकर निर्वाणलाभ लिया।

मुक्तावलिव्रत आख्यान

इस व्रतका पालन दुर्गन्धा नामकी ब्राह्मण कन्याने किया था, जिसके प्रभावसे प्रथम स्वर्गमें देव हुई थी और वहाँसे चयकर मथुरामें श्रीधर राजाके यहाँ उसका जीव पद्मरथ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। इसने वासुपूज्य स्वामीके समवशरणमें दीक्षा ग्रहण की और उनका गणधरपद प्राप्त किया। पीछे तपश्चरण द्वारा कर्मनाश कर मोक्षपद प्राप्त किया।

मेघमालाव्रत आख्यान

कौशाम्बी नगरीमें वत्सराज नामका सेठ था और उसकी पत्नीका नाम पद्मश्री था। पूर्व अशुभ कर्मोदयसे सेठके घर दरिद्रताका निवास था। इसके सोलह पुत्र और बारह कन्याएँ थीं। दरिद्रताके कारण यह परिवार अत्यन्त दुःखी था। एक दिन एक चारण ऋद्धिधारी मुनि पधारे। सेठने मुनिसे अपनी दरिद्रताके विनाशका उपाय पूछा। मुनिराजने मेघमालाव्रत करनेका उपदेश दिया। व्रतका पालन करनेसे उस दम्पत्तिके सारे दुःख नष्ट हो गये। वे स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए और वहाँसे चयकर मनुष्य होकर कर्म नाशकर मोक्षपद प्राप्त किया।

पाटलिपुत्र नगरमें पृथ्वीपाल राजा रहता था, इसकी रानीका नाम मदनावती था। इसी नगरमें सेठ अर्हद्दास भी अपनी पत्नी लक्ष्मीमतीके साथ रहते थे। इन्हींके पड़ोसमें सेठ धनपति भी रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम नन्दनी था। नन्दनीके मुरारीनामका इकलौता पुत्र था, जिसकी साँपके काटनेसे मृत्यु हो गयी। नन्दनीके घरमें पुत्रशोकके कारण बहुत दिनोंतक कोलाहल होता रहा। लक्ष्मीमतीने समझा कि नन्दनीके घर गायन हो रहा है, अतः वह भ्रमवश हँसती हुई उसके यहाँ गई। नन्दनीको लक्ष्मीका यह बर्ताव बुरा लगा और उसने बदला लेनेकी बात सोची। एकदिन अपनी दासी द्वारा एक साँप घड़ेमें बन्दकर लक्ष्मीमतीके पास हार कहलाकर भेजा। लक्ष्मीमतीने उसे घड़ेमेंसे खोल गलेमें पहन लिया। उसके गलेमें वह सच्चा हार दिखलाई पड़ता था। एक दिन रानी मदनावतीने लक्ष्मीमतीके गलेमें उस तरहके हारको देखकर घर आई और राजासे कहा—महाराज मुझे लक्ष्मीमती सेठानी जैसा हार चाहिए। राजाने अगले दिन सेठ अर्हद्दासको बुलाकर वैसा ही हार बनवानेको कहा। सेठने उसी हारको ले जाकर राजाको भेंट किया; किन्तु यहाँ विचित्र दृश्य था। सेठके हाथका हार राजाके हाथमें जाते ही सप बन गया, इससे राजाको अत्यन्त आश्चर्य हुआ, और इसने मुनिराजसे इसका रहस्य पूछा। मुनिराजने निर्दोष सप्तमी व्रतका प्रभाव बतलाया। राजा और सेठ अर्हद्दासने इस व्रतको धारण किया, जिसके प्रभावसे वे देव हुए।

निर्दोषसप्तमीव्रत आख्यान

उज्जयिनीमें जिनदत्त सेठके पुत्र ईश्वरचन्द्र तथा उसकी पत्नी चन्दनाने इस व्रतका पालन किया था, जिसके प्रभावसे स्वर्गसुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया।

चन्दनषष्ठीव्रत

इस व्रतका पालन आजतक सहस्रों नरनारियोंने किया है। प्रथमानुयोगमें अयोध्यानगरीके निकटवर्ती पद्मखण्ड नामक ग्राममें सोमशर्मा ब्राह्मण तथा उसकी स्त्री सोमने किया था, जिसके प्रभावसे स्वर्गादिक सुख भोगकर सोमशर्माने मोक्षपद

अनन्तचतुर्दशीव्रत

प्राप्त किया तथा सोमा भविष्यमें निर्वाण लाभ करेगी।

जिनरात्रिव्रतका पालन भगवान् आदिनाथके पोते मारीचके जीवने सिंहकी पर्यायमें चारणमुनि अमितकीर्तिके उपदेशसे किया था, जिसके प्रभावसे अनेक पर्यायोंमें सुख भोगकर अन्तमें कुण्डग्राममें राजा सिद्धार्थके यहाँ अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका जन्म हुआ और पञ्चकल्याणक जैसे महाभ्युदय को प्राप्तकर मोक्षपद प्राप्त किया।

जिनरात्रिव्रत आख्यान

इस व्रतका पालन कुरुजांगलदेशमें गंगानदीके तटवर्ती राजनगर नामक ग्राममें धनपाल सेठके पुत्र धनभद्र और जिनभक्त सेठकी पुत्री जिनमतीने किया था, जिसके प्रभावसे लौकिक उत्तमोत्तम सुख भोग अवनाशी पद प्राप्त किया। यह व्रत सभी प्रकारके वैभवोंको देनेवाला है। इसके द्वारा सभी प्रकारकी मनोकामनाओंको पूर्ण किया जा सकता है। सन्तान प्राप्ति और धनप्राप्तिके लिए इस व्रतकी उपयोगिता अधिक बतलायी गयी है।

कोकिलपञ्चमी व्रताख्यान

इस व्रतका पालन लक्ष्मीमती ब्राह्मणीके जीवने किया, जिसके प्रभाव से स्वर्गादि सुख भोगकर कुण्डलपुर नगरमें राजा भीष्मके यहाँ रुक्मिणी नामकी पुत्री हुई। यह सौराष्ट्रदेशके द्वारावती नगरीके राजा श्रीकृष्णचन्द्रकी पट्टरानी हुई और अन्तमें अपने पुत्र प्रद्युम्नकुमारके साथ दीक्षा लेकर उत्तम सुखको प्राप्त किया।

रुक्मिणी व्रताख्यान

इस व्रतका पालन श्रेष्ठिपुत्री धनश्रीने किया था, जिसके कारण उसने स्वर्गके अनुपम सुखोंको प्राप्त किया।

कर्मनिर्जराव्रत

प्राचीनकालकी बात है कि मगधदेशके सुप्रतिष्ठ नगरके एक बगीचेमें सागरसेन नामके मुनिके पास मांसका लोलुपी एक स्यार रहता था। मुनिराजने उसे धर्मोपदेश देकर रात्रि भोजनका त्याग कराया और व्रत दिया। उस स्यारने उसका अपने जीवन पर्यन्त भावपूर्वक पालन किया, जिसके प्रभावसे मृत्युके उपरान्त उसी ग्राममें सेठ यहाँ प्रीतिंकर नामका पुत्र हुआ

अनस्तमीव्रताख्यान

और दिगम्बरी दीक्षा धारण कर निर्वाण पद प्राप्त किया।

यह व्रत भगवान् ऋषभदेवके पुत्र बाहुबलि स्वामीने किया था, जिसके कारण दीक्षा लेकर निर्वाणपद प्राप्त किया। भगवान् आदिनाथकी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरीने भी इस व्रतको धारण किया, जिसके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुई और पुनः पुरुष पर्याय धारण कर दीक्षासे निर्वाणपद प्राप्त किया।

कवलचान्द्रायण

निःशल्यअष्टमीव्रत

यह व्रत दक्षिण देशके सुपारा नगरमें सेठ नन्दकी पुत्री लक्ष्मीमतीने ग्रहण किया था, जिसके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर मोक्षपद प्राप्त किया।

मौनव्रताख्यान

मौन व्रतका पालन कौशलदेशके कूट नामक ग्राममें कुणबीकी कन्या सुगमद्राने किया था, जिसके प्रभावसे वह कौशलदेशमें यमुनाके तटवर्ती कोशाम्बी नगरीके राजा हरिवाहनके यहाँ कौशल नामका पुत्र हुआ और संसारसे विरक्त होकर जिन दीक्षा ग्रहण की। दोनों पितापुत्र विहार करते हुए किसी वनमें पहुँचे और उनके भट्टारी मतिसागरके जीवने, जो सिंह हुआ था, पूर्वभवके वैरके कारण उन दोनोंका शरीर विदारण कर दिया। दोनों योगिराज ध्यानमें लीन रहे, अतः कर्मोंका नाशकर अन्त कृतकेवली होकर मोक्ष गये।

षष्ठीव्रताख्यान

इसका पालन मालवदेशके चिंच नामक ग्राममें एक नागगौडकी पुत्री चारित्रमतीने किया था, जिसके प्रभावसे नदीमें शत्रु द्वारा बहाये हुए अपने पुत्रको पुनः प्राप्त किया और उसने चारित्रमती आर्यिकासे दीक्षा लेकर तपश्चरण किया, जिससे स्वर्गमें देव हुई, पश्चात् जिनदीक्षा ग्रहण कर कर्मनाश किया।

गरुडपंचमी व्रत आख्यान

इस व्रतका पालन चारित्रमतीने किया था, जिसके प्रसादसे पिताकी मूर्छा दूर की थी और अन्तमें मोक्षपद प्राप्त किया।

चतुर्दशीव्रताख्यान

सुजानी नामक सेठानीने विधिपूर्वक चतुर्दशीका व्रत धारण किया, जिसके प्रभावसे स्वर्गादि सुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया।

इस प्रकार प्रथमानुयोगमें व्रतोंका फल प्राप्त करनेवालोंके आख्यान वर्णित हैं। इन आख्यानोंसे एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकलता है कि नारियोंने जितने अधिक व्रतोंका पालन किया है, पुरुषोंने नहीं। व्रत पालन करनेवालोंमें सम्भ्रान्त परिवारके अतिरिक्त दरिद्र दीन परिवारोंकी नारियाँ भी हैं। मनुष्योंकी तो बात ही क्या, पशु पक्षियोंने भी व्रत धारण किये हैं। व्रतोंसे आत्मा पवित्र हो जाती है। विषय कषाय जन्य विकार शान्त होते हैं, जिससे अपने ऊपर विचार करनेका अवसर प्राप्त होता है। अतः समस्त नर नारियोंको व्रतप्राप्तिके लिए प्रयास करना चाहिए। हरिवंशपुराण और पद्मपुराणमें वर्णित है कि उग्र तपश्चरण व्रतोपवासके द्वारा ही प्राप्त होता है। कर्मनिर्जराका साधन व्रत हैं।

ग्रन्थकर्ता

इस ग्रन्थका रचयिता कौन है, यह अनिर्णीत है। ग्रन्थके ऊपर सिंहनन्दी आचार्यका नाम लिखा है। दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थमें सिंहनन्दीकी एक कृति व्रततिथिनिर्णयका उल्लेख किया है। पर यह प्रस्तुत कृति सिंहनन्दीकी नहीं है, उनके ग्रन्थके आधारपर किन्हीं भट्टारक महानुभावने इसका संकलन किया है। ग्रन्थके आरम्भमें कहा गया है—

> श्रीपद्मनन्दिमुनिना पद्मदेवेन वाऽपरा।
> हरिषेणेन देवादिसेनेन प्रोक्तमुत्तमम् ॥
> प्राह्य तच्चेदिवान्यद्वा चतुर्गुणप्रकल्पितम्।
> विधानं च व्रतानां वै प्राह्य मोक्ष समुत्तमम् ॥
> श्रुतसागरसूरीशभावशर्माभ्रदेवक।
> छत्रसेनादित्यकीर्तिसकलादिमुकीर्तिभिः ॥

अर्थात्—पद्मनन्दी, पद्मदेव, हरिषेण, देवसेन, आदिसेन, श्रुतसागर, भावशर्मा, अभ्रदेव, छत्रसेन, आदित्यकीर्ति और सकलकीर्तिके ग्रन्थोंका अवलोकन कर प्रस्तुत रचना संकलित की गयी है। रचयिताने पूज्यपादके शिष्य, इन्द्रनन्दी, काष्ठासंघके आचार्य, मूलसंघके आचार्य, वर्णामृत पुराणके रचयिता केशवसेन आदिके व्रतोंकी भी आलोचना की है। इससे स्पष्ट है कि ... किसी भट्टारकने विक्रम संवत्‌की १८ शतीमें किया ... मूलसंघ सरस्वती गच्छ,

ॐ नम सिद्धेभ्य

मङ्गलाचरण

श्रीमन्त वर्धमानेश भारती गौतमं गुरुम् ।
नत्वा वक्ष्ये तिथीनां वै निर्णय व्रतनिर्णयम् ॥१॥

अर्थ—श्रीमन्त—अनन्तचतुष्टयरूप अन्तरंग श्री और समवशरण आदि विभूति रूप बहिरंग श्रीसे युक्त भगवान् महावीरस्वामी, जिन-वाणीको—सरस्वती रूप दिव्यध्वनिको एवं गुरु गौतम गणधरको नम स्कार कर निश्चयसे व्रतनिर्णय और तिथिनिर्णयको कहता हूँ।

प्रस्तावना

श्रीपद्मनन्दिमुनिना पद्मदेवेन शास्त्रतः ।
हरिषेणेन देवादिसेनेन प्रोक्तमुत्तमम् ॥२॥
ग्राह्य तच्चेद्विधान्यद्वा चतुर्गुणप्रकल्पितम् ।
विधान च व्रताना वै ग्राह्य प्रोक्त मनूत्तमम् ॥३॥

अर्थ—श्री पद्मनन्दिमुनि, अपर पद्मदेवमुनि, हरिषेण एवं देवसेनने जो चतुर्गुण प्रकल्पित—यथा समय निरन्तिचार धारण, विधिपूर्वक पालन, विधेय मन्त्रका जाप और प्रभावनायुक्त उत्तम व्रत कहे गये हैं, उन्हें ग्रहण करना चाहिये। अन्य इन्हीं आचार्योंके समान अन्य आचार्योंके द्वारा प्रतिपादित व्रतोंका ग्रहण करना चाहिए। व्रतों के लिए जो विधान—विधि, नियत तिथि, जाप मन्त्र, अनुष्ठान करनेके लिए

श्रुतसागरसूरीशभावशर्माभ्रदेवकः ।
छत्रसेनादित्यकीर्त्तिसकलादिसुकीर्तिभिः ॥४॥

अर्थ—श्रुतसागर आचार्य, भावशर्मा, अभ्रदेव, छत्रसेन, आदित्यकीर्ति, सकलकीर्ति आदि आचार्योंके द्वारा प्रतिपादित व्रततिथिनिर्णयको कहता हूँ ।

क्रमतोऽहं प्रवक्ष्ये वै तिथिव्रतसुनिर्णयौ ।
मतं ग्राह्यं साम्प्रतं कुलाद्रिघटिकाप्रमम् ॥५॥

अर्थ—क्रमसे मैं तिथिनिर्णय और व्रतनिर्णयको कहता हूँ। इस समय व्रतके लिए छ घटी प्रमाण तिथिका मान ग्रहण करना चाहिए।

विवेचन—प्राचीन भारतमें हिमाद्रि और कुलाद्रि ये मत व्रत तिथियोंके निर्णयके लिए प्रचलित थे। हिमाद्रि मतका आदर उत्तर भारतमें था और कुलाद्रि मतका दक्षिण भारतमें। हिमाद्रि मतमें वैदिक आचार्य तथा कतिपय श्वेताम्बराचार्य परिगणित हैं। हिमाद्रि मतमें साधारणतः व्रततिथिका मान दस घटी प्रमाण स्वीकार किया गया है। हिमाद्रिमत केवल व्रतोंका निर्णय ही नहीं करता है, बल्कि अनेक सामाजिक, पारिवारिक व्यवस्थाओंका प्रतिपादन भी करता है। हिमाद्रिमतके उद्धरण देवीपुराण, विष्णुपुराण, शिवरहस्य, भविष्य एवं निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें मिलते हैं। इन उद्धरणोंको देखनेसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीनकालमें उत्तरभारतमें इसका बड़ा प्रचार था। पारिवारिक और सामाजिक जीवनकी अर्थव्यवस्था, दण्डव्यवस्था, जीवनोचितिके लिए विधेय अनुष्ठान आदिका निर्णय उक्त मतके आधारपर ही प्रायः उत्तर भारतमें किया जाता था। ऋषिपुत्रकी संहिताके कुछ उद्धरण भी इस मतमें समाविष्ट हैं। हेमचन्द्राचार्य द्वारा प्ररूपित नियम भी हिमाद्रि मतमें गिनाये गये हैं। गर्ग, वृद्ध गर्ग और पाराशरके वचन भी हिमाद्रिमतमें शामिल हैं।

कुमारिलमत दक्षिण भारतमें प्रचलित था। इस मतकी सुविधा संज्ञा भी पायी जाती है। दिगम्बर जैनाचार्योंकी गणना भी इस मतमें की जाती थी, किन्तु प्रधानरूपसे वेदपक्ष ही इसका शासित था। इस मतमें वही तिथि व्रतके लिए ग्राह्य मानी जाती थी, जो सूर्योदय कालमें छ घटी हो। यों तो इस मतमें भी कई दाना उपशाखाएँ प्रचलित थीं, जिनमें व्रत तिथिकी भिन्न भिन्न परिभाषाएँ परिगणित की गयी हैं।

ज्योतिष शास्त्रमें वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष और दिवस ये छ कालके भेद बतलाये गये हैं। वर्षके सावन, सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और बार्हस्पत्य ये पाँच भेद हैं। हेमाद्रिमतमें सौर, चान्द्र और बार्हस्पत्य ये तीन वर्षके भेद माने गये हैं। सावन वर्षमें ३६० दिन, सौर वर्षमें ३६६ दिन, चान्द्र वर्षमें ३५४$\frac{११}{३१}$ दिन तथा अधिक मास सहित चान्द्रवर्षमें ३८३ दिन २१$\frac{३}{६}$ मुहूर्त और नाक्षत्र वर्षमें ३२४$\frac{६}{७}$ दिन होते हैं। बार्हस्पत्य वर्षका आरम्भ ई० पू० ३१२८ वर्षोंसे हुआ है। यह माघसे लेकर माघ मासतक माना जाता है। इसकी गणना बृहस्पतिकी राशिसे की जाती है, बृहस्पति एक राशिपर जितने दिन रहता है, उतने दिनोंका बार्हस्पत्य वर्ष होता है। गणना करनेपर प्रायः यह १३ महीनोंका आता है। व्यवहारमें चान्द्रवर्ष ही ग्रहण किया जाता है[1]। इसका आरम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे होता है। अयनके सम्बन्धमें ज्योतिष शास्त्रमें बताया है कि तीन सौर ऋतुओंका एक अयन होता है

सूर्य आकाशमण्डलमें जिस पथसे जाते हुए देखा जाता है वही भूकक्षा अथवा अयनमण्डल है। यह वृत्ताकार है परन्तु बिलकुल गोल नहीं, कहीं-कहीं कुछ चपटा भी है। इसके उत्तर दक्षिण कुछ दूरतक फैला हुआ एक चक्र है जो राशिचक्र कहलाता है। राशिचक्र और अयनमण्डल दोनों तीन सौ साठ ३६० अंशोंमें विभक्त हैं क्योंकि एक वृत्तमें चार समकोण होते हैं और प्रत्येक समकोणमें ९० अंश माने

१ स्मरेत् सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा।
नान्यं यस्माद्वत्सरादौ प्रवृत्तिस्तस्य कीर्तिता ॥—ज्योतिष, नि० सि०

जाते हैं। इस प्रकार तीन सौ साठ ३६० अंशको १२ राशियोंमें विभक्त करनेपर प्रत्येक राशिका ३० अंश प्रमाण आता है। इन विभक्त राशियों के नाम ये हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन।

राशिचक्रका कल्पित निरक्षवृत्त विषुवरेखा कहलाता है। इस रेखाके उत्तर दक्षिण तेईस २३ अंश अट्ठाईस २८ कलाके अन्तरपर दो बिन्दुओं की कल्पना की जाती है। इनमें एक बिन्दु उत्तरायणान्त—उत्तर जानेकी अन्तिम सीमा, और दूसरा बिन्दु दक्षिणायनान्त—सूर्यके दक्षिण जानेकी अन्तिम सीमा है। इन दोनों बिन्दुओंके मध्य जो एक कल्पित रेखा है उसीका नाम अयनान्तवृत्त है। सूर्य जिस पथसे उत्तरकी ओर जाता है उसे उत्तरायण और जिस पथसे दक्षिणकी ओर जाता है उसे दक्षिणायन कहते हैं। व्यवहारमें कर्कराशिके सूर्यसे लेकर धनुराशिके सूर्य पर्यन्त दक्षिणायन और मकरसे लेकर मिथुन पर्यन्त सूर्यका उत्तरायण होता है। कुछ कार्योंमें अयनशुद्धि ग्राह्य समझी जाती है। माङ्गलिक कार्य प्रायः उत्तरायणमें ही सम्पन्न होते हैं।

दो महीनेकी एक ऋतु होती है। सौर और चान्द्र ये दो ऋतुओंके भेद हैं। चैत्र महीनेसे आरम्भ की जानेवाली गणना चान्द्रऋतु गणना होती है अर्थात् चैत्र वैशाखमें वसन्तऋतु, ज्येष्ठ आषाढमें ग्रीष्मऋतु, श्रावण भाद्रपदमें वर्षाऋतु, आश्विन कार्तिकमें शरदृतु, अगहन पौषमें हेमन्तऋतु और माघ फाल्गुनमें शिशिरऋतु होती है। सौर ऋतुकी गणना मेष राशिके सूर्यसे की जाती है अर्थात् मेष वृष राशिके सूर्यमें वसन्तऋतु, मिथुन-कर्क राशिके सूर्यमें ग्रीष्मऋतु, सिंह कन्या राशिके सूर्यमें वर्षा-ऋतु, तुला वृश्चिक राशिके सूर्यमें शरदृतु, धनु मकर राशिके सूर्यमें हेमन्तऋतु और कुम्भ मीन राशिके सूर्यमें शिशिरऋतु होती है। विवाह, प्रतिष्ठा आदि शुभ कार्य सौर मासके हिसाबसे ही किये जाते हैं।[१]

१ श्रौतस्मार्तक्रिया सर्वा कुर्याच्चान्द्रमसर्तुषु।
तदभावे तु सौरर्तुष्विति ज्योतिर्विदां मतम्॥—निर्णयसिंधु पृ०२

मासगणना चार प्रकारकी होती है—सावन, सौर, चान्द्र और नक्षत्र। तीस दिनका सावनमास होता है। सूर्यकी एक संक्रान्तिसे लेकर अगली संक्रान्तिपर्यन्त सौरमास माना जाता है। कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर पूर्णिमा पर्यन्त चान्द्रमास माना जाता है। अश्विनी नक्षत्रसे लेकर रेवती पर्यन्त नाक्षत्रमास माना गया है, यह प्रायः २७ 1/3 दिनका होता है। व्यवहारमें शुभाशुभके लिए चान्द्र और सौरमास ही ग्रहण किये जाते हैं। कई आचार्योंका मत है कि विवाह और यज्ञमें सौरमास, शान्ति पौष्टिकमें सावनमास, सांवत्सरिक कार्यमें चान्द्रमास ग्राह्य माने गये हैं*। अधिमास और क्षयमास सभी शुभ कार्योंमें त्याज्य हैं। हेमाद्रिके मतमें कोई भी शुभकार्य इन दोनों मासोंमें नहीं करना चाहिए किन्तु शुभचन्द्रमतमें अधिकमास और क्षयमासकी अन्तिम तिथियाँ त्याज्य हैं। मध्यभाग इन दोनों महीनोंका ग्राह्य बताया गया है।

पक्षके दो भेद हैं—शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष। प्रायः सभी मांगलिक कार्योंमें शुक्लपक्ष ही ग्रहण किया जाता है। कृष्णपक्षमें पञ्चमी तिथिके पश्चात् पञ्चकल्याणकप्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा जैसे शुभ कृत्य नहीं होते हैं।

प्रतिपदादि तिथियोंके नाम प्रसिद्ध हैं। अमावस्या तिथिके आठ प्रहरोंमेंसे पहले प्रहरका नाम सिनीवाली, मध्यके पाँच प्रहरोंका नाम दर्श और सातवें तथा आठवें प्रहरका नाम कुहू है। किन्हीं-किन्हीं आचार्योंका मत है कि सोलहघटी रात्रि शेष रहनेके समयसे रात्रिके समाप्ति तक सिनीवाली, प्रतिपदासे विद्ध अमावास्याका नाम कुहू, चतुर्दशीसे विद्ध अमावास्या दर्श कहलाती है। सूर्यमण्डल समसूत्रमें अपनी कक्षाके

---

* सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः।
आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते॥
विवाहव्रतयज्ञेषु सौरं मानं प्रशस्यते।
पार्वणे त्वष्टकाश्राद्धे चान्द्रमिष्टं तथाब्दिके॥
आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रिया तथा।
सावनेनैव कर्तव्या शत्रूणां चाप्युपासना॥ —निर्णयसि० पृ० ७

समीपस्थ स्थित परन्तु दारधरासे पृथक् स्थित चन्द्रमण्डल जब हो तो सिनीवाली, सूर्यमण्डलमें आधे चन्द्रमाका प्रवेश हो तो दर्श और जब सूर्यमण्डल तथा चन्द्रमण्डल समसूत्रोंमें हो तो कुहू होती है। प्रतिपदा संयुक्त अमावास्या भी कुहू मानी जाती है। दिनक्षय या दिनवृद्धि होने पर समस्त अमावास्या दर्श संज्ञक मानी जाती है। प्रतिपदा सिद्धि देने वाली, द्वितीया कार्य साधन करनेवाली, तृतीया आरोग्य देनेवाली, चतुर्थी हानिकारक, पञ्चमी शुभप्रद, षष्ठी अशुभ, सप्तमी शुभ, अष्टमी व्याधि-नाशक, नवमी मृत्युदायक, दशमी द्रव्यप्रद, एकादशी शुभ, द्वादशी और त्रयोदशी कल्याणप्रद, चतुर्दशी उग्र, पूर्णिमा पुष्टिप्रद एवं अमावास्या अशुभ है।

व्यवहारके लिए द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, अष्टमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी तिथियाँ सभी कार्योंमें प्रशस्त बतायी गयी हैं। व्रतोंके लिए भिन्न भिन्न आचार्योंने तिथियोंका भिन्न भिन्न प्रमाण बताया है।

तिथिके सम्बन्धमें केशवसेन और महासेनका मत

केषाञ्चित् धर्मघटिकाप्रम सम्मतमस्ति च।

केषाञ्चिद्विंशतिघटिकाप्रम सम्मतमस्ति च ॥ ६ ॥

केषाञ्चित् केशवसेनादीनां मते कर्णामृतपुराणादिषु धर्म-घटिकाप्रमं मतम्। केचिदाहुः—सेनादीनां काष्ठासंघीणां मते विंशतिघटीमतम्। तेषां ग्रन्थेषु सारसंग्रहादिषु तन्मतं तद्द्वयं दशप्रमं विंशतिघटीप्रमं न मूलसंघरतसूरय समाद्रियन्ते। अत स्तद्द्वयं निर्मलसम पञ्चभि कुलाद्रिमितमादृतमित्यत्त अनवच्छिन्न-पारपर्यात् तदुपदेशाच्चहुसुविचार्याथ सर्वजनसुप्रसिद्धत्वात् रसघटीमतं श्रेष्ठमन्यतत्कल्पनोपेतं मतं सेननन्दिदेवा उपेक्षन्ते ऽनाद्रियन्तेऽत कुन्दकुन्दाद्युपदेशात् रसघटिका ग्राह्या कार्या इत्यर्थः ॥ ६ ॥

अर्थ—किसीके मत (देवसेनके मत) से दसघटी तिथि होनेपर भी— सूर्योदयसे लेकर दसघटीतक अर्थात् चार घण्टेतक तिथिके रहने पर दिनभरके लिए वही तिथि मानी जाती है। दूसरे आचार्योंके मतसे बीसघटी अर्थात् सूर्योदयसे आठ घंटातक रहनेपर ही तिथि दिनभरके लिए मानी गयी है।

आचार्य देवसेनके मतसे सूर्योदय कालमें दसघटी रहनपर ही तिथि ग्राह्य मानी जाती है। सेनगण और काष्ठासंघोंके मतसे बीसघटी रहनेपर ही तिथि पूरी मानी जाती है। इन दोनों सम्प्रदायोंके मतोंका—दसघटी और बीसघटी वाले मतोंको मूलसंघके आचार्य प्रमाण नहीं मानते हैं। अतः इन दोनों मतोंके समान निर्मल बहुतोंके द्वारा मान्य कुन्दकुन्दादि माना गया है। इस मतके द्वारा समर्थित निर्दोष परम्परासे प्राप्त तथा इस निर्दोष परम्पराके उपदेशक आचार्योंके वचनोंसे एवं सभी मनुष्योंमें प्रसिद्ध होनेसे छःघटी प्रमाण तिथिका प्रमाण माना गया है। अन्य जो तिथिका मान कहा गया है, वह कल्पनामात्र है, समीचीन नहीं है। इसको सेन और नन्दिगणके आचार्य उपेक्षा अर्थात् अनादर करते हैं। अतएव कुन्दकुन्दादि आचार्योंके उपदेशसे सभी मतोंकी अपेक्षा छ घटी प्रमाण तिथिका मान ग्राह्य है।

विवेचन—जिस प्रकार तारीख सदा २४ घण्टेतक रहती है, उस प्रकार तिथि सदा २४ घण्टेतक नहीं रहती। तिथिमें वृद्धि और ह्रास होता रहता है। कभी कभी एक तिथि दो दिनतक जाती है, जिसे तिथिकी वृद्धि कहते हैं। कभी एक तिथिका लोप हो जाता है, जिसे अवम या क्षयतिथि कहते हैं। अधिकसे अधिक एक तिथि २६ घंटा ५४ मिनटकी हो सकती है अर्थात् पहले दिन जो तिथि सूर्योदयसे आरम्भ होती है, वह अगले दिन सूर्योदयके २ घंटा ५४ मिनटतक रह सकती है। एक तिथिका घट्यात्मक या दण्डात्मक मान ६७ घटी १५ पल होता है। प्रायः ६० घटी प्रमाण एकाध ही तिथि आता है। प्रतिदिन हीनाधिक प्रमाण तिथि होती रहती है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब ६० घटी

प्रमाणतिथि न हो तो व्रतादिके लिए औदयिकी तिथि ग्रहण करनी चाहिए। क्योंकि पाँच घटीके हिसाबसे तिथि वृद्धि और छ घटीके हिसाबसे तिथिक्षय होता है।

उदाहरण—ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी मंगलवारको ५ घटी ३० पल है। जिस व्यक्तिको पञ्चमीका व्रत करना है, क्या वह मंगलवारको पञ्चमीका व्रत करेगा। यदि मंगलवारको व्रत करता है तो उस दिन ५ घटी ३० पल अर्थात् सूर्योदयके २ घण्टा १२ मिनटके पश्चात् षष्ठी तिथि आ जाती है। व्रत उसे पञ्चमीका करना है षष्ठीका नहीं, फिर वह किस प्रकार व्रत करे। आचार्यने विभिन्न मत मतान्तरोंका खण्डन करते हुए कहा है कि जिस दिन सूर्योदयकालमें ६ घटीसे न्यून तिथि हो उस दिन उस तिथि सम्बन्धी व्रत नहीं करना चाहिए, किन्तु उसके पहले दिन व्रत करना चाहिए। जैसे ऊपरके उदाहरणमें पञ्चमीका व्रत मंगलवारको न कर सोमवारको ही करना पड़ेगा। क्योंकि मंगलवारको पञ्चमी ६ घटीसे कम है, यदि इस दिन पञ्चमी ६ घटी १० पल होती तो यह व्रत इसी दिन किया जाता। तिथियोंका मान—घटी, पल प्रत्येक पञ्चांगमें लिखा रहता है।

व्रतके सिवा अन्य कार्योंके लिए वर्तमान तिथि ही ग्रहण की जाती है। अर्थात् जिस कार्यका जो काल है, उस कालमें व्याप्त तिथि जब हो, तभी उसको करना चाहिए। उदाहरणार्थ यों कहा जा सकता है कि किसी व्यक्तिको ज्येष्ठशुक्ला पञ्चमीमें विद्यारम्भ संस्कार सम्पन्न करना है। ज्येष्ठ पञ्चमी मंगलवारको ५ घटी ३० पल है तथा सोमवारको ज्येष्ठसुदी चतुर्थी १० घटी १५ पल है। विद्यारम्भके लिए मंगलवारकी अपेक्षा सोमवार श्रेष्ठ होता है, सोमवारको चतुर्थी ६ घटीसे ऊपर है, अतः व्रतकी दृष्टिसे इस दिन चतुर्थी ही कहलायेगी, पर यों १० घटी १५ पलके उपरान्त पञ्चमी मानी जायगी। १० घटी १५ पलके ४ घण्टा ६ मिनट हुए। सूर्योदय इस दिन ५ बजकर २० मिनटपर होता है, अतः ९ बजकर २६ मिनटके पश्चात् सोमवारको विद्यारम्भ किया जा सकता है।

यात्राके लिए भी यही बात है। यदि किसीको पश्चिम दिशामें जाना है तो वह सोमवारको पञ्चमी तिथिमें ९ बजकर २६ मिनटके उपरान्त जायगा तथा पूर्वमें जानेवाला मंगलवारको पञ्चमी तिथिके रहते हुए प्रातःकाल ७ बजकर ३२ मिनटतक यात्रारम्भ करेगा।

दान, अध्ययन, शान्ति पौष्टिक कार्य, आदिके लिए सूर्योदय कालकी तिथि ही ग्राह्य मानी गयी है[1]। तिथियोंकी नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा संज्ञाएँ बतायी गयी हैं[2]। प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशीकी नन्दा, द्वितीया, सप्तमी और द्वादशीकी भद्रा संज्ञा, तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशीकी जया चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीकी रिक्ता संज्ञा एवं पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा या अमावस्याकी पूर्णा संज्ञा है। नन्दा संज्ञक तिथियाँ मंगलवारको, रिक्ता संज्ञक तिथियाँ शनिवारको एवं पूर्णा संज्ञक तिथियाँ बृहस्पतिवारको पड़ें तो सिद्धा कहलाती हैं। सिद्धा तिथियोंमें किया गया व्यापार, अध्ययन, देन-लेन अथवा किसी भी प्रकारका नवीन कार्य सिद्ध होता है। नन्दा संज्ञक तिथियोंमें चित्रविद्या, उत्सव, गृहनिर्माण, तान्त्रिक कार्य (जड़ी, बूटी, तावीज आदि देनेके कार्य), कृषि सम्बन्धी कार्य एवं गीत, नृत्य प्रभृति कार्य सुचारु रूपसे सम्पन्न होते हैं। भद्रा संज्ञक तिथियोंमें विवाह, आभूषणनिर्माण, गाड़ीकी सवारी, एवं पौष्टिक कार्य, जयासंज्ञक तिथियोंमें संग्राम, सैनिकोंका भर्ती करना, युद्ध क्षेत्रमें जाना एवं खर और तीक्ष्ण वस्तुओंका संचय करना, रिक्ता संज्ञक तिथियोंमें शस्त्रप्रयोग, विषप्रयोग, निन्द्य कार्य, शास्त्रार्थ आदि कार्य एवं पूर्णा संज्ञक तिथियोंमें माङ्गलिक कार्य,

[1] या तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः।
सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥ —ज्योतिश्च० पृ० ५

[2] नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा चेति तिरन्विता।
हीना मध्योत्तमा शुक्ला कृष्णा तु व्यत्ययात्तिथिः ॥ आरंभ सि० पृ० ४

तुलना—दिनशुद्धिदीपिका गाथा ८ धवलाटीका भाग १
ज्योतिश्चक्र पृ० ५४

विवाह, यात्रा, यज्ञोपवीत आदि कार्य करना अच्छा होता है। अमा वस्याको मांगलिक कार्य नहीं किये जाते हैं। इस तिथिमें प्रतिष्ठा, उपा रम्भ, शान्ति और पौष्टिक कार्य भी करनेका निषेध किया गया है।

चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी और चतुर्दशी इन तिथियोंकी पक्षरन्ध्र संज्ञा है। इनमें उपनयन, विवाह, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ आदि कार्य करना अशुभ बताया है। यदि इन तिथियोंमें कार्य करनेकी अत्यन्त आवश्यकता हो तो इनके आरम्भकी पाँच घटिकाएँ अर्थात् दो घण्टे अवश्य त्याज्य हैं। अभिप्राय यह है कि उपयुक्त तिथियोंमें सूर्योदयके दो घण्टे बाद कार्य करना चाहिए।

रविवारको द्वादशी, सोमवारको एकादशी, मंगलवारको पञ्चमी, बुधवारको तृतीया, बृहस्पतिवारको षष्ठी, शुक्रवारको अष्टमी और शनि वारको नवमी तिथिके होनेपर दग्धयोग कहलाता है। इस योगमें कार्य करनेसे नानाप्रकारके विघ्न आते हैं। अभिप्राय यह है कि वार और तिथियोंके संयोगसे कुछ शुभ और अशुभ योग बनते हैं। यदि रविवार को द्वादशी तिथि हो तो दग्धयोग कहलाता है, इसमें शुभ कार्य आरम्भ नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार आगेवाली तिथियोंको भी समझना चाहिए।

रविवारको चतुर्थी, सोमवारको षष्ठी, मंगलवारको सप्तमी, बुधवार को द्वितीया, बृहस्पतिवारको अष्टमी, शुक्रवारको नवमी और शनिवारको सप्तमी तिथि विषयोग संज्ञक होती हैं। अर्थात् उपयुक्त तिथियाँ रवि आदि वारोंके साथ मिलनेसे विष हो जाती हैं, इन विष योगोंमें भी कोई शुभ कार्य आरम्भ नहीं करना चाहिए। नामके समान ही यह योग फल देता है।

रविवारको द्वादशी, सोमवारको षष्ठी, मंगलवारको सप्तमी, बुध वारको अष्टमी, बृहस्पतिवारको नवमी, शुक्रवारको दशमी और शनिवार को एकादशी तिथि हुताशनयोग संज्ञक होती हैं। इन तिथियोंमें भी रवि आदि वारोंके संयोग होनेपर शुभ कार्य करना त्याज्य है।

दग्ध विष हुताशन योग बोधक चक्र

रवि	सो	म	बुध	बृह	शुक्र	शनि	योग
१२	११	५	३	६	८	९	दग्धयोग
४	६	७	२	८	९	७	विषयोग
१२	६	७	८	९	१०	११	हुताशनयोग

चैत्रमें दोनों पक्षोंकी अष्टमी, नवमी, वैशाखमें दोनों पक्षोंकी द्वादशी ज्येष्ठमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, शुक्लपक्षकी त्रयोदशी, आषाढ़में शुक्लपक्षकी सप्तमी, कृष्णपक्षकी षष्ठी, श्रावणमें द्वितीया, तृतीया, भाद्रपदमें प्रतिपदा, द्वितीया, आश्विनमें दशमी, एकादशी, कार्तिकमें कृष्णपक्षकी पंचमी, शुक्लपक्षकी चतुर्दशी, मार्गशीर्षमें सप्तमी, अष्टमी, पौषमें चतुर्थी, पंचमी, माघमें कृष्णपक्षकी पंचमी और शुक्लपक्षकी षष्ठी एवं फाल्गुनमें शुक्लपक्षकी तृतीया मास शून्य संज्ञक है। इन तिथियोंमें मांगलिक कार्य आरम्भ करनेसे वंश और धनकी हानि होती है। ज्योतिष शास्त्रमें उपयुक्त तिथियाँ निन्द्य बतायी गयी हैं। इनमें विद्यारम्भ, गृहारम्भ, वेदीप्रतिष्ठा, पंचकल्याणक, जिनालयारम्भ, उपनयन आदि कार्य नहीं करने चाहिए।

मेष और कर्क राशिके सूर्यमें [1]षष्ठी, मीन और धनके सूर्यमें द्वितीया, वृष और कुम्भके सूर्यमें चतुर्थी, कन्या और मिथुनके सूर्यमें अष्टमी, सिंह

१ षष्ठीं कर्कटके मेषे चापे मीने द्वितीयकाम्।
चतुर्थीं वृषभे कुम्भे दशमीं सिंहवृश्चिके॥
युग्मेऽष्टमीं च कन्यायां द्वादशीं मकरे तुले।
दहत्यर्को यतस्तस्माद्वर्जनीया इमाः सदा॥
—वसुनन्दिप्रतिष्ठा पाठ प्र० प० श्लो० १५–१६

और वृश्चिकके सूर्यमें दशमी, मकर और तुलाके सूर्यमें द्वादशी तिथि दग्धा मानी बतायी गयी है।

मतान्तरसे धनु और मीनके सूर्यमें द्वितीया, वृष और कुम्भके सूर्यमें चतुर्थी, मेष और कर्कके सूर्यमें षष्ठी, मिथुन और कन्याके सूर्यमें अष्टमी, सिंह और वृश्चिकके सूर्यमें दशमी एवं तुला और मकरके सूर्यमें द्वादशी तिथि सूर्य दग्धा संज्ञक होती है।

कुम्भ और धनुके चन्द्रमामें द्वितीया, मेष और मिथुनके चन्द्रमामें चतुर्थी, तुला और सिंहके चन्द्रमामें षष्ठी, मकर और मीनके चन्द्रमामें अष्टमी, वृष और कर्कके चन्द्रमामें दशमी एवं वृश्चिक और कन्याके चन्द्रमामें द्वादशी तिथि चन्द्र दग्धा कहलाती हैं। इन तिथियोंमें उपनयन, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ आदि कार्य करना वर्जित है।

सूर्यदग्धा तिथि यन्त्र

धनु और मीनके	सूर्यमें	२	मिथुन और कन्याके	सूर्यमें	८
वृष और कुम्भके	सूर्यमें	४	सिंह और वृश्चिकमें	सूर्यमें	१०
मेष और कर्कके	सूर्यमें	६	तुला और मकरके	सूर्यमें	१२

चन्द्रदग्धा तिथि-यन्त्र

कुम्भ और धनुके	चन्द्रमामें	२	मकर और मीनके	चन्द्रमामें	८
मेष और मिथुनके	चन्द्रमामें	४	वृष और कर्कके	चन्द्रमामें	१०
तुला और सिंहके	चन्द्रमामें	६	वृश्चिक और कन्याके	चन्द्रमामें	१२

इस प्रकार विभिन्न कार्योंके लिए शुभाशुभ तिथियोंका विचारकर अशुभ तिथियोंका त्याग करना चाहिए। प्रत्येक शुभ-कार्यमें समय शुद्धिका विचार करना परमावश्यक है। व्रतारम्भके लिए तिथिका प्रमाण एवं धर्म सर्वसम्मतिसे स्वीकार किया गया है।

तिथि प्रमाणके लिए पद्मदेवका मत

इत्यादिमतमालोक्यनियत रसघटीप्रमम् ।
अथ श्रीपद्मदेवादिसूरिभिर्ज्ञानधारिभि' ॥७॥

अर्थ—इस प्रकार व्रत तिथिके प्रमाणके लिए नाना मत-मतान्तरों का अवलोकन कर ज्ञानवान् श्रीपद्मदेव आदि महर्षियोंने रस घटी—छ घटी प्रमाण-तिथिके मतको ही प्रमाण माना है। अर्थात् जैन मान्यतामें उदया तिथि व्रतके लिए ग्राह्य नहीं है, किन्तु छ घटी प्रमाण तिथि होने पर ही व्रतके लिए ग्राह्य मानी गयी है।

पद्मदेवके मतका उपसंहार

तदेव पद्मदेवाचार्योक्त रसघटीमत व्रतविधाने ग्राह्यम् ।
धर्मप्रमाण मत न ग्राह्यमिति ॥

अर्थ—व्रत विधानके लिए छ घटी प्रमाण ही पद्मदेव आचार्यके मत से ग्रहण करना चाहिए। दस घटी प्रमाण व्रततिथिको नहीं मानना चाहिए। श्रीकुन्दकुन्दाचार्य तथा मूलसंघके अन्य आचार्योंका मत भी छ घटी प्रमाण तिथि ग्रहण करनेका है।

प्रश्न

त्रिविधातिथिसमायाते क्रियते हि व्रत कथम् ।
पप्रच्छेति गुरु शिष्यो विनयावनतमस्तकः ॥८॥

अर्थ—एक ही दिन कई तिथियोंके आ-जानेपर व्रत कब करना चाहिए अर्थात् कभी-कभी एक ही दिन तीन तिथियाँ रह सकती हैं, ऐसी अवस्थामें व्रत कब करना चाहिये? इस प्रकारका प्रश्न विनम्र एवं नतमस्तक होकर शिष्यने गुरुसे पूछा।

विवेचन—मध्यम मान तिथिका यद्यपि ६० घटी है, परन्तु स्पष्ट मान तिथिका सदा घटता-बढ़ता रहता है। कोई भी तिथि ६० घटीप्रमाण

और वृश्चिकके सूर्यमें दशमी, मकर और तुलाके सूर्यमें द्वादशी तिथि दग्धा सज्ञक बतायी गयी है।

मतान्तरसे धनु और मीनके सूर्यमें द्वितीया, वृष और कुम्भके सूर्यमें चतुर्थी, मेष और कर्कके सूर्यमें षष्ठी, मिथुन और कन्याके सूर्यमें अष्टमी, सिंह और वृश्चिकके सूर्यमें दशमी एवं तुला और मकरके सूर्यमें द्वादशी तिथि सूर्य दग्धा सज्ञक होती है।

कुम्भ और धनुके चन्द्रमामें द्वितीया, मेष और मिथुनके चन्द्रमामें चतुर्थी, तुला और सिंहके चन्द्रमामें षष्ठी, मकर और मीनके चन्द्रमामें अष्टमी, वृष और कर्कके चन्द्रमामें दशमी एवं वृश्चिक और कन्याके चन्द्रमामें द्वादशी तिथि चन्द्र दग्धा कहलाती हैं। इन तिथियोंमें उपनयन, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ आदि कार्य करना वर्जित है।

सूर्यदग्धा तिथि-यन्त्र

धनु और मीनके	सूर्यमें	२	मिथुन और कन्याके	सूर्यमें	८
वृष और कुम्भके	सूर्यमें	४	सिंह और वृश्चिकमें	सूर्यमें	१०
मेष और कर्कके	सूर्यमें	६	तुला और मकरके	सूर्यमें	१२

चन्द्रदग्धा तिथि-यन्त्र

कुम्भ और धनुके	चन्द्रमामें	२	मकर और मीनके	चन्द्रमामें	८
मेष और मिथुनके	चन्द्रमामें	४	वृष और कर्कके	चन्द्रमामें	१०
तुला और सिंहके	चन्द्रमामें	६	वृश्चिक और कन्याके	चन्द्रमामें	१२

इस प्रकार विभिन्न कार्योंके लिए शुभाशुभ तिथियोंका विचारकर अशुभ तिथियोंका त्याग करना चाहिए। प्रत्येक शुभ कार्यमें समय शुद्धि का विचार करना परमावश्यक है। व्रतारम्भके लिए तिथिका प्रमाण छ घटी सर्वसम्मतिसे स्वीकार किया गया है।

तिधि प्रमाणके लिए पद्मदेवका मत

इत्यादिमतमालोक्यनिपत रसघटीप्रमा ।
अथ श्रीपद्मदेवादिसूरिभिर्मानघातिथि ।

अर्थ—इस प्रकार व्रत तिथिके प्रमाणके लिए ... का अवलोकन कर भाग्यवान् श्रीपद्मदेव आदि आचार्योंने ... घटी प्रमाण-तिथिके व्रतको ही प्रमाण माना है। ... उदया तिथि व्रतके लिए ग्राह्य नहीं है, किन्तु ... पर ही व्रतके लिए ग्राह्य मानी गयी है।

पद्मदेवके मतका अपवाद

तदेव पद्मदेवाचार्योक्त रसघटी ... घटीप्रमाण मत न ग्राह्यमिति ॥

अर्थ—व्रत विधानके लिए ... स ग्रहण करना चाहिए। इस ... चाहिए। श्रीकुन्दकुन्दाचार्य तथा ... घटी प्रमाण-तिथि ग्रहण करनेका

ति ... हि

पद्मन्छेति गुरु

अर्थ—एक ही दिन ... चाहिए अर्थात् कभी-कभी ... तभी अवश्याम व्रत बंध करना ... तत्समक होकर निर्यांने

विवेचन—मध्यम ... मान तिथिका सदा ...

सूर्योदय
का क्षय-
या विद्
य वेध—

मान

॥९॥

ए यही तिथि
आदि कर्ये उसी
ारमें गुरुने स्पष्ट

ो मत प्रचलित
में तिथिके होनेपर
का प्रमाण उदय
। यह कुलाचल
प्रमाण माननेसे ही
न पड़ गया था।
े।

॥ है—शुद्धा और
र्थात् दिनमानमें
ता शुद्धा तिथि
योंका सम्बन्ध
िद्धा तिथिका
ूल रहे

एकाधवार ही आती है। कभी कभी ऐसा अवसर भी आता है, जब एक ही दिन तीन तिथियाँ पड़ जाती हैं। उदाहरण—ज्येष्ठ सुदी द्वितीया प्रातःकाल १ घटी १५ पल है, इसी दिन तृतीयाका प्रमाण ५२ घटी ३० पल पञ्चाङ्गमें लिखा है। सूर्योदय ५ बजकर १५ मिनटपर होता है, अतः इस दिन ५ बजकर ४५ मिनट तक द्वितीया रही, इसके पश्चात् रात के २ बजकर ४५ मिनट तक तृतीया तिथि रही। तदुपरान्त चतुर्थी तिथि आ गयी। इस प्रकार एक ही दिन तीन तिथियाँ पड़ गयीं। जिस व्यक्तिको तृतीयाका व्रत करना है, वह इस प्रकारकी विद्ध तिथियोंमें कैसे व्रत करेगा। यदि इस दिन व्रत करता है तो तीन तिथियाँ रहनेसे व्रतका फल नहीं मिलेगा तथा इसके पहले व्रत करेगा तो तृतीया तिथि नहीं मिलती है, अतः किस प्रकार व्रत करना चाहिए।

ज्योतिष शास्त्रमें व्रत तिथिके निर्णयके लिए अनेक प्रकारसे विचार किया है। तिथियोंके क्षय और वृद्धिके कारण ऐसी अनेक शंकास्पद स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, जब श्रद्धालु व्यक्ति पशोपेशमें पड़ जाता है कि अब किस दिन व्रत करना चाहिए। क्योंकि व्रतका फल तभी यथार्थ रूपसे मिलता है, जब व्यक्ति व्रतको निश्चित तिथिपर करे। तिथि टालकर करनेसे व्रतका पूरा फल नहीं मिलता। जिस प्रकार असमयकी वर्षा कृषि के लिए उपयोगी होनेके बदले हानिकर होती है, उसी प्रकार असमयपर किया गया व्रत भी फलप्रद नहीं होता। यों तो व्रत सदा ही आत्म शुद्धिका कारण होता है, कर्मोंकी निर्जरा होती ही है, पर विधिपूर्वक व्रत करनेसे कर्मोंकी निर्जरा अधिक होती है तथा पुण्य प्रकृतियोंका बन्ध भी होता है।

वेधातिथिका लक्षण

वेधाया लक्षणं किमिति चेदाह, सूर्योदयकाले त्रिमुहूर्त्ताभावात्, क्षयाभावाद्य विद्धा सा वेधा ज्ञेया। सूर्योदयकालवर्तिन्या तिथ्या वेधत्वात्।

पराधकार ही आती है। कभी कभी ऐसा अवसर भी आता है, जब एक ही दिन तीन तिथियाँ पड़ जाती हैं। उदाहरण—ज्येष्ठ सुदी द्वितीया प्रातःकाल १ घटी १५ पल है, इसी दिन तृतीयाका प्रमाण ५२ घटी ३० पल पञ्चाङ्गमें लिखा है। सूर्योदय ५ बजकर १५ मिनटपर होता है, अतः इस दिन ५ बजकर ४५ मिनट तक द्वितीया रही, इसके पश्चात् रात के २ बजकर ४५ मिनट तक तृतीया तिथि रही। तदुपरान्त चतुर्थी तिथि आ गयी। इस प्रकार एक ही दिन तीन तिथियाँ पड़ गयीं। जिस व्यक्तिको तृतीयाका व्रत करना है, वह इस प्रकारकी विद्ध तिथियोंमें कैसे व्रत करेगा। यदि इस दिन व्रत करना है तो तीन तिथियाँ रहनेसे व्रतका फल नहीं मिलेगा तथा इसके पहले व्रत करेगा तो तृतीया तिथि नहीं मिलती है, अतः किस प्रकार व्रत करना चाहिए।

ज्योतिष शास्त्रमें व्रत तिथिके निर्णयके लिए अनेक प्रकारसे विचार किया है। तिथियोंके क्षय और वृद्धिके कारण ऐसी अनेक शङ्कास्पद स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, जब श्रद्धालु व्यक्ति पशोपेशमें पड़ जाता है कि अब किस दिन व्रत करना चाहिए। क्योंकि व्रतका फल तभी यथार्थ रूपसे मिलता है, जब व्यक्ति व्रतको निश्चित तिथिपर करे। तिथि टालकर करनेसे व्रतका पूरा फल नहीं मिलता। जिस प्रकार असमयकी वर्षा कृषिके लिए उपयोगी होनेके बदले हानिकर होती है, उसी प्रकार असमयपर किया गया व्रत भी फलप्रद नहीं होता। यों तो व्रत सदा ही आत्मशुद्धिका कारण होता है, कर्मोंकी निर्जरा होती ही है, पर विधिपूर्वक व्रत करनेसे कर्मोंकी निर्जरा अधिक होती है तथा पुण्य प्रकृतियोंका बन्ध भी होता है।

वेधातिथिका लक्षण

वेधाया लक्षण किमिति चेदाह ; सूर्योदयकाले त्रिमुहूर्त्ताभावात्, क्षयाभावाच्च विद्धा सा वेधा ज्ञेया। सूर्योदयकालवर्तिन्या तिथ्या वेधत्वात्।

अर्थ—वेधा तिथिका लक्षण बताया है। आचार्य कहते हैं कि सूर्योदय समयमें जो तिथि तीन मुहूर्त—छ घटीसे कम होने अथवा उसका क्षय-अभाव होनेके कारण अन्य तिथिके साथ सम्बद्ध रहती है वेधा या विद्ध तिथि कहलाती है। सूर्योदयकालमें रहनेवाली तिथिके साथ वेध—सम्बन्ध करनेके कारण वेधातिथि कहलाती है।

व्रतोपनयन आदि कार्योंके लिए तिथिमान

सोदय दिवस ग्राह्य कुलाद्रिघटिकाप्रमम्।
व्रते चटोपमागत्य गुरु प्राह रिति स्फुटम् ॥९॥

अर्थ—छ घटी प्रमाण तिथिके होनेपर दिनभरके लिए वही तिथि मान ली जाती है, अतः व्रतग्रहण, उपनयन, प्रतिष्ठा आदि कार्य उसी तिथिमें करने चाहिए। इस प्रकार पूर्वोक्त प्रश्नके उत्तरमें गुरुने स्पष्ट कहा है।

विवेचन—प्राचीन भारतमें तिथिमानके लिए दो मत प्रचलित थे—हिमाद्रि और कुलाद्रि। हिमाद्रि मत उदयकालमें तिथिके होनेपर ही तिथिको ग्रहण करता था, पर कुलाद्रि मत छ घटी प्रमाण उदय कालमें तिथिके होनेपर ही तिथिको ग्रहण करता था। पर् कुलाचल होनेके कारण छ घटी प्रमाण उदयकालमें तिथिका प्रमाण माननेसे ही इस मतका नाम कुलाद्रि मत या कुलाद्रिघटिका मत पड़ गया था। कुछ लोग हिमाद्रि मतका प्रमाण दसघटी भी मानते थे।

ज्योतिषशास्त्रमें तिथियाँ दो प्रकारकी बतायी गयी हैं—शुद्धा और विद्धा। 'दिने तिथ्यन्तरसम्बन्धरहिता शुद्धा' अर्थात् दिनमानमें एक ही तिथि हो, किसी अन्य तिथिका सम्बन्ध न हो तो शुद्धा तिथि होती है। 'तत्सहिता विद्धा' एक ही दिनमें दो तिथियोंका सम्बन्ध हो तो विद्धा तिथि कहलाती है। आरम्भसिद्धि ग्रन्थमें विद्धा तिथिका विश्लेषण करते हुए कहा गया है—"जो तिथि तीन वारोंमें वर्तमान रहे

यह वृद्धि तिथि कहलाती है, मतान्तरसे इसका नाम भी विद्धा तिथि है। जब एक ही दिनमें तीन तिथियाँ या दो तिथियाँ वर्तमान रहें, वहाँ पर भी विद्धा तिथि मानी जाती है। जब एक दिनमें तीन तिथियाँ वर्तमान रहती हैं तो मध्यवाली तिथिका क्षय माना जाता है[1] तथा जब एक दिनमें दो तिथियाँ रहती हैं तो उत्तरवाली तिथिका क्षय माना जाता है[2]। उदाहरण—जैसे रविवारकी रातमें तीन घटी रात शेष रहनेपर पञ्चमी आरम्भ हुई, सोमवारको साठ घटी पञ्चमी है तथा मंगलको प्रातःकालमें तीन घटी पञ्चमी है, पश्चात् षष्ठी तिथि आरम्भ होती है। यहाँ पञ्चमी तिथि रविवार, सोमवार और मंगलवार इन तीनों दिनोंमें व्याप्त है अतः वृद्धितिथि मानी जायगी। यह वृद्धितिथि प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, उपनयन आदि समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य है।

तीन तिथियोंकी स्थिति एक ही दिन इस प्रकार रहती है कि शुक्रवारको प्रातःकाल अष्टमी १ घटी १५ पल है, नवमी ५२ घटी ४० पल है और दशमी ६ घटी ५ पल है तथा शनिवारको दशमी ४९ घटी २० पल है। इस प्रकारकी स्थितिमें शुक्रवारको अष्टमी, नवमी और

१ त्रीन्वारान् स्पृशती त्याज्या त्रिदिनस्पर्शिनी तिथिः।
वारे तिथित्रयस्पर्शित्यवम मध्यमा च या ॥
यत्र तिथेर्वृद्धिस्तत्रैका तिथिवारत्रय स्पृशतीति सा त्रिदिनस्पर्शिनी। तस्या-फल्गुरिति नाम हर्षप्रकाशग्रन्थे। यत्र तु तिथिपातस्तत्रैको वारस्तिस्त्रिस्तिथी स्पृशति। तासु या मध्यमा तिथि साऽवममित्युच्यते। एते द्वे अपि त्याज्ये।
—आरम्भसिद्धि पृ० ६

२ या एकस्मिन् वासरे द्वयन्ता द्वयोस्तिथ्यो यत्र समाप्ति तत्रोत्तरा क्षयतिथि। यथा गुरुवासरे घटिकाद्वय तृतीया तदुत्तर चतुर्था षट्-पञ्चाशद्घटिकापर्यन्त, एवमुत्तरा चतुर्थी क्षयतिथि। एवं क्षयतिथिनष्टा, सूर्योदये वारस्याप्राप्ते। फलम्—कृतं यन्मंगलं तत्र त्रिद्युस्पृगवमे तिथौ। भस्मीभवति तत्सर्वं शुष्कमग्नौ यथेन्धनम् ॥
—ज्योतिषद्रार्क पृ० ५०

दशमी तीनों तिथियाँ रहीं। इन तीनोंमेंसे नवमी तिथि क्षयतिथि मानी जायगी। अतः नवमीको प्रत्येक शुभ कार्यके करनेका निषेध रहेगा।

जैनाचार्योंने प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, व्रतोपनयन प्रभृति मांगलिक कार्योंके लिए तिथि वृद्धि और तिथिक्षय दोनोंको त्याज्य बताया है। प्रातःकालमें जबतक ६ घटी प्रमाण तिथि नहीं हो, कोई भी शुभ कार्य नहीं करना चाहिए।

विष्णुधर्मपुराण, नारदसंहिता, वशिष्ठसंहिता, मुहूर्तदीपिका, मुहूर्त माधवीय आदि वैदिक ज्योतिषके ग्रन्थोंमें भी धर्मकृत्यके लिए तीन मुहूर्त अर्थात् छः घटी प्रमाण तिथिका विधान किया गया है। विद्धतिथि होने पर *किसी किसी आचार्यने तीन मुहूर्त प्रमाण तिथिको भी अग्राह्य* बताया है।

समस्त शुभ कार्योंमें व्यतीपात योग, भद्रा, वैधृति नामका योग, अमावास्या, क्षयतिथि, वृद्धितिथि, क्षयमास, कुलिक योग, अर्द्धयाम, महापात, विष्कम्भ और वज्रके तीन-तीन दण्ड, परिघ योगका पूर्वार्द्ध, शूलयोगके पाँच दण्ड, गण्ड और अतिगण्डके छः छः दण्ड एवं व्याघात योगके नौ दण्ड समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य हैं।

प्रत्येक शुभकार्यके लिए पञ्चाङ्गशुद्धि देखी जाती है—तिथि, नक्षत्र, वार, योग और करण। इन पाँचोंके शुद्ध होनेपर ही कोई भी शुभ कार्य करना श्रेष्ठ होता है। यों तो भिन्न भिन्न कार्योंके लिए भिन्न भिन्न तिथियाँ ग्राह्य की गयी हैं, परन्तु समस्त शुभ कार्योंमें प्रायः १।४।९।१२। १४।३० तिथियाँ त्याज्य मानी गयी हैं। ग्राह्य तिथियोंमें भी क्षय और वृद्धि तिथियोंका निषेध किया गया है।

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती ये २७ नक्षत्र हैं। धनिष्ठासे रेवतीतक पाँच नक्षत्रोंमें पञ्चक माना जाता है। इन पाँचों

नक्षत्रोंमें तृण काष्ठका संग्रह करना, खटिया बनाना एवं झोंपड़ी छवाना निषिद्ध है। अश्विनी, रेवती, मूल, आश्लेषा और ज्येष्ठा इन पाँच नक्षत्रोंमें जन्मे बालकको मूलदोष माना जाता है। कोई कोई मघा नक्षत्रको भी मूलमें परिगणित करते हैं।

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी ध्रुव एवं स्थिर संज्ञक हैं। इनमें मकान बनवाना, बगीचा लगाना, जिनालय बनवाना, शान्ति और पौष्टिक कार्य करना शुभ होता है। स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्र चर या चल संज्ञक हैं। इनमें मशीन चलाना, सवारी करना, यात्रा करना शुभ है। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, भरणी और मघा उग्र अथवा क्रूर संज्ञक हैं। इनमें प्रत्येक शुभ कार्य त्याज्य है। विशाखा और कृत्तिका मिश्र संज्ञक हैं, इनमें सामान्य कार्य करना अच्छा होता है। हस्त, अश्विनी, पुष्य और अभिजित् क्षिप्र अथवा लघु संज्ञक हैं। इनमें दुकान खोलना, ललितकलाएँ सीखना या ललितकलाओंका निर्माण करना, मुकद्दमा दायर करना, विद्यारम्भ करना, शास्त्र लिखना उत्तम होता है। मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा मृदु या मैत्र संज्ञक हैं। इनमें गायन वादन करना, वस्त्र धारण करना, यात्रा करना, क्रीडा करना, आभूषण बनवाना आदि शुभ है। मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा तीक्ष्ण या दारुण संज्ञक हैं। इनका प्रत्येक शुभ कार्यमें त्याग करना आवश्यक है।

विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र और वैधृति ये २७ योग होते हैं। इन योगोंमें वैधृति और व्यतीपात योग समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य हैं, परिघ योगका आधा भाग वर्ज्य है। विष्कम्भ और वज्रयोगकी तीन तीन घटिकाएँ, शूलयोगकी पाँच घटिकाएँ एवं गण्ड और अतिगण्डकी छ छ घटिकाएँ शुभ कार्योंमें वर्ज्य हैं।

बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनी, चतुष्पद,

नाग और किंस्तुघ्न ये ११ करण होते हैं। बव करणमें शान्ति और पौष्टिक कार्य; बालवमें गृह निर्माण, गृह प्रवेश, निधि स्थापन, दान पुण्यके कार्य; कौलवमें पारिवारिक कार्य, मैत्री, विवाह आदि; तैतिलमें नौकरी, सेवा, राजासे मिलना, राजकार्य आदि; गरमें कृषि कार्य; वणिजमें व्यापार, क्रय विक्रय आदि कार्य; विष्टिमें उग्र कार्य; शकुनीमें मन्त्र तन्त्र सिद्धि, औषधनिर्माण आदि; चतुष्पदमें पशु खरीदना-बेचना, पूजा पाठ करना आदि; नागमें स्थिर कार्य एवं किंस्तुघ्नमें चित्र खींचना, नर्तन, गाना आदि कार्य करना श्रेष्ठ माने गये हैं। विष्टि—भद्रा[1] समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य है।

वारोंमें रविवार, मंगलवार और शनिश्चर क्रूर माने गये हैं। इनमें शुभ कार्य करना प्रायः त्याज्य है। मतान्तरसे रविवार ग्रहण भी किया गया है, किन्तु मंगलवार और शनिवारको सर्वथा त्याज्य बताया है। शुक्र, गुरु और बुधवार समस्त शुभ कार्योंमें ग्राह्य माने गये हैं। सोम वारको मध्यम बताया है। राज्याभिषेक, नौकरी, मन्त्रसिद्धि, औषध निर्माण, विद्यारम्भ, संग्राम, अलंकार-निर्माण, शिल्प निर्माण, पुण्यकृत्य, उत्सव, यान निर्माण, सूतिका-स्नान आदि कार्य रविवारको करनेसे; कृषि, व्यापार, गान, चाँदी मोतीका व्यापार, प्रतिष्ठा आदि कार्य सोम वारको करनेसे; क्रूरकार्य, खान खोदना, ऑपरेशन कराना, सूतिका-स्नान

---

१ न सिद्धिमायाति कृतं च विष्ट्यां विषादिघातादिषु तत्र सिद्धिः।
न कुर्यान्मङ्गलं विष्ट्या जीवितार्थी कदाचन।
शुक्ले पूर्वार्धेऽष्टमीपञ्चदश्योर्भद्रैकादश्यां चतुर्थ्यां परार्धे।
कृष्णेऽन्त्यार्धे स्यात् तृतीयादशम्योः पूर्वे भागे सप्तमीशम्भुतिथ्योः॥
भावार्थ—भद्रामें कोई भी काम सिद्ध नहीं होता है। शुक्ल पक्षकी अष्टमी और पौर्णमासीके पूर्वार्धमें तथा एकादशी और चतुर्थीके परार्धमें एवं कृष्णपक्षकी तृतीया और दशमीके परार्धमें और सप्तमी तथा चतुर्दशीके पूर्वार्धमें भद्रा होती है।

—सुगम ज्योतिष पृ० ८९

आदि काम मंगलको करनेसे, अक्षरारम्भ, शिलान्यास, कर्णवेध, काव्य-निर्माण, काव्यसर्ग कला आदिका अध्ययन, व्यायाम करना, कुश्ती लड़ना आदि कार्य बुधको करनेसे, दीक्षारम्भ, विद्यारम्भ, औषध निर्माण, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, सीमन्तोन्नयन, पु सवन, जातकर्म, विवाह, स्तनपान, सूतिका स्नान, भूम्युपवेशन एवं अन्नप्राशन आदि माङ्गलिक कार्य गुरुवारको करनेसे, विद्यारम्भ, कर्णवेध, चूड़ाकरण, वाग्दान, विवाह, व्रतोपनयन, पोडश सस्कार आदि कार्य शुक्रवारको करनेसे एव गृहप्रवेश, दीक्षारम्भ तथा अन्य क्रूर कार्य शनिवारको करनेसे सफल होते है।

विशेष विचारके लिए तो प्रत्येक कार्यके विहित मुहूर्तको ही ग्रहण करना चाहिए। सामान्यसे उपयुक्त तिथि, नक्षत्र, योग, करण और वारसिद्धिका विचारकर जो तिथि आदि जिस कार्यके लिए ग्राह्य बताये गये है, उन्हींमें उस कार्यको करना चाहिए। शुभ समयपर किया गया कार्य ज्यादा फल देता है।

व्रतके लिए छ घटी प्रमाण तिथि न माननेवालोंके यहाँ दोष

ये गृह्णन्ति सूर्योदय शुभदिनमसद्दृष्टिपूर्वा नरा'
तेषा कार्यमनेकधा व्रतविधिर्मार्गमेवेति च ॥
धर्माधर्मविचारहेतुरहिता' कुर्वन्ति मिथ्यानिशम्
तिर्यक्श्वभ्रमगाश्रिता जिनपतेर्बाह्य गता धर्मत. ॥१०॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टि सूर्योदयमें रहनेवाली तिथिको ही शुभ दिन मानते है, उनके व्रत और तिथियाँ अनिश्चित रहनेके कारण अनेक हो सकते हैं तथा व्रतविधि और कार्य भी अनिश्चित ही होते हैं। ये धर्म और अधर्मके विचारसे रहित होकर असत् तिथिमें व्रत करते हैं, जिससे जैनधर्मसे विरुद्ध आचरण करनेके कारण तिर्यञ्च और नरक गतिको प्राप्त

होते हैं। अभिप्राय यह है कि उदयकालीन तिथिको ही प्रमाण मानकर व्रत करना आगमविरुद्ध है। आगमविरुद्ध व्रत करनेसे नरक और तिर्यञ्च गतिमें भ्रमण करना पड़ता है।

विवेचन—विधिपूर्वक व्रत करनेसे समस्त पाप-सन्ताप दूर हो जाते हैं, पुण्यकी वृद्धि होती है तथा परम्परासे मोक्षकी प्राप्ति होती है। जैनाचार्योंने व्रतकी तिथिका प्रमाण सूर्योदय कालमें कमसे कम छ घटी माना है, इससे कम प्रमाण तिथि होनेपर पिछले दिन व्रत करनेका आदेश दिया है। अन्य धर्मवालोंने व्रतके लिए उदय तिथिका ही ग्रहण किया है। यदि उदयकालमें एक घटी या इससे भी कम तिथि हो तो व्रतके लिए ग्रहण करनेका आदेश दिया है। उदाहरणार्थ यों कहना चाहिये कि 'क' व्यक्तिको चतुर्दशीका व्रत करना है, चतुर्दशी शनिवारको एक घटी दस पल है। जैनाचार्योंके मतानुसार चतुर्दशीका व्रत शनिवारको नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस दिन चतुर्दशी उदयकालमें छ घटीसे न्यून है, अतः शुक्रवारको ही व्रत करना होगा। अजैन—वैदिक आचार्योंके मतानुसार चतुर्दशीका व्रत शनिवारको ही करना होगा; क्योंकि उदयकालमें चतुर्दशी शनिवारको है। इनका कथन है कि उदय कालीन तिथि ही दिनभरके लिए ग्राह्य मानी जाती है।

व्रतविधिमें सबसे आवश्यक अंग समयशुद्धि है। असमयका व्रत कल्याणकारी नहीं हो सकता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक अपने सम्यग्दर्शन गुणकी विशुद्धिके लिए व्रत करता है, वह व्रतके दिनोंमें अपने रहन-सहन, खान पान, आचार विचारको अत्यन्त पवित्र बनानेका प्रयत्न करता है। आरम्भ और परिग्रहका उतने समयके लिए त्याग करता है। भगवान्‌की पूजा करता हुआ उनके गुणोंका चिन्तन करता है, अपनी आत्मामें पवित्रताकी भावना भरता है। सारांश यह है कि वह अपनी भावना मुनिधर्मको प्राप्त करनेकी करता है। व्रती श्रावक नित्य और नैमित्तिक दोनों प्रकारके व्रतोंका पालन करता हुआ अपनी आत्माको उज्ज्वल, निर्मल और कर्मकलङ्कसे रहित करता है। व्रत आत्माके शोधनमें बड़े-बड़े

आदि काम मगलको करनेसे, अक्षरारम्भ, शिलान्यास, कर्णवेध, कायनिर्माण, काव्यतर्क कला आदिका अध्ययन, व्यायाम करना, कुश्ती लड़ना आदि कार्य बुधको करनेसे, दीक्षारम्भ, विद्यारम्भ, औषध निर्माण, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, सीमन्तोन्नयन, पुसवन, जातकर्म, विवाह, स्तनपान, सूतिका-स्नान, भूम्युपवेशन एवं अन्नप्राशन आदि माङ्गलिक कार्य गुरुवारको करनेसे, विद्यारम्भ, कर्णवेध, चूड़ाकरण, वाग्दान, विवाह, व्रतोपनयन, षोडश सस्कार आदि कार्य शुक्रवारको करनेसे एव गृहप्रवेश, दीक्षारम्भ तथा अन्य क्रूर काय शनिवारको करनेसे सफल होते हैं।

विशेष विचारके लिए तो प्रत्येक कार्यके विहित मुहूर्तको ही ग्रहण करना चाहिए। सामान्यसे उपयुक्त तिथि, नक्षत्र, योग, करण और वारसिद्धिका विचारकर जो तिथि आदि जिस कार्यके लिए ग्राह्य बताये गये हैं, उन्हींमें उस कार्यको करना चाहिए। शुभ समयपर किया गया कार्य ज्यादा फल देता है।

व्रतके लिए छ· घटी प्रमाण तिथि न माननेवालोंके यहाँ दोष

ये गृह्णन्ति सूर्योदयं शुभदिनमसदृष्टिपूर्वा नराः
तेषा कार्यमनेकधा व्रतविधिर्मार्गमेनेति च ॥
धर्माधर्मविचारहेतुरहिता' कुर्वन्ति मिथ्यानिशम्
तिर्यक्कुश्रमगाश्रिता जिनपतेर्नोह्य' गता धर्मतः ॥१०॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टि सूर्योदयमें रहनेवाली तिथिको ही शुभ दिन मानते हैं, उनके व्रत और तिथियाँ अनिश्चित रहनेके कारण अनेक हो सकते हैं तथा व्रतविधि और कार्य भी अनिश्चित ही होते हैं। ये धर्म और अधर्मके विचारसे रहित होकर असत् तिथिमें व्रत करते हैं, जिससे जैनधर्मसे विरुद्ध आचरण करनेके कारण तिर्यञ्च और नरक गतिको प्राप्त

होते हैं। अभिप्राय यह है कि उदयकालीन तिथिका ही प्रमाण मानकर व्रत करना आगमविरुद्ध है। आगमविरुद्ध व्रत करनेसे नरक और तिर्यञ्च गतिमें भ्रमण करना पड़ता है।

विवेचन—विधिपूर्वक व्रत करनेसे समस्त पाप-सन्ताप दूर हो जाते हैं, पुण्यकी वृद्धि होती है तथा परम्परासे मोक्षकी प्राप्ति होती है। जैनाचार्योंने व्रतकी तिथिका प्रमाण सूर्योदय कालमें कमसे कम छ घटी माना है, इससे कम प्रमाण तिथि होनेपर पिछले दिन व्रत करनेका आदेश दिया है। अन्य धर्मवालोंने व्रतके लिए उदय तिथिका ही ग्रहण किया है। यदि उदयकालमें एक घटी या इससे भी कम तिथि हो तो व्रतके लिए ग्रहण करनेका आदेश दिया है। उदाहरणार्थ यों कहना चाहिये कि 'क' व्यक्तिको चतुर्दशीका व्रत करना है, चतुर्दशी शनिवारको एक घटी हम पल है। जैनाचार्योंके मतानुसार चतुर्दशीका व्रत शनिवारको नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस दिन चतुर्दशी उदयकालमें छ घटीसे न्यून है, अतः शुक्रवारको ही व्रत करना होगा। अजैन—वैदिक आचार्योंके मतानुसार चतुर्दशीका व्रत शनिवारको ही करना होगा; क्योंकि उदयकालमें चतुर्दशी शनिवारको है। इनका कथन है कि उदयकालीन तिथि ही दिनभरके लिए ग्राह्य मानी जाती है।

व्रतविधिमें सबसे आवश्यक अंग समयशुद्धि है। असमयका व्रत कल्याणकारी नहीं हो सकता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक अपने सम्यग्दर्शन गुणकी विशुद्धिके लिए व्रत करता है, वह व्रतके दिनोंमें अपने रहन-सहन, खान पान, आचार विचारको अत्यन्त पवित्र बनानेका प्रयत्न करता है। आरम्भ और परिग्रहका उतने समयके लिए त्याग करता है। भगवान्‌की पूजा करता हुआ उनके गुणोंका चिन्तन करता है, अपनी आत्मामें पवित्रताकी भावना भरता है। सारांश यह है कि वह अपनी भावना मुनिधर्मको प्राप्त करनेकी करता है। व्रती श्रावक नित्य और नैमित्तिक दोनों प्रकारके व्रतोंका पालन करता हुआ अपनी आत्माको उज्ज्वल, निर्मल और कर्मकलङ्कसे रहित करता है। व्रत आत्माके शोधनमें बड़े-बड़े

आदि काम मगलको करनेसे, अक्षरारम्भ, शिलान्यास, कर्णवेध, काव्य-निर्माण, काव्यन्तक ग्रन्थ आदिका अध्ययन, व्यायाम करना, कुश्ती लड़ना आदि कार्य बुधको करनेसे, दीक्षारम्भ, विद्यारम्भ, औषध निर्माण, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, सीमन्तोन्नयन, पु सवन, जातकर्म, विवाह, स्तनपान, सूतिका स्नान, भूम्युपवेशन एवं अन्नप्राशन आदि माङ्गलिक कार्य गुरवारको करनेसे, विद्यारम्भ, कर्णवेध, चूडाकरण, वाग्दान, विवाह, व्रतोपनयन, षोडश सस्कार आदि कार्य शुक्रवारको करनेसे एव गृहप्रवेश, दीक्षारम्भ तथा अन्य क्रूर कार्य शनिवारको करनेसे सफल होते हैं।

विशेष विचारके लिए तो प्रत्येक कार्यके विहित मुहूर्तको ही ग्रहण करना चाहिए। सामान्यसे उपर्युक्त तिथि, नक्षत्र, योग, करण और वारसिद्धिका विचारकर जो तिथि आदि जिस कार्यके लिए ग्राह्य बताये गये हैं, उन्हींमें उस कार्यको करना चाहिए। शुभ समयपर किया गया कार्य ज्यादा फल देता है।

व्रतके लिए छ घटी प्रमाण तिथि न माननेवालोंके यहाँ दोष

ये गृह्णन्ति सूर्योदय शुभदिनमसद्दृष्टिपूर्वा नरा'
तेषा कार्यमनेकधा व्रतविधिर्मर्गमेनेति च ॥
धर्माधर्मविचारहेतुरहिताः कुर्वन्ति मिथ्यानिशम्
तिर्यक्श्वभ्रमजाश्रिता जिनपतेर्नाह्य' गता धर्मत' ॥१०॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टि सूर्योदयमें रहनेवाली तिथिको ही शुभ दिन मानते हैं, उनके व्रत और तिथियाँ अनिश्चित रहनेके कारण अनेक हो सकते हैं तथा व्रतविधि और कार्य भी अनिश्चित ही होते हैं। ये धर्म और अधर्मके विचारसे रहित होकर असत् तिथिमें व्रत करते हैं, जिससे जैनधर्मसे विरुद्ध आचरण करनेके कारण तिर्यञ्च और नरक गतिको प्राप्त

होते हैं। अभिप्राय यह है कि उदयकालीन तिथिको ही प्रमाण मानकर व्रत करना आगमविरुद्ध है। आगमविरुद्ध व्रत करनेसे नरक और तिर्यञ्च गतिमें भ्रमण करना पड़ता है।

विवेचन—विधिपूर्वक व्रत करनेसे समस्त पाप-सन्ताप दूर हो जाते हैं, पुण्यकी वृद्धि होती है तथा परम्परासे मोक्षकी प्राप्ति होती है। जैनाचार्योंने व्रतकी तिथिका प्रमाण सूर्योदय कालमें कमसे कम छ घटी माना है, इससे कम प्रमाण तिथि होनेपर पिछले दिन व्रत करनेका आदेश दिया है। अन्य धर्मवालोंने व्रतके लिए उदय तिथिको ही ग्रहण किया है। यदि उदयकालमें एक घटी या इससे भी कम तिथि हो तो व्रतके लिए ग्रहण करनेका आदेश दिया है। उदाहरणार्थ यों कहना चाहिये कि 'क' व्यक्तिको चतुर्दशीका व्रत करना है, चतुर्दशी शनिवारको एक घटी दस पल है। जैनाचार्योंके मतानुसार चतुर्दशीका व्रत शनिवारको नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस दिन चतुर्दशी उदयकालमें छ घटीसे न्यून है, अतः शुक्रवारको ही व्रत करना होगा। अजैन—वैदिक आचार्योंके मतानुसार चतुर्दशीका व्रत शनिवारको ही करना होगा, क्योंकि उदयकालमें चतुर्दशी शनिवारको है। इनका कथन है कि उदयकालीन तिथि ही दिनभरके लिए ग्राह्य मानी जाती है।

व्रतविधिमें सबसे आवश्यक अंग समयशुद्धि है। असमयका व्रत कल्याणकारी नहीं हो सकता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक अपने सम्यग्दर्शन गुणकी विशुद्धिके लिए व्रत करता है, वह व्रतके दिनोंमें अपने रहन-सहन, खान पान, आचार विचारको अत्यन्त पवित्र बनानेका प्रयत्न करता है। आरम्भ और परिग्रहका उतने समयके लिए त्याग करता है। भगवान्‌की पूजा करता हुआ उनके गुणोंका चिन्तन करता है, अपनी आत्मामें पवित्रताकी भावना भरता है। सारांश यह है कि वह अपनी भावना मुनिधर्मको प्राप्त करनेकी करता है। व्रती श्रावक नित्य और नैमित्तिक दोनों प्रकारके व्रतोंका पालन करता हुआ अपनी आत्माको उज्ज्वल, निर्मल और कर्मकलङ्कसे रहित करता है। व्रत आत्माके शोधनमें बड़े-बड़े

सहायक होते हैं। इस व्रततिथिनिर्णयमें आचार्यने व्रतोंके लिए तिथियोंका निश्चय किया है। जैनाचारमें व्रत उपवासके लिए तिथियोंका विधान किया गया है। आचार्यने यहाँ कितने प्रमाण तिथिके होनेपर व्रत करना चाहिए, इसका विस्तारसे निरूपण किया है। योग्य समयमें व्रत करनेसे विशेष फलकी प्राप्ति होती है[1]।

तिथिह्रासे व्रतकर्त्तव्ये किं विधानम् ? सकला तिथिः का? कथं व्रतनिर्णय इति चेत्सदाह—

अर्थ—तिथिके ह्रासमें व्रत करनेका क्या नियम है? कब व्रत करना चाहिए। सकला—सम्पूर्ण तिथि क्या है। उसमें किस प्रकारका व्रत व्यक्त किया गया है? इस प्रकारके प्रश्न पूछे जानेपर आचार्य कहते हैं—

तिथिह्रासमें व्रत करनेका विधान

त्रिमुहूर्त्तेषु यत्रार्क उदेत्यस्तं समेति च।
सा तिथिः सकला ज्ञेया उपवासादिकर्मणि ॥११॥

संस्कृत व्याख्या—यस्यां तिथौ त्रिमुहूर्त्तप्रमे वर्तमानेषु षट्-स्वर्के उदेति सा तिथिः दैवसिकव्रतेषु रत्नत्रयाष्टाह्निकदशलाक्षणिकरत्नावलीकनकावलीद्विकावल्येकावलीमुक्तावलीषोडशकारणादिषु सकला ज्ञेया। चकारात् या तिथिः उदयकाले त्रिमुहूर्त्ताहीनागतदिवसेऽपि वर्तमाना तिथ्युदयकाले त्रिमुहूर्त्तादिना गतदिवसेऽपि वर्तमाना तिथिः त्रिमुहूर्त्तादिना सा अस्तगता तिथिर्ज्ञेया। तद्व्रतं गतदिवसे एव स्यात् अर्कास्तमनकाले त्रिमुहूर्त्ताधिकत्वादिति हेतोः। चकारात् द्वितीयोऽर्थोऽपि ग्राह्यः त्रिमुहूर्त्तेषु सत्सु

१ नमितसकलदेवपापतापापहारम्,
जिनपतिमुद्दिष्टं जन्मपाथोधितारम्।
कुरुत सकललोकाश्चर्यमानेन सारम्,
व्रतमिदमिति पूज्यं देवनाथस्य पूज्यम्॥—व्रतोद्यापनसंग्रह पृ० २२

यस्यामर्क अस्तमेति सा तिथिर्जिनरात्रिर्गगनपञ्चमीचन्दनषष्ठ्या दिषु नैशिकव्रतेषु सकला ग्राह्या; इति तात्पर्यार्थ ।

अर्थ—दैवसिक व्रतों मे—रत्नत्रय, अष्टाह्निका, दशलक्षण, रत्नावली, एकावली, द्विकावली, कनकावली, मुक्तावली, षोडशकारण आदिमें सूर्योदयके समय तीन मुहूर्त्त अर्थात् छ घटीसे लेकर छ मुहूर्त्त अर्थात् बारह घटी पर्यन्त उक्त व्रतोंमें प्रतिपादित तिथियोंके होनेपर व्रत किये जाते हैं। रात्रिव्रतोंमें—जिनरात्रि, आकाशपञ्चमी, चन्दनषष्ठी, नक्षत्रमाला आदिमें अस्तकालीन तिथि ली गयी है अर्थात् जिस दिन तीन मुहूर्त्त—छ घटी तिथि सूर्यके अस्त समयमें रहे, उस दिन वह तिथि नैशिक व्रतोंमें ग्रहण की गयी है। अभिप्राय यह है कि दैवसिक व्रतोंमें उदयकालमें छ घटी तिथिका और नैशिक व्रतोंमें अस्तकालमें छ घटी तिथिका रहना आवश्यक है।

विवेचन—श्रावकके व्रत मूलत दो प्रकारके होते हैं—नित्य व्रत और नैमित्तिक व्रत। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतोंका नित्य पालन किया जाता है, अत ये नित्य व्रत कहे जाते हैं। नैमित्तिक व्रतोंका पालन किसी विशेष अवसरपर ही किया जाता है, इनके लिए तिथि और समय निश्चित है तथा नैमित्तिक व्रतोंके कालमें श्रावक अपने मूल गुण और उत्तरगुणोंको विशुद्ध करता है, उत्तरोत्तर अपनी आत्माका विकास करता जाता है। नैमित्तिक व्रतोंकी संख्या १०८ है, इन १०८ व्रतोंमे कुछ पुनरुक्त व्रत होनेके कारण व्यवहारमें ८० व्रत लिये जाते हैं। वर्तमानमें प्रमुख दसपन्द्रह व्रतोंका ही प्रचार देखा जाता है।

नैमित्तिक व्रतोंके प्रधान दो भेद हैं—दैवसिक और नैशिक। जिन व्रतोंकी समस्त क्रियाएँ दिनमें की जाती हैं, वे दैवसिकव्रत एवं जिनकी क्रियाएँ रातमें सम्पन्न की जाती हैं, वे नैशिकव्रत कहलाते हैं। दोनों ही प्रकारके व्रतोंमें प्रोषधोपवास, ब्रह्मचर्य एवं धर्मध्यान करना आवश्यक माना गया है। फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं जिनका व्रतकी उपयोगिता और व्यावहारिकताके अनुसार रात या दिनमें करना आवश्यक है।

रत्नावलीव्रतमें एक वर्षमें ७२ उपवास किये जाते हैं। यह व्रत

श्रावण कृष्ण द्वितीयासे आरम्भ किया जाता है। इसमें प्रत्येक मासमें छ उपवास करनेका विधान है। व्रत करनेवाला प्रथम श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन एकाशन करता है और श्रावण कृष्ण द्वितीयाको उपवास करता है। उपवासके दिन पूजा, स्वाध्याय और जाप करता हुआ ब्रह्मचर्यसे रहता है। श्रावणकृष्ण तृतीयाके दिन दोनों समय शुद्ध भोजन करता है, पुनः चतुर्थीके दिन एकाशन करता है तथा पञ्चमीको प्रोषधोपवास करता है। सप्तमीको एकाशन करता हुआ अष्टमीको उपवास करता है। इस प्रकार कृष्णपक्षमें तीन उपवास—द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमीको करता है। शुक्लपक्षमें द्वितीयाको एकाशन कर तृतीयाको उपवास, चतुर्थीको एकाशन, पञ्चमीको उपवास, षष्ठीको एकाशन, सप्तमीको एकाशन और अष्टमीको उपवास करता है। इस प्रकार शुक्लपक्षमें तृतीया, पञ्चमी और अष्टमीको उपवास करता है। श्रावणमास वर्षका प्रथम मास माना जाता है, अतः व्रतका आरम्भ श्रावण माससे होता है। व्रत करनेवाला श्रावण में कुल छ उपवास करता है। इसी प्रकार प्रत्येक मासमें कृष्णपक्षमें द्वितीया,पञ्चमी और अष्टमी तथा शुक्लमें तृतीया, पञ्चमी और अष्टमीको उपवास करने चाहिए। प्रत्येक महीनेमें छ उपवास करते हुए वर्षान्ततक कुल ७२ उपवास किये जाते हैं। रत्नावलीव्रत एक वर्षतक ही किया जाता है। द्वितीय वर्ष भाद्रपद मासमें उद्यापन करना चाहिए। यदि उद्यापनकी शक्ति न हो तो दो वर्ष व्रत करना चाहिए।

एकावलीव्रत भी श्रावण माससे आरम्भ किया जाता है। श्रावण कृष्ण चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास करना तथा श्रावण शुक्लपक्षमें प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास करना, इस प्रकार श्रावण मासमें कुल सात उपवास करना। भाद्रपद आदि मासोंमें भी कृष्णपक्षकी चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशी तथा शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशी इस प्रकार कुल सात उपवास प्रत्येक मासमें करने चाहिए। वर्षमें कुल ८४ उपवास किये जाते हैं। एक वर्ष व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन करना चाहिए।

द्विकावलीव्रतमें दो दिन लगातार उपवास करना पड़ता है। इस व्रतके लिए भी दो उपवासोंका दिन ग्रहण किया गया है। प्रथम कृष्ण पक्षमें चतुर्थी-पंचमी, अष्टमी-नवमी और चतुर्दशी-अमावस्या तथा शुक्ल पक्षमें प्रतिपदा-द्वितीया, पंचमी-षष्ठी, अष्टमी-नवमी और चतुर्दशी-पूर्णिमा इस प्रकार कुल सात उपवास करने चाहिए। भाद्रपद आदि मासोंमें भी उक्त तिथियोंमें ही व्रत करना चाहिए। एक वर्षमें कुल ८४ उपवास किये जाते हैं। प्रत्येक उपवास दो दिनोंका होता है।

इस दैवसिक व्रत के लिए सूर्योदय कालमें कमसे कम छः घटी तिथि का रहना आवश्यक है। जैसे किसीको रत्नावलीव्रत करना है, इस व्रत का प्रथम उपवास श्रावण कृष्ण द्वितीयाको करना पड़ता है। यदि शनि वारको द्वितीया तिथि छः घटीसे अल्प हो तो यह व्रत शुक्रवार किया जायगा। इसी प्रकार अन्य व्रतोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिए।

आकाशपञ्चमीव्रत भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीको किया जाता है। चतुर्थीको एकाशन कर पञ्चमीका व्रत रखना चाहिए। रात भगवानका भजन करते हुए, स्तोत्र पढ़ते हुए, शास्त्र स्वाध्याय करते हुए बिताना चाहिए। रातको जागकर बिताना आवश्यक है। खुले स्थानमें रातको पद्मासन लगाकर ध्यान करना चाहिए। इस व्रतके दिन रात आकाशकी ओर देखते हुए बितायी जाती है।

भाद्रपद कृष्णा षष्ठीको चन्दनषष्ठीव्रत किया जाता है। इस दिन प्रोषधोपवास करते हुए रात जागरण करना पड़ता है। चन्दनषष्ठी व्रतमें रातको विशेष जिनार्चन करना पड़ता है। खड़े होकर पञ्च परमेष्ठीका ध्यान करते हुए रात बितानेका इस व्रतमें विधान है। रात्रिकी क्रियाओंकी विशेषता होनेके कारण ये व्रत नैशिक कहलाते हैं।

---

१ यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति पद्मिनीपतिः ।
सा तिथिस्तद्दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्तैव या भवेत् ॥
यो मास्यागमपूर्वार्द्धे सा धर्मे त्रिमुहूर्तगा ।
व्रतेषु सर्वेषु सम्पूर्णा सा विबुधा ॥ —निर्णयसिन्धु पृ० १२

श्रावण कृष्ण द्वितीयासे आरम्भ किया जाता है। इसमें प्रत्येक मासमें छः उपवास करनेका विधान है। व्रत करनेवाला प्रथम श्रावण कृष्ण प्रतिपदाके दिन एकाशन करता है और श्रावण कृष्ण द्वितीयाका उपवास करता है। उसके बाद दिन पूजन, स्वाध्याय और ध्यान करता हुआ सद्भावोंसे रहता है। श्रावण कृष्ण तृतीयाके दिन दोनों समय शुद्ध भोजन करता है, पुनः चतुर्थीके दिन एकाशन करता है तथा पञ्चमीको प्रोषधोपवास करता है। सप्तमीका एकाशन करते हुए अष्टमीको उपवास करता है। इस प्रकार कृष्णपक्षमें तीन उपवास—द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमीको करता है। शुक्लपक्षमें द्वितीयाको एकाशन कर तृतीयाको उपवास, चतुर्थीको एकाशन, पञ्चमीका उपवास, षष्ठीका एकाशन, सप्तमीको एकाशन और अष्टमीका उपवास करता है। इस प्रकार शुक्लपक्षमें तृतीया, पञ्चमी और अष्टमीको उपवास करते हैं। श्रावणमास वर्षका प्रथम मास माना जाता है, अतः व्रतका आरम्भ श्रावण माससे होता है। व्रत करनेवाला श्रावणमें कुल छः उपवास करता है। इसी प्रकार प्रत्येक मासमें कृष्णपक्षमें द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमी तथा शुक्लमें तृतीया पञ्चमी और अष्टमीको उपवास करने चाहिए। प्रत्येक महीनेमें छः उपवास करते हुए वर्षभरमें कुल ७२ उपवास किये जाते हैं। रत्नावलीव्रत एक वर्षतक ही किया जाता है। द्वितीय वर्ष भाद्रपद मासमें उद्यापन करना चाहिए। यदि उद्यापनकी शक्ति न हो तो दो वर्ष व्रत करना चाहिए।

मुक्तावलीव्रत भी श्रावण माससे आरम्भ किया जाता है। श्रावण कृष्ण चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास करना तथा श्रावण शुक्लपक्षमें प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशीका उपवास करना; इस प्रकार श्रावण मासमें कुल सात उपवास करना। भाद्रपद आदि मासोंमें भी कृष्णपक्षकी चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशी तथा शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशी इस प्रकार कुल सात उपवास प्रत्येक मासमें करने चाहिए। वर्षमें कुल ८४ उपवास किये जाते हैं। एक वर्ष व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन करना चाहिए।

द्विकावलीव्रतमें दो दिन लगातार उपवास करना पड़ता है। इस व्रतके लिए भी दो उपवासोंका दिन ग्रहण किया गया है। श्रावण कृष्ण पक्षमें चतुर्थी-पंचमी, अष्टमी नवमी और चतुर्दशी अमावास्या तथा शुक्लपक्षमें प्रतिपदा द्वितीया, पंचमी-षष्ठी, अष्टमी-नवमी और चतुर्दशी-पूर्णिमा इस प्रकार कुल सात उपवास करने चाहिए। भाद्रपद आदि मासोंमें भी उन तिथियोंमें ही व्रत करना चाहिए। एक वर्षमें कुल ८४ उपवास किये जाते हैं। प्रत्येक उपवास दो दिनोंका होता है।

इन दैवसिक व्रतोंके लिए सूर्योदय कालमें कमसे कम छः घटी तिथि का रहना आवश्यक है। जैसे किसीको रत्नावलीव्रत करना है, इस व्रत का प्रथम उपवास श्रावण कृष्ण द्वितीयाको करना पड़ता है। यदि शनि वारको द्वितीया तिथि छः घटीसे अल्प हो तो यह व्रत शुक्रवारको किया जायगा। इसी प्रकार अन्य व्रतोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिए।

आकाशपंचमीव्रत भाद्रपद शुक्ला पंचमीको किया जाता है। चतुर्थीको एकाशन कर पंचमीको व्रत रखना चाहिए। रात णमोकार मन्त्रका जप करते हुए, स्तोत्र पढ़ते हुए, शास्त्र स्वाध्याय करते हुए बिताना चाहिए। रातको जागकर बिताना आवश्यक है। खुले मैदानमें रातको पद्मासन लगाकर ध्यान करना चाहिए। इस व्रतके दिन रात आकाशकी ओर देखते हुए बिताया जाता है।

भाद्रपद कृष्णा षष्ठीको चन्दनषष्ठीव्रत किया जाता है। इस दिन प्रोषधोपवास करते हुए रात जागरण करना पड़ता है। चन्दनषष्ठी व्रतमें रातको विशेष क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। खड़े होकर पंच परमेष्ठीका ध्यान करते हुए रात बितानेका इस व्रतमें विधान है। रात्रिकी क्रियाओंकी विशेषता होनेके कारण ये व्रत नैशिक कहलाते हैं।

---

१ यां तिथिं समनुप्राप्य यात्यस्तं पद्मिनीपतिः।
सा तिथिस्तद्दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्तैव या भवेत्॥
यां प्राप्यास्तमुदेत्यर्कः सा चेत् स्यात्त्रिमुहूर्तगा।
धर्मकृत्येषु सर्वेषु सम्पूर्णां तां विदुर्बुधाः॥ —निर्णयसिन्धु पृ० १२

पर्यन्त व्रत करते रहना चाहिए। जैसे अष्टाह्निका व्रत अष्टमीसे आरम्भ होकर पूर्णिमाको समाप्त होता है, इन आठ दिनोंके मध्यमें दशमी तिथिका अभाव है, अतः यहाँ आठ दिनके बदले सात ही दिन व्रत करना पड़ेगा। ऐसी अवस्थामें मध्यमें तिथिके ह्रास होनेपर सप्तमीसे ही व्रतारम्भ किया जायगा। इसी प्रकार दशलाक्षणिकव्रतके दिनोंमें भी यदि तिथिका अभाव हो तो पञ्चमीके बदले चतुर्थीसे ही व्रत आरम्भ करने चाहिए। क्योंकि पर्यूषण पर्वका आरम्भ भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीसे लेकर भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी तक माना जाता है। यह दशलक्षणव्रत दस दिनों तक किया जाता है, यदि इसमें किसी तिथिकी हानि होनेसे दिन संख्या कम हो तो यह व्रत चतुर्थीसे ही कर लिया जायगा। हाँ, जिन्हें पञ्चमी, अष्टमी, चतुर्दशी आदिका व्रत करना होगा, उन्हें तो इन तिथियोंके अनन्तर ही करना होगा।

इस नियम—तिथिका अभाव होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिये—से इतनी विशेषता है कि यह सर्वत्र लागू नहीं होता। नियत अवधिवाले दैवसिक और नैशिक व्रतोंमें ही लागू होता है। मासिक व्रत मेघमाला और षोडशकारण आदिमें नहीं लगता है। जैसे षोडशकारणव्रत प्रतिपदासे आरम्भ होकर सोलह उपवास और पन्द्रह पारणाएँ, इस प्रकार इकतीस दिनतक करनेके उपरान्त प्रतिपदाको समाप्त होता है। इस व्रतमें तीन प्रतिपदाएँ पड़ती हैं—पहली भाद्रपद कृष्णपक्षकी, द्वितीय भाद्रपद शुक्लपक्षकी और तृतीय आश्विन कृष्णपक्षकी। यदि पहली प्रतिपदा—भाद्रपद कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर तीसरी प्रतिपदा—आश्विन कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तक किसी तिथिकी हानि होनेसे दिन संख्या कम हो तो भी प्रतिपदासे आरम्भ कर तीसरी प्रतिपदा अर्थात् भाद्रपद कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे आरम्भ कर आश्विन मासकी कृष्ण प्रतिपदातक व्रत करना चाहिए। यहाँ तीनों प्रतिपदाओंके ग्रहण करनेका विधान किया गया है। मासिक व्रतोंमें दूसरे महीनेके दिन ग्रहण नहीं किये जा सकते हैं। भाद्रपदसे आरम्भ होनेवाला व्रत

श्रावणमें आरम्भ नहीं किया जा सकता है। ऐसा करनेसे व्रत हानि है, और व्रत करनेवालेको फल नहीं मिलता।

विवेचन—पर्व व्रतोंके अतिरिक्त नियत अवधिवाले भी व्रत होते हैं। पर्व व्रतोंके लिए आचार्यने तिथिका प्रमाण छ घटी निर्धारित किया है, जिस दिन छ घटी प्रमाण व्रत तिथि होगी, उसी दिन व्रत किया जायगा। नियत अवधियाले व्रतोंके लिए यह निश्चय करना है कि व्रतकी निश्चित अवधिके भीतर यदि कोई तिथि नष्ट—क्षय हो जाय तो कब व्रत करना चाहिए। क्योंकि तिथि क्षय हो जानसे नियत अवधिमें एक दिन घट जायगा, पूरे दिन व्रत नहीं किया जा सकेगा। ऐसी अवस्थामें व्रत करनेके लिए क्या व्यवस्था करनी होगी? आचार्यने इसके लिए नियम बनाया है कि नियत अवधिवाले दशलाक्षणिक व्रत और अष्टाह्निक व्रतों के लिए बीचमें किसी तिथिका क्षय होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए, जिससे व्रत दिनोंकी संख्या कम न हो सके।

ज्योतिषशास्त्रमें व्रतोंके लिए तिथियोंका प्रमाण निश्चित किया गया है। यद्यपि व्रतोंके लिए तिथियोंका प्रतिपादन करना आचारशास्त्रका विषय है, परन्तु उन तिथियोंका समय निर्धारित करना ज्योतिषशास्त्रका विषय है। प्राचीनकालमें प्रधान रूपसे ज्योतिषशास्त्रका उपयोग तिथि और समय निर्णयके लिए ही किया जाता था। इस शास्त्रका उत्तरोत्तर विकास भी कर्त्तव्य कर्मोंके समय निर्धारणके लिए ही हुआ है। उदय प्रभसूरि, वसुनन्दि आचार्य और रत्नशेखरसूरिने शुभाशुभ समयका निर्धारण करते हुए बताया है कि व्रतोंके लिए प्रतिपादित तिथियोंको यथार्थरूपसे व्रतके समयोंमें ही ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा असमयमें किये गये व्रतोंका फल विपरीत होता है। जो श्रावक नैमित्तिक व्रतोंका पालन करता है, वह अपने कर्मोंकी निर्जरा असमयमें ही कर लेता है। समस्त आरम्भ और परिग्रह छोड़नेमें असमर्थ गृहस्थको अपनी समाधि सिद्ध करनेके लिए नित्य नैमित्तिक व्रतोंका पालन अवश्य करना चाहिए।

अष्टाह्निका और दशलक्षणी व्रतके लिए जो नियम बताया गया है

करना चाहिए। उदाहरण—किसीको चतुर्दशीका एकाशन करना है, इस दिन रविवारको चतुर्दशी २३ घटी ४० पल है और दिनमान ३२ घटी ३० पल है। क्या रविवारको चतुर्दशीका एकाशन किया जा सकता है? दिनमान ३२।३० में पाँचका भाग दिया—३२।३०—५=६।३० इसको तीनसे गुणा किया—६।३०×३=१९।३० गुणनफल हुआ। मध्याह्नकाल-का प्रमाण गणितकी दृष्टिसे १९।३० घट्यादि हुआ। तिथिका प्रमाण २३।४० घट्यादि है। यहाँ मध्याह्न कालके प्रमाणसे तिथिका प्रमाण अधिक है अर्थात् तिथि मध्याह्न कालके पश्चात् भी रहती है, अत एकाशनके लिए इसे ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् चतुर्दशीका एकाशन रविवारको किया जा सकता है। क्योंकि रविवारको मध्याह्नमें चतुर्दशी तिथि रहती है।

दूसरा उदाहरण—मंगलवारको अष्टमी ७ घटी १० पल है, दिन-मान ३२।३० पल है। एकाशन करनेवालेको क्या इस अष्टमीको एकाशन करना चाहिए? पूर्वोक्त गणितके नियमानुसार ३२।३०—५ = ६।३० इसको तीनसे गुणा किया तो—६।३०×३ = १९।३० घट्यादि गुणन-फल आया, यही गणितागत मध्याह्नकालका प्रमाण हुआ। तिथिका प्रमाण ७ घटी १० पल है, यह मध्याह्नकालके प्रमाणसे अल्प है, अत मध्याह्नकालमें मंगलवारको अष्टमी तिथि एकाशनके लिए ग्रहण नहीं की जायगी, क्योंकि मध्याह्नकालमें इसका अभाव है। अत अष्टमीका एका-शन सोमवारको करना होगा।

एकाशन करनेके तिथि प्रमाणमें और प्रोषधोपवासके तिथि प्रमाणमें बड़ा भारी अन्तर आता है। प्रोषधोपवासके लिए मंगलवारको अष्टमी तिथि ७।३० होनेके कारण ग्राह्य है। क्योंकि छ घटीसे अधिक प्रमाण है, अत उपवास करनेवाला मंगलको व्रत करे और एकाशन करनेवाला सोमवारको व्रत करे, यह आगमकी दृष्टिसे अनुचित-सा प्रतीत होता है। जैनाचार्योंने इस विवादको बड़े सुन्दर ढंगसे सुलझाया है। मूलसंघके आचार्योंने एकाशन और उपवास दोनोंके लिए ही कुलाद्रि—छ घटी

प्रमाण तिथि ही ग्राह्य बतायी है। आचार्य सिंहनन्दिका मत है कि एकाशनके लिए विवादस्थ तिथिका विचार न कर छः घटी प्रमाण तिथि ही ग्रहण करनी चाहिए। सिंहनन्दिने एकाशनकी तिथिका विस्तार रूपसे विचार किया है, इन्होंने अनेक उदाहरण और प्रति उदाहरणोंके द्वारा मध्याह्नव्यापिनी तिथिका खण्डन करते हुए छः घटी प्रमाणका ही सिद्ध किया है। अतएव एकाशनके लिए पर्वतिथियोंमें छः घटी प्रमाण तिथियों को ही ग्रहण करना चाहिए।

'तिथिर्यथोपवासे स्यादेकभक्तेऽपि सा तथा' इस प्रकारका आदेश रत्नशेखर सूरिने भी दिया है। जैनाचार्योंने एकाशनकी तिथिके सम्बन्धमें बहुत कुछ ऊहापोह किया है। गणितसे भी कई प्रकारसे मान घन किया है। प्राकृत ज्योतिषके तिथि विचार प्रकरणमें विचार-विनिमय करते हुए बताया है कि सूर्योदयकालमें तिथिके अल्प होने पर मध्याह्नमें उत्तर तिथि रहगी। परन्तु एकाशनके लिए दसघटी प्रमाण होनेसे पूर्व तिथि ग्रहण की जा सकती है। यदि पूर्व तिथि दसघटी[1] प्रमाणसे अल्प है तो उत्तर तिथि लेनी चाहिए। यद्यपि उत्तर तिथि मध्याह्नमें व्याप्त है, पर कुल्यादि[2] घटिका प्रमाणसे अल्प होनेके कारण उत्तरतिथि ही व्रत तिथि है। अतएव संक्षेपमें उपवास तिथि और एकाशन तिथि दोनों एक ही प्रमाण ग्रहण की गयी है। यद्यपि जैनेतर ज्योतिषमें एकाशन-तिथि को व्रत तिथिसे भिन्न माना है, तथा गणित द्वारा अनेक प्रकारसे उसका मान निकाला गया है, परन्तु जैनाचार्योंने इस विवादको यहीं समाप्त कर दिया है। इन्होंने उपवास तिथिको ही व्रततिथि बतलाया है। एकाशनकी पारणा मध्याह्नमें एक बजेके उपरान्त करनेका विधान किया गया है। यद्यपि काष्ठासंघ और मूलसंघ पारणाके सम्बन्धमें थोड़ा सा मतभेद है, फिर भी दोपहरके बाद पारणा करनेका उदयत विधान है।

---

१ छः घटी प्रमाण।

२ छः घटी प्रमाण—पद कुलाचल होनेसे।

षोडशकारण और मेघमाला व्रतका विशेष विचार

नहि व्रतहानि, यथ पूर्वे प्रति षष्ठोपवासकार्यो भवति एका धारणा भवति न तु भावनोपवासहानिर्भवति प्रतिपदिन मारभ्य तदन्त क्रियते व्रतं एतद्व्रत त्रिप्रतिपत्कथितम्, मासिकेषु च वचनात्। तथा श्रुतसागरसकलकीर्तिकृतिदामोदरा भ्रदेवादिकथावचनाच्चेति। ननु पूर्णिमा ग्राह्या भवति। अत्र केषाञ्चिद् बलात्कारिणा मत षोडशकारणनियमे तिथिहानौ वापि अधिके च मूल आदिदिन न ग्राह्य षोडशदिवसाधिकत्वाच्चेति विशेष। एतावानपि विशेषश्च प्रतिपदमाधारभ्य आश्विनप्रतिपत्पर्यन्त तिथिक्षयाभावेन कृते षष्ठद्वयेन चैकत्रिंशद्दिने पाक्षिकेऽप्येव समाप्ति। सप्तदशोपवासेन पूर्णाभिषेकेन स्यादेव सोपवासो महाभिषेक कुर्यात्। यदा तु तिथिहानिस्तदा षष्ठकारणमारभ्य प्रतिपद्येव पूर्णाभिषेक, नापरदिने तथोक्त षोडशकारणवारिदमालारत्नत्रयादीना पूर्णाभिषेके प्रतिपत्तिथिरपि नापरा ग्राह्येति वचनात् अपरा द्वितीया न ग्राह्येति।

अर्थ—षोडशकारण व्रतके दिनोंमें एक तिथिकी हानि होने पर भी एक दिन पहलेसे व्रत नहीं किया जाता है। इससे व्रतहानिकी आशका भी उत्पन्न नहीं होती है। तिथिकी हानि होनेपर दो उपवास लगातार पड जाते है, बीचवाली पारणा नहीं होती है। एक दिन पहले व्रत न करनेसे भावना—षोडशकारण भावनाओंमेसे किसी एक भावनाकी तथा उपवासकी हानि नहीं होती है, क्योंकि प्रतिपदासे लेकर प्रतिपदा पर्यन्त ही व्रत करनेका विधान है, इसमें तीन प्रतिपदाओंका होना आवश्यक है, क्योंकि इस व्रतको मासिक व्रत कहा गया है। अत इसमें तिथिकी अपेक्षा मासकी अवधिका विचार करना अधिक आवश्यक है। श्रतसागर, सकलकीर्ति, कृतिदामोदर और उग्रदेव आदि आचार्योंके वचनाके अनुसार तिथि हानि होनेपर भी पूर्णमासी व्रतके लिए कभी भी ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

यहाँपर कोई बलात्कारगणके आचार्य कहते हैं कि सोलहकारण व्रतके दिनोंमें तिथि हानि होनेपर अथवा तिथि वृद्धि होनेपर आदि दिवस भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदाको व्रतके लिए नहीं ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सोलह दिनस अधिक या कम उपवासके दिन हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि बलात्कारगणके कुछ आचार्य सोलह कारण व्रतके दिनोंमें तिथि क्षय या तिथिवृद्धि होनेपर पूर्णिमा या द्वितीयासे व्रतारम्भ करनेकी सलाह देते हैं। परन्तु इतनी विशेषता है कि तिथि हानि या तिथि-वृद्धि न होनेपर प्रतिपदासे व्रत आरम्भ होता है और आश्विन कृष्ण प्रतिपदातक इकतीस दिन पर्यन्त यह व्रत किया जाता है। इस व्रतकी समाप्ति तीन पक्षमें ही करनी चाहिए। जब तिथिकी हानि नहीं हो तो सोलह उपवास और अभिषेक पूर्ण करनेके पश्चात् सत्रहवें उपवास अर्थात् तृतीयाके दिन महाभिषेक करे। परन्तु जब तिथि हानि हो तो प्रतिपदाके दिन ही पूर्ण अभिषेक करना चाहिए, अन्य दिन नहीं। कुछ आचार्योंका मत है कि षोडशकारण, मेघमाला, रत्नत्रय आदि व्रतोंके पूर्ण अभिषेकके लिए प्रतिपदा तिथि ही ग्रहण की गयी है, अन्य तिथि नहीं। इन व्रतोंका पूर्ण अभिषेक प्रतिपदाको ही होना चाहिए, द्वितीयाको नहीं। तात्पर्य यह है कि षोडशकारण व्रतमें तिथिक्षय या तिथिवृद्धि होनेपर प्रतिपदा तिथि ही महाभिषेकके लिए ग्राह्य है। इस व्रतका आरम्भ भी प्रतिपदासे करना चाहिए और समाप्ति भी प्रतिपदाको, उपवास करनेके पश्चात् द्वितीयाको पारणा करनेपर।

विवेचन—सोलहकारण व्रतके दिनोंके निर्णयके लिए दो मत हैं—श्रुतसागर, सकलकीर्त्ति आदि आचार्योंका प्रथम मत तथा बलात्कार गणके आचार्योंका दूसरा मत। प्रथम मतके प्रतिपादक आचार्योंने तिथि हानि या तिथि वृद्धि होनेपर प्रतिपदासे लेकर प्रतिपदा तक ही व्रत करनेका विधान किया है। दिन सख्या प्रतिपदासे आरम्भ की गयी है, यदि आश्विन कृष्णा प्रतिपदा तक कोई तिथि बढ़ जाय तो एक दिन या दो दिन अधिक व्रत किया जा सकेगा, तिथियोंके घट जानेपर एक या

दो दिन कम भी व्रत किया जाता है। यह बात नहीं है कि एक तिथिके घट जाने पर प्रतिपदाके स्थानमें पूर्णिमासे ही व्रत कर लिया जाय। व्रतारम्भके लिए नियम बतलाया है कि प्रथम उपवासके दिन प्रतिपदा तिथिका होना आवश्यक है, तथा व्रतकी समाप्ति भी प्रतिपदाके दिन ही होती है।

षोडशकारण व्रतकी मासिक व्रतोंमें गणना की गयी है, अतः इसमें एक या दो दिन पहले आरम्भ करनेकी बात नहीं उठती है। जो लोग यह आशंका करते हैं कि तिथिके घट जाने पर उपवास और भावनामें हानि आयेगी, उनकी यह शंका निर्मूल है। क्योंकि यह व्रत मासिक बताया गया है, अतः प्रतिपदासे आरम्भ कर प्रतिपदामें ही इसकी समाप्ति हो जाती है। तिथिके क्षय होनेपर दो दिनतक लगातार उपवास पड़ सकता है तथा दो दिनके स्थानमें एक ही दिन भावना की जायगी।

बलात्कारगणके आचार्य तिथिवृद्धि और तिथिहानि दोनोंको महत्त्व देते हैं, उनका कहना है कि नियत अवधिसूचक सोलहकारण व्रत होनेके कारण इसकी दिन-संख्या इकतीस ही होनी चाहिए। यदि कभी तिथि हानि हो तो एक दिन पहले और तिथिवृद्धि हो तो एक दिन पश्चात् अर्थात् पूर्णमासी और द्वितीयासे व्रतारम्भ करना चाहिए। इन आचार्यों की दृष्टिमें प्रतिपदाका महत्त्व नहीं है। इनका कथन है कि यदि प्रतिपदाको महत्त्व देते हैं तो उपवास-संख्या हीनाधिक हो जाती है। तिथि हानि होनेपर सोलह उपवासके स्थानमें पन्द्रह उपवास करने पड़ेंगे तथा तिथिवृद्धि होनेपर सोलहके बदले सत्रह उपवास करने पड़ेंगे। अतः उपवास संख्याको स्थिर रखनेके लिए एक दिन आगे या पीछे व्रत करना आवश्यक है। इन आचार्योंने व्रतकी समाप्ति प्रतिपदाको ही मानी है तथा इसी दिन सोलहवाँ अभिषेक पूर्ण करने पर ज़ोर दिया है। कुछ आचार्य प्रतिपदाके उपवासके अनन्तर द्वितीयाको पारणा तथा तृतीयाको पुनः उपवास कर महाभिषेक करनेका विधान बताते हैं। बलात्कारगणके आचार्य इस विषय पर सभी एक मत हैं कि व्रतकी समाप्ति प्रतिपदा

को होनी चाहिए। व्रतारम्भ करनेके दिनके सम्बन्धमें विवाद है, कुछ पूर्णिमासे व्रतारम्भ करनेको कहते हैं, कुछ प्रतिपदासे और कुछ द्वितीयासे।

उपर्युक्त दोनों ही मतोंका समीकरण एवं समन्वय करनेपर प्रतीत होता है कि बलात्कारगण, सेनगण, पुन्नाटगण और काणूरगणके आचार्यों ने प्रधान रूपसे सोलहकारण व्रतमें तिथिह्रास और तिथिवृद्धिको महत्त्व नहीं दिया है। अतएव इस व्रतको सर्वदा भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे आरम्भ कर आश्विनकृष्णा प्रतिपदाको समाप्त करना चाहिए। इसके प्रारम्भ और समाप्ति दोनोंमें ही प्रतिपदाका रहना आवश्यक माना है। प्रथम अभिषेक भी प्रतिपदाको प्रथम उपवासपूर्वक किया जाता है, पारणाके दिन अभिषेक नहीं किया जाता। अन्तिम सोलहवें उपवासके दिन सोलहवाँ अभिषेक किया जाता है। सत्रहवाँ अभिषेक कर द्वितीयाको पारणा करनेका विधान है।

मेघमाला व्रत करनेकी तिथियाँ और विधि

मेघमाला व्रतके पूर्ण अभिषेकके लिए भी प्रतिपदा तिथि ही ग्रहण की गयी। यह व्रत भी ३१ दिनतक किया जाता है। इसका प्रारम्भ भी भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे होता है और व्रतकी समाप्ति भी आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको बतायी गयी है। मेघमाला व्रतमें सात उपवास और चौबीस एकाशन किये जाते हैं। प्रथम उपवास भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदाको, द्वितीय भाद्रपद कृष्णा अष्टमीको, तृतीय भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशीको, चतुर्थ भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदाको, पञ्चम भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको, षष्ठ भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको और सप्तम आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको करनेका विधान है। शेष दिनोंमें चौबीस एकाशन करने चाहिए। पाँच वर्षतक पालन करनेके उपरान्त इस व्रतका उद्यापन किया जाता है। जितने उपवास बताये गये हैं उतने ही अभिषेक किये जाते हैं तथा उपवासके दिन रात जागरण पूर्वक बितायी जाती है और अभिषेक भी उपवास की तिथिको ही किया जाता है। इस व्रतमें ३१ दिनतक ब्रह्मचर्य व्रतका

पालन तथा संयम धारण किया जाता है। संयम और ब्रह्मचर्य धारण श्रावण शुक्ला चतुर्दशीसे आरम्भ होता है तथा आश्विन कृष्णा द्वितीयातक पालन किया जाता है। इस व्रतकी सफलताके लिए संयमका आवश्यक माना गया है।

मेघपंक्ति आकाशमें आच्छन्न हो तो पञ्चस्तोत्र पाठ करना चाहिए। इस व्रतका नाम मेघमाला इसीलिए पड़ा है कि इसमें सात उपवास उन्हीं दिनोंमें करनेका विधान है, जिन दिनोंमें ज्योतिषकी दृष्टिसे वर्षा योग आरम्भ होता है अर्थात् वृष्टि होने या मेघोंके आच्छादित होनेसे उक्त व्रतके सातों ही दिन मेघमाला या वर्षायोग सूचक हैं। आचार्योंने इस मेघमाला व्रतका विशेष फल बताया है।

जैनाचार्योंने मेघमाला व्रतका आरम्भ भी तिथिक्षय या तिथि-वृद्धिके होनेपर भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे माना है तथा इसकी समाप्ति भी आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको होती है। इसमें तीन प्रतिपदाओंका विशेष महत्व है, तथा इन तीनोंका प्रमाण भी सोदय दिवस—सूर्योदय कालमें छ घटी प्रमाण तिथिका होना; को ही बताया है। सोलहकारण व्रतके समान तिथिक्षय या तिथिवृद्धिका प्रभाव इसपर नहीं पड़ता है। तिथि-वृद्धिके होनेपर एक उपवास कभी कभी अधिक करना पड़ता है, क्योंकि तीनों प्रतिपदाओंका रहना व्रतमें आवश्यक बतलाया गया है। मेघमाला व्रतके उपवासके दिन मध्याह्नमें पूजापाठ करनेके उपरान्त दो घटी पर्यन्त कायोत्सर्ग करना तथा पञ्चपरमेष्ठीके गुणोंका चिन्तन करना अनिवार्य है। मध्याह्नकालका प्रमाण गणित विधिसे निकालना चाहिए।

दिनमानमें पाँचका भाग देकर तीनसे गुणा कर देनेपर मध्याह्नका प्रमाण आता है। जैसे भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदाके दिन दिनमानका प्रमाण ३१ घटी १५ पल है, इस दिन मध्याह्नका प्रमाण निकालना है अतः गणित क्रिया की—३१।१५ ÷ ५=६।७ इसको तीनसे गुणा किया तो—६।७ × ३=१८।२१ गुणनफल अर्थात् १८ घटी २१ पल मध्याह्नका प्रमाण है। घण्टा मिनटमें यही प्रमाण ७ घंटा २० मिनट २४ सैकिण्ड हुआ

अर्थात् सूर्योदयसे ७ घटी २० मिनट २४ सै० के पश्चात् मध्याह्न है। यदि इस दिन सूर्य ५।२० बजे उदित होता है तो १२ बजकर ५० मिनट २४ सै० से मध्याह्नका आरम्भ माना जायगा। मेघमाला व्रतमें उपवासके दिन ठीक मध्याह्नकालमें सामायिक और कायोत्सर्ग करना चाहिए। मेघमाला व्रतके समान रत्नत्रय व्रतमें भी अभिषेक प्रतिपदाको ही किया जाता है अर्थात् इन दोनों व्रतोंकी समाप्ति प्रतिपदाको होती है।

रत्नत्रय व्रतकी तिथियोंका निर्णय

रत्नत्रयेऽप्येवमवधारणं कार्यं, यतः तस्य तिथिव्रातस्याधिक्यं, अतः यथा व्रतं कार्यं तथा नान्यथा भवति।

अर्थ—रत्नत्रय व्रतको सम्पन्न करनेके लिए यह अवधारण करना चाहिए कि इस व्रतकी तिथि संख्या अधिक नहीं है। अतः इस प्रकार व्रत करना चाहिए, जिससे व्रतमें किसी प्रकारका दोष न आये।

विवेचन—रत्नत्रय व्रत एक वर्षमें तीन बार किया जाता है—भाद्रपद, माघ और चैत्र। यह व्रत उक्त महीनोंके शुक्लपक्षमें ही सम्पन्न होता है। प्रथम शुक्लपक्षकी द्वादशीको एकाशन करना चाहिए। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाको तेला करना चाहिए। पश्चात् प्रतिपदाको एकाशन करना चाहिए। इस प्रकार पाँच दिन तक संयम धारण कर ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना चाहिए। तीन वर्षके उपरान्त इसका उद्यापन करते हैं। यह व्रत करनेकी उत्कृष्ट विधि है। यदि शक्ति न हो तो त्रयोदशी और पूर्णिमाको भी एकाशन किया जा सकता है, परन्तु चतुर्दशीका उपवास करना आवश्यक है। प्रधान रूपसे इस व्रतमें तीन उपवास लगातार करनेका नियम है। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा इन तीनों तिथियोंमें व्रत, पूजन और स्वाध्याय करते हुए उपवास करना चाहिए। अतः इस व्रतके तीन ही दिन बताये गये हैं। एकाशन और संयमके दिन मिलानेसे यह पाँच दिनका हो जाता है।

यदि रत्नत्रय व्रतकी प्रधान तीन तिथियाँ—त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमामेंसे किसी एक तिथिकी हानि हो तो क्या करना चाहिए। क्या

तीन दिनके बदलेमें दो ही दिन उपवास करना चाहिए या एक दिन पहले से उपवासकर व्रतको नियत दिनोंमें पूरा करना चाहिए। सेनगण और बलात्कारगणके आचार्योंने एकमत होकर रत्नत्रय व्रतकी तिथियोंका निश्चय करते हुए कहा है कि तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए। किन्तु इस व्रतके सम्बन्धमें इतना विशेष है कि चतुर्दशीका उपवास रसघटिका प्रमाण चतुर्दशीके होनेपर ही किया जाता है। यदि ऐसा भी अवसर आवे जब उदयकालमें चतुर्दशी तिथि न मिले तो जिस दिन घट्यात्मक मानके हिसाबसे अधिक पड़ती हो, उसी दिन चतुर्दशीका उपवास करना चाहिए। इस व्रतकी समाप्तिके लिए प्रतिपदाका रहना भी आवश्यक माना गया है। जिसदिन प्रतिपदा उदयकाल में छ घटी प्रमाण हो अथवा उदयकालमें छःघटी प्रमाण प्रतिपदाके न मिलनेपर घट्यात्मक रूपसे ज्यादा हो उसी दिन महाभिषेकपूर्वक व्रतकी समाप्ति की जाती है।

आचार्य सिंहनन्दिने रत्नत्रय व्रतकी तिथियोंका निर्णय करते समय स्पष्ट कहा है कि व्रतमें किसी प्रकारका दोष न आवे, इस प्रकारसे व्रत करना चाहिए। तिथि वृद्धि होने पर एक दिन अधिक व्रत करना ही पड़ता है, परन्तु चतुर्दशीके दिन प्रोषधोपवास और प्रतिपदाके दिन अभिषेक करना परमावश्यक बताया गया है। इन दोनों तिथियोंको टलने नहीं देना चाहिए। चतुर्दशीको मध्याह्नमें विशेषरूपसे 'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। मध्याह्नकालका प्रमाण गणितसे लाना चाहिए। यथा चतुर्दशीके दिन दिनमानका प्रमाण २८।२० है, इस दिन सूर्योदय ६।५० मिनट पर होता है। मध्याह्नकाल जाननेके लिए—२८।२०—५=५।१९ इसको तीनसे गुणा किया तो—५।१९ × ३ = १५।५७ इसका घण्टा[1]त्मक मान ६।२२।४८ हुआ, सूर्योदय कालमें जोड़ा तो १ बजकर १२ मिनट ४८ सै० पर मध्याह्नकाल आया।

[1] २½ घटीका एक घण्टा, २½ पलका एक मिनट तथा २½ विपल का एक सैकिण्ड होता है।

मुनिसुव्रत पुराणके आधारपर व्रततिथिका प्रमाण

तदुक्तं मुनिसुव्रतपुराणे—

पञ्चांशोऽप्युदये ग्राह्य तिथिव्रतपरिग्रहे ।
पूर्वमन्यतिथेर्योगो व्रतहानिं करोति च ॥ १ ॥

अस्यार्थ—व्रतपरिग्रहे सूर्योदये तिथे पञ्चांशमपि ग्राह्यं, अत्रापिशब्देन पञ्चांशादधिको ग्राह्य इति निर्विवाद, न न्यूनांश इति चोच्यते कुत यस्मात् व्रतपरिग्रहाणां पञ्चांशात् पूर्वमन्यतिथिसंयोगव्रतहानिकर व्रतनाशकारी भवतीत्यर्थ ॥

अर्थ—व्रत करनेवालोंको सूर्योदयकालमें पचांश तिथिके रहनेपर व्रत करना चाहिए। पचांशसे अधिक तिथि होनेपर तो व्रत किया जा सकता है, पर न्यूनांश होनेपर व्रत नहीं किया जा सकेगा क्योंकि अन्य तिथिका संयोग होनेसे व्रत हानि होती है, व्रतका फल नहीं मिलता है।

इस श्लोकमें अपि शब्द आया है, जिसका अर्थ पचांशसे अधिक तिथि ग्रहण करनेका है अर्थात् पचांशसे अधिक या पचांश मुख्य तिथि उदयकालमें हो तभी व्रत किया जा सकता है। पचांशसे अन्य तिथिके होनेपर व्रत नहीं किया जाता।

विवेचन—आचार्य ग्रन्थान्तरोंके प्रमाण देकर व्रततिथिका निर्णय करते हैं। मुनिसुव्रतपुराणमें बताया गया है कि उदयकालमें पचांश तिथि या पचांशसे अधिक तिथिके होनेपर ही व्रत करना चाहिए। तिथिका मध्यम मान ६० घटी प्रमाण माना जाता है, स्पष्ट मान प्रतिदिन भिन्न भिन्न होता है। स्पष्टमानका पता लगाना ज्योतिषीका ही काम है, साधारण व्यक्तिका नहीं। किन्तु मध्यममान ६० घटी प्रमाण निश्चित है, इसका पचांश दस घटी हुआ, अत यह अर्थ लेना अधिक संगत होगा कि जो तिथि उदयकालमें दस घटी कमसे कम अवश्य हो वही व्रतके लिए उपयुक्त मानी गयी है। दस घटीसे कम प्रमाण तिथिके रहनेपर, उससे पहले दिन व्रत करनेका आदेश दिया है। मुनिसुव्रत पुराणकारका

इससे भी अदय प्रमाण रहनेपर प्रमाण मान ली गयी है। अतएव व्रतके लिए उदयप्रमाण ही तिथि लेनी चाहिये[1]। जैनाचार्योंने इस उदय कालीन तिथिकी मान्यताका ज़ोरदार खण्डन किया है। उन्होंने अपने मतके प्रतिपादनमें अनेक युक्तियाँ दी हैं।

उदयकालीन तिथिको व्रतके लिए सम्पूर्ण माननेमें तीन दोष आते हैं—विद्धा तिथि होनेके कारण दोष, उदयके अनन्तर अल्पकालमें ही तिथिके क्षय हो जानेसे व्रततिथिके प्रमाणका अभाव और निषिद्ध तिथिमें व्रत करनेका दोष। यदि उदयकालमें एक घटी प्रमाण व्रततिथि मान ली जाय तो उदया तिथि होनेके कारण वैष्णवोंमें ग्राह्य मानी जायगी, परन्तु जैनमतके अनुसार इसमें पूर्वोक्त तीनों दोष वर्तमान हैं। यह तिथि सूर्योदयके २४ मिनट बाद ही नष्ट हो जायगी, तथा आगेवाली तिथि सूर्योदयके २४ मिनट बाद आरम्भ हो जायगी। अत व्रत सम्बन्धी धार्मिक अनुष्ठान व्रतवाली तिथिमें नहीं होंगे, बल्कि ये अव्रतिक तिथिमें सम्पन्न किये जायँगे, जिससे असमयमें करनेके कारण उन धार्मिक अनुष्ठानोंका यथोचित फल नहीं मिलेगा। उदाहरणके लिए यों मान लिया जाय कि किसीको अष्टमीका व्रत करना है। मगलवारको अष्टमी एक घटी पन्द्रह पल है अर्थात् सूर्योदयकालमें आधा घण्टा प्रमाण है। यदि सूर्योदय ५ बजकर १५ मिनट पर होता है तो ५ बजकर ४५ मिनट से नवमी तिथि आरम्भ हो जाती है। व्रती सूर्योदय कालमे सामायिक, स्तोत्रपाठ करता है, इन क्रियाओंको उसे कमसे कम ४५ मिनट तक करना चाहिए। सूर्योदय काल में ३० मिनट अष्टमी है, पश्चात् नवमी तिथि है, क्रियाएँ ४५ मिनट तक करनी हैं, अत इनमें पहला दोष विद्ध तिथिमें प्रात कालीन क्रियाओंको करनेका आता है। विद्ध तिथिमें की गयी क्रियाएँ, जो कि व्रतविधिके भीतर परिगणित हैं, व्यर्थ होती हैं। पुण्यके स्थानमें

१ व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैकादि या भवेत्।
उदये सा तिथिग्राह्या विपरीता तु पैतृके ॥
—निर्णयसिंधु पृ० १३

अज्ञानताके कारण पाप बन्धकारक हो जाती है। अत प्रथम दोष विद्ध तिथिमें प्रारम्भिक व्रत सम्बन्धी अनुष्ठानके करनेका है।

दूसरा दोष यह है कि व्रतारम्भ करनेके समय व्रततिथिका प्रभाव क्षीण रहता है, जिससे उपयुक्त उदाहरणमें कल्पित अष्टमी व्रतकी क्रियाओंमें आती ही नहीं। आचार्योंका कथन है कि उदयकालमें कमसे कम दशमांश तिथिके होनेपर ही तिथिका प्रभाव माना जा सकता है। छ घटी प्रमाण उदयकालमें तिथिका मान इसीलिए प्रामाणिक माना गया है कि मध्यम मान तिथिका ६० घटी होता है, इसका दशमांश छ घटी है, अत तिथिका प्रभाव छ घटी है, अत तिथिका प्रमाण छ घटी होने पर पूर्ण माना जाता है। कारण स्पष्ट है कि सूर्योदयके पश्चात् रस घटी प्रमाणवाली तिथि कम-से-कम २३ घट तक रहती है, जिससे प्रारम्भिक धार्मिक कृत्य करनेमें विद्ध तिथि या अव्रतिक तिथिका दोष नहीं आता है। मात्र उदयकालीन तिथि स्वीकार कर लेनेसे व्रतके समस्त कार्य पूजा पाठ, स्वाध्याय आदि अव्रतकी तिथिमें सम्पन्न किये जायेंगे, जिससे व्रत करनेका फल नहीं मिलेगा।

ज्योतिषशास्त्रमें गणित द्वारा तिथिके प्रमाणका साधन किया जाता है। बताया गया है कि दिनमानमें पाँचका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतने प्रमाणके पश्चात् तिथिमें अपना प्रभाव या बल आता है। दिनमानके पञ्चमांशमें अल्पतिथि बिल्कुल निर्बल होती है, यह उस बच्चेके समान है, जिसके हाथ-पैरमें शक्ति नहीं, जो गिरता-पड़ता कार्य करता है। जिसकी वाणी भी अपना व्यवहार सिद्ध करनेमें असमर्थ है और जो सब प्रकारसे अज्ञान है, अत निर्बल तिथिमें व्रतादि कार्य सम्पन्न नहीं किये जा सकते हैं। जो व्यक्ति उदयकालमें रहनेवाली तिथिको ही व्रतके लिए ग्रहण करनेका विधान बतलाते हैं, उनके यहाँ प्रभावशाली या बलवान् तिथि व्रतके लिए हो ही नहीं सकती है। अधिकसे अधिक दिनमान ३३ घटीका हो सकता है और कमसे कम २७ घटीका। ३३ घटीका पञ्चमांश ६ घटी ३६ पल हुआ और २७ घटीका पञ्चमांश ५ घटी २४ पल हुआ।

मान ४३।३२ हुआ।[1] अर्थात् पूर्णिमाका प्रमाण ४३ घटी ३२ पल आया। इस प्रकार प्रतिदिनका स्पष्ट तिथिमान कभी ६० घटीसे अधिक हो जाता है, जिससे एक तिथिकी वृद्धि हो जाती है, क्योंकि अहोरात्र मान ६० घटी ही माना गया है। अतः एक ही तिथि दो दिन भी रह जाती है। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि रविवारको प्रतिपदा का स्पष्टमान ६७।१० आया। रविवारका मान सूर्योदयसे लेकर अगले सूर्योदयके पहले तक अर्थात् ६० होता है, अतः प्रथम दिन ६० घटी तिथि चौबीस घण्टेतक रही, शेष ७ घटी और १० पल प्रमाण प्रतिपदा तिथि अगले दिन अर्थात् सोमवारको रहेगी। शिष्यका प्रश्न तिथि-वृद्धि होनेपर नियत अवधिके व्रतोंकी तिथि संख्या निश्चित करनेके लिए है।

तिथिवृद्धि होनेपर व्रत तिथिकी व्यवस्था

पुनरष्टाह्निकामध्ये तिथिवृद्धिर्यदा भवेत्।
तदा नवदिनानि स्युर्व्रते चाष्टाह्निकार्यके ॥१४॥
सिद्धचक्रस्य मध्ये तु या तिथिर्वृद्धिमाप्नुयात्।
तद्विधिस्तादिका कुर्यादधिकस्याधिकं फलम् ॥१५॥

अर्थ—यदि अष्टाह्निका व्रतकी तिथियोंके बीचमें कोई तिथि बढ़ जाय तो व्रतीको नौ दिन तक अष्टाह्निका व्रत करना चाहिए। सिद्धचक्र—अष्टाह्निका तिथियोंके मध्यमें तिथि बढ़ जाने पर सिद्धचक्र विधान करने-वालेको नौ दिन तक विधान करना चाहिए। क्योंकि अधिक दिन तक करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होती है। अतः तिथिवृद्धि होने पर व्रत एक दिन कम करनेकी आपत्ति नहीं आती है।

विवेचन—नियत अवधिवाले दैवसिक और नैशिक व्रतोंके मध्यमें तिथिक्षय और तिथिवृद्धि होने पर उन व्रतोंके दिनोंकी संख्याको निर्धारित किया है। तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए,

१ ज्योतिर्गणित कौमुदी पृ० ३२, ग्रहलाघव, सूर्यसिद्धान्त तथा तिथि प्रकरण।

किन्तु तिथि-वृद्धि होने पर एक दिन बादरी नहीं किया जाता है। तिथि क्षयमें नियत अवधिमस एक दिन घट जाता है, जिससे दिनसंख्या नियत अवधिमस कम हो जानेके कारण अष्टाह्निका और दशलक्षण जैसे व्रतोंम एक दिन कम हो जानेका दोष आयगा। अष्टाह्निका व्रतके लिए आठ दिन निश्चित हैं तथा यह व्रत शुक्लपक्षमें किया जाता है। तिथि-क्षय होनेपर शुक्लपक्षम ही एक दिन पहलेस व्रत करनेकी गुंजाइश है; क्योंकि अष्टमीके स्थानम सप्तमीस भी व्रत करनेपर शुक्लपक्ष ही रहता है। इसी प्रकार दशलक्षण व्रतमें भी चतुर्थीसे व्रत करने पर शुक्लपक्ष ही माना जायगा। यहाँ एक-दो दिन पहले भी व्रत कर लेनेपर पक्ष या मास बदलनेकी सम्भावना नहीं है। जिस नियत अवधिवाले व्रतम पक्ष या मासके बदलनेकी सम्भावना प्रकट की गयी है, उसमें व्रत निश्चित तिथिस ही आरम्भ किया जाता है। जैस षोडशकारण व्रतके सम्बन्धम पहले कहा गया है कि तिथिके घट जानेपर भी यह व्रत प्रतिपदास ही आरम्भ किया जायगा। तिथिक्षयका प्रभाव इस व्रत पर नहीं पड़ता है और न तिथि वृद्धिका प्रभाव ही कुछ होता है।

तिथि वृद्धि हो जानेपर व्रत एक दिन और अधिक किया जाता है, इसकी दिन संख्या तिथि-वृद्धिके कारण घटती नहीं; बल्कि बढ़ी हुई तिथि म भी व्रत किया जाता है। अष्टाह्निका व्रतकी तिथियोंके बीचम यदि एक तिथि बढ़ जाय तो उस बढ़ी हुई तिथिको भी व्रत करना होगा। तिथि वृद्धिके समय व्रत तिथिका निर्णय यही है कि जिस दिन व्रतारम्भ करनेकी तिथि है, उसी दिन व्रतारम्भ करना चाहिए। बीचम जो तिथि बढ़ती हो, उसका भी व्रत करना पड़ेगा। तिथि-वृद्धिका परिणाम यह होगा कि कभी कभी बेला उपवास कर जाना पड़ेगा। तथा कभी ऐसा भी अवसर आ सकता है, जब दो दिन लगातार पारणा ही की जाय। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि मंगलवारको अष्टमी दिन भर है, बुधवारको भी प्रातःकाल अष्टमी तिथिका प्रमाण ७ घड़ी १३ पल है। यहाँ दो अष्टमियाँ हुई हैं, प्रथम अष्टमी भी पूर्ण है और द्वितीय अष्टमीको भी

सूर्योदयकालमें छ घटी प्रमाण होनेसे व्रतके लिए ग्राह्य माना है, अतः यहाँ व्रत करनेवालेको दोनों अष्टमियोंके उपवास करने पड़ेंगे। नवमीका दिन अष्टाह्निका व्रतमें पारणाका है, यदि दो नवमी पड़ जायँ तो दो दिन लगातार पारणा करनी होगी। कुछ लोग बढ़ी हुई तिथिको उपवास ही करनेका विधान बतलाते हैं। सिद्धचक्र विधानके करनेमें भी वृद्धिगत तिथिको ग्रहण किया गया है अर्थात् आठ दिनोंके स्थानमें नौ दिन तक विधान करना चाहिए। अधिक दिनतक विधान करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होगी। जो लोग यह आशंका करते हैं कि नियत अवधिके अनुष्ठान और व्रतोंमें अवधिका उल्लंघन क्यों किया जाता है? यदि अवधिका उल्लंघन ही अभीष्ट था तो फिर तिथि क्षयके समय अवधि स्थिर रखनेके लिए क्या एक दिन पहलेसे व्रत करनेको कहा?

इस प्रश्नका उत्तर आचार्योंने बहुत विचार विनिमय करनेके उपरान्त दिया है। आचार्य सिंहनन्दिने बताया है कि यों तो समस्त व्रतोंका विधान तिथिके अनुसार ही किया गया है। जिस व्रतके लिए जो विधेय तिथि है, वह व्रत उसी तिथिमें सम्पन्न किया जाता है। परन्तु विशेष परिस्थितिके आ जानेपर मध्यमें तिथिक्षयकी अवस्थामें नियत अवधिवाले व्रतोंकी अवधिको ज्योंकी त्यों स्थिर रखनेके लिए एक दिन पहले करनेका नियम है। तिथिवृद्धिमें विधेय तिथिकी ही प्रधानता रहती है, अतः एक दिनके बढ़ जानेपर भी नियत अवधि ज्योंका त्यों स्थिर रहती है। नियत अवधिके व्रतोंमें अवधिका तात्पर्य वस्तुतः व्रत समाप्तिके दिनसे है। व्रत समाप्ति निश्चित तिथिको ही होगी। उदाहरण—अष्टाह्निका व्रतकी समाप्ति पूर्णिमाको होनी चाहिए। यदि पूर्णिमाका कदाचित् क्षय हो और आगेवाली प्रतिपदा हो तो प्रतिपदाको इस व्रतकी समाप्ति न होकर पूर्णिमाके अभावमें चतुर्दशीको ही इस व्रतकी समाप्ति की जायगी। क्योंकि चतुर्दशीकी छायामें पूर्णिमा अवश्य आ जायगी। सर्वथा तिथिका अभाव कभी नहीं होता है, केवल उदयकालमें तिथिका क्षय दिखलाया

जाता है। जिस तिथिका पञ्चांगमें क्षय लिखा रहता है, वह तिथि भी पहलेवाली तिथिकी छायामें कुछ घटी प्रमाण रहती है। अतएव अष्टाह्निका व्रतकी समाप्ति प्रतिपदाको कभी नहीं की जायगा। पूर्णिमाके अभावमें चतुर्दशी ही ग्राह्य बतायी गयी है, क्योंकि चतुर्दशी आगे आनेवाली पूर्णिमासे विद्ध है।

इसी प्रकार एक तिथि बढ़ जानेपर भी अष्टाह्निका व्रतकी समाप्ति पूर्णिमाको ही होगी। यदि कदाचित् दो पूर्णिमाएँ हो जायँ और दोनों ही पूर्णिमा उदयकालमें छ घटीसे अधिक हों तो किस पूर्णिमाको व्रतकी समाप्ति की जायगी ? प्रथम पूर्णिमाको यदि व्रतकी समाप्ति की जाती है तो आगेवाली पूर्णिमा भी सोदयतिथि होनेके कारण समाप्तिके लिए क्यों नहीं ग्रहण की जाती है ? आचार्य सिंहनन्दिने इसका समाधान 'अधिकस्याधिकं फलम्' कहकर किया है। अर्थात् दूसरी पूर्णिमाको व्रत समाप्त करना चाहिए, क्योंकि दूसरी पूर्णिमा भी छह घटी प्रमाण उदयकालमें होनेसे ग्राह्य है। एक दिन अधिक व्रत कर लेनेसे अधिकही फल मिलेगा। अतएव दो पूर्णिमाओंके होने पर आगेवाला—दूसरी पूर्णिमाको व्रत समाप्त करना चाहिए।

जब दो पूर्णिमाओंके होनेपर पहली पूर्णिमा ६० घटी प्रमाण है और दूसरी पूर्णिमा तीन घटी प्रमाण है, तब क्या दूसरी ही पूर्णिमाको व्रत समाप्त किया जायगा। आचार्यने इस आशंकाका निर्मूलन करते हुए बताया है कि दूसरी पूर्णिमा छ घटीसे कम होनेके कारण व्रतकी पूर्णिमा ही नहीं है, अतः उस तो पारणाके लिए प्रतिपदा तिथिमें परिगणित किया गया है। व्रतकी समाप्ति पहली अवश्यम्भ प्रथम पूर्णिमाको ही कर ली जायगी तथा आगेवाली पूर्णिमा जो कि प्रतिपदासे संयुक्त है, पारणा तिथि मानी जायगी।

जब कभी दो चतुर्दशियाँ अष्टाह्निका व्रतमें पड़ती हैं तो तीन उपवासके पश्चात् प्रतिपदाको पारणा करनेका नियम है। साधारणतया चतुर्दशी और पूर्णिमा इन दोनों तिथियोंका एक उपवास करके उपरान्त

प्रतिपदाको पारणा की जाती है। अष्टाह्निका व्रतका महाभिषेक पूर्णिमाको हो हो जाता है।

या तिथिर्व्रतपूर्णे तु वृद्धिमेति सा यदा।
तस्या नाडीप्रमाणाया पारणा क्रियते व्रती ॥१८॥

अर्थ—व्रतकी समाप्ति होनेपर जो तिथि वृद्धिको प्राप्त होती है, यदि वह एक नाडी—घटी प्रमाण हो तो उसीमें पारणा की जाती है। अभिप्राय यह है कि जब व्रतकी समाप्तिवाली तिथिकी वृद्धि हो तो प्रथम तिथिमें व्रतको समाप्तकर द्वितीय तिथि ६ घटी प्रमाणसे अल्प हो तो उसीमें पारणा करनी चाहिए। यदि ६ घटी प्रमाणसे द्वितीय तिथि अधिक हो या ६ घटी प्रमाण हो तो उसीमें ही व्रतकी समाप्ति करनी चाहिए।

विवेचन—जब व्रत समाप्तिवाली तिथिकी वृद्धि हो तो प्रथम या द्वितीय तिथिको व्रतका पूरा करना चाहिए? इसपर आचार्योंके दो मत हैं—प्रथम मत प्रथम तिथिको व्रतकी समाप्तिकर अगली तिथिके एक घटी प्रमाण रहनेपर पारणा करनेका विधान करता है। दूसरा मत अगली तिथिके ६ घटी या इससे अधिक होनेपर उसीदिन व्रत समाप्ति पर जोर देता है तथा आगे दिन पारणा करनेका विधान करता है। जैनाचार्योंने तिथिवृद्धि होने पर व्रत करनेकी व्यवस्थाका बड़ा सुन्दर विश्लेषण किया है।

गणितज्योतिष व्रतके लिए दो तिथियोंको ग्राह्य नहीं मानता। इसकी दृष्टिमें तिथि घटती ही नहीं है और न कभी तिथिका अभाव होता है। तिथिवृद्धि और तिथिक्षय साधारण व्यक्तियोंको मालूम होते हैं। हाँ यह बात अवश्य है कि दो तिथियाँ परस्परमें विद्ध प्राय रहती हैं। पर तिथि उत्तर तिथिसे संयुक्त तथा उत्तर तिथि पुनरागत पूर्व तिथिसे संयुक्त होता है। व्रतमें पूर्व तिथि उत्तर तिथिसे संयुक्त ग्राह्य की गयी है, उत्तर तिथि पुनरागत पूर्व तिथिसे संयुक्त ग्रहण नहीं की जाती है। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि सोमवारको अष्टमी ७ घटी १०

पर है, पश्चात् नवमी प्रारम्भ हो जाती है। यहाँ अष्टमी पर या पूर्व तिथि है जो नवमीसे संयुक्त है; क्योंकि ७ घटी ३० पलके उपरान्त नवमी तिथिका प्रारम्भ होनेवाला है। यद्यपि पञ्चांगमें नवमी तिथि मंगलवार को ही लिखी मिलेगा; अतः उदयकालमें ही तिथिका प्रमाण लिया जाता है। अथवा यों कहना चाहिए कि पर या पूर्व तिथिका ही तिथ्यादि मान पञ्चांगमें अंकित रहता है, उत्तर तिथिका नहीं। जो तिथि पञ्चांगमें अंकित है वह पर या पूर्व और जो अंकित नहीं है, वह उत्तर कहलाती है। पुनरागत पूर्व तिथि वह है, जो उत्तर तिथिके समाप्त होनेपर अगले दिन आनेवाली हो। जैसे पूर्व उदाहरणमें अष्टमीके उपरान्त नवमी तिथि बतायी गयी है, यदि इसी दिन नवमी भी समाप्त हो जाय और पुनरागत दशमीसे संयुक्त हो तो वह उत्तर तिथि पुनरागत पूर्वतिथिमें संयुक्त कही जाती है। व्रतके लिए यह तिथि त्याज्य है।

तिथितत्त्व नामक ग्रन्थमें बताया गया है कि दो प्रकारकी तिथियाँ होती हैं—परयुक्त और पूर्वयुक्त। व्रत विधिके लिए द्वितीया, एकादशी, अष्टमी, त्रयोदशी और अमावास्या परयुक्त होनेपर ग्राह्य नहीं हैं। अभिप्राय यह है कि इन तिथियोंको व्रतके लिए पूर्व होना चाहिए। जब तक ये तिथियाँ दिनभर नहीं रहेंगी, इनमें प्रतिपादित व्रत नहीं किये जा सकते हैं। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि अष्टमी तिथि यदि उदयकालमें ७ घटी ३० पल है तो परयुक्त होनेके कारण इस दिन व्रत नहीं करना चाहिए। परन्तु जैनाचार्य तिथितत्त्वके इस मतको अप्रामाणिक ठहराते हैं। उनका कथन है कि छः घटी प्रमाण उदयकालमें तिथिके होनेपर, वह विधेय तिथि व्रत के लिए स्वीकार की गयी है।

पुनरप्येषां सेनगणस्य सूरीणां वचनमाह—

मेरुव्रतं विना शेषव्रते येनाधिका तिथिः ।
घस्रैकरसपञ्चोना त्रिविधा तिथिमिष्यति ॥१७॥

अर्थ—व्रत समाप्ति तिथिकी वृद्धि होनेपर व्रतके लिए क्या व्यवस्था करनी चाहिए, इसके लिए सेनगणके अन्य आचार्योंके मतको कहते हैं—

नहीं पड़ता है, क्योंकि यह व्रत लगातार वर्षमें ७ महीने १० दिन तक करना होता है। इसमें तिथिवृद्धि और तिथिक्षय बराबर होते रहनेके कारण दिन संख्यामें बाधा नहीं आती है।

एक अन्य हेतु यह भी है कि मेरुव्रतके करनेमें किसी तिथिका ग्रहण नहीं किया गया है। इस व्रतका तिथिसे कोई सम्बन्ध नहीं है, यह तो एक दिन उपवास, दूसरे दिन पारणा, फिर उपवास, पश्चात् पारणा इस प्रकार चार उपवास और चार पारणाओंके अनन्तर एक बेला—दो दिन तक लगातार उपवास करना पड़ता है। पश्चात् पारणा की जाती है। इस प्रकार उपर्युक्त विधिके अनुसार उपवास और पारणाओंका सम्बन्ध किसी तिथिसे नहीं है। यदि यह सावन दिनसे सम्बन्ध रखता है, इसलिए इस व्रतपर तिथिवृद्धि और तिथिक्षयका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। आचार्यने इसी कारण मेरुव्रतको छोड़ शेष समस्त व्रतोंके सम्बन्धमें विधान बतलाया है कि नियत अवधिवाले व्रतोंकी अन्तिम तिथिके बढ़ने पर पारणाकी तिथि इस प्रकार निकाली जाती है कि वृद्ध तिथि प्रमाणमेंसे एक घटी, छ घटी और चार घटी प्रमाण घटा देने पर जो शेष आवे वही पारणाका समय आता है अर्थात् पारणाके लिए तीन प्रकारकी स्थिति बतलाया है।

तात्पर्य यह है कि यदि वृद्धितिथि अगले दिन छ घटी प्रमाण हो, चार घटी प्रमाण हो अथवा एक घटी प्रमाण हो तो उस दिन व्रत नहीं किया जायगा, किन्तु पारणा की जायगी। यदि वृद्धि तिथि अगले दिन छ घटी प्रमाणसे अधिक है तो उस दिन भी व्रत ही करना पड़ेगा। सेनगणके आचार्योंने एकमतसे स्वीकार किया है कि अगले दिन वृद्धि तिथिका प्रमाण छ घटीसे ऊपर अर्थात् सात घटी होना चाहिए। बीचमें तिथिवृद्धि होनेपर उपवास या एकाशन करना चाहिए। व्रत समाप्ति वाली तिथिके लिए ही यह नियम स्थिर किया गया है।

मेरु व्रतका सम्बन्ध सावन दिनसे है, अतः इसकी समाप्ति या मध्यम तिथियोंकी उदयास्त सज्ञाएँ या तिथियोंकी घटिकाएँ गृहीत नहीं

की गयी है। जिन व्रतोंका सम्बन्ध चान्द्र तिथियोंसे है, उनके लिए तिथि वृद्धि और तिथिक्षय ग्रहण किये जाते हैं। आचार्यने यहाँ पर अन्तिम तिथिकी वृद्धि होनेपर उसकी व्यवस्था बतलायी है।

मेरु व्रतकी विधि—प्रथम मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनामें 'ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिषोडशजिनालयेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप त्रिकाल करना चाहिए। द्वितीय मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनोंमें 'ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिषोडशजिनालयेभ्यो नमः', तृतीय मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनोंमें 'ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धिषोडशजिनालयेभ्यो नमः' चतुर्थ मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनामें 'ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धिषोडश जिनालयेभ्यो नमः' और पंचम मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनोंमें 'ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धिषोडशजिनालयेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए।

पारणाके दिनोंमें एक अनाजका ही प्रयोग करना चाहिए। फलोंमें सेव, नारियल, आम, नारंगी, मौसम्मीका उपयोग कर सकते हैं। रात्रि जागरण करना भी आवश्यक है। व्रतके दिनोंमें भगवानकी पूजा करनी चाहिए। पंचमेरुकी पूजाके साथ त्रिकाल-चौबीसी, विद्यमान विंशति तीर्थंकर और पंचपरमेष्ठी पूजा करनी चाहिए। शीलव्रतका पालन भी आवश्यक है।

इस व्रतका फल—लौकिक और पारलौकिक अभ्युदयकी प्राप्तिके साथ स्वर्गसुख और विदेहमें जन्म होता है। तीन-चार भवमें जीव निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

व्रत तिथिके प्रमाणके सम्बन्धमें विभिन्न आचार्योंके मत

कर्णाटकप्रान्ते रविमितघटी तिथि ग्राह्या। मूलसंघे रस घटी तिथिग्राह्या। जिनसेनवाक्यत काष्ठासंघे त्रिमुहूर्त्तात्मिका तिथिर्ग्राह्या तिथिर्गृहीता यत्पलहीन द्विघटीमित मुहूर्त्तमित्युच्यते॥

अर्थ—कर्णाटक प्रान्तमें बारह घटी प्रमाण व्रतके लिए तिथि ग्रहण की गयी है। मूल संघके आचार्योंने ६ घटी प्रमाण व्रततिथिको कहा है। जिनसेनाचार्यके वचनोंसे काष्ठासंघमें तीन मुहूर्त्त प्रमाण तिथिका मान ग्रहण किया गया है। आठ पल हीन दो घटी अर्थात् एक घटी बावन पलका एक मुहूर्त्त होता है।

विवेचन—व्रत तिथिका प्रमाण निश्चित करनेके सम्बन्धमें जैनाचार्योंमें भी मतभेद है। भिन्न भिन्न देशोंके अनुसार व्रतके लिए तिथिका प्रमाण भिन्न भिन्न माना गया है। कर्णाटक प्रान्तमें बारह घटी व्रत तिथिके होनेपर ही व्रतके लिए तिथि ग्राह्य बतायी गयी है। श्रीधराचार्यने अपनी ज्योतिर्ज्ञान विधिमें व्रत तिथिका विचार करते हुए कहा है कि जो तिथि अपने सम्पूर्ण प्रमाणके पञ्चमांश हो वही व्रतके लिए ग्राह्य होती है। श्रीधराचार्यके उक्त मतपर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि बारह घटी प्रमाण तिथिका मान मध्यम तिथिके हिसाबसे लिया गया है। दक्षिण भारतमें जैनेतर विद्वानोंमें भी श्रीधराचार्यके मतका आदर है।

जब मध्यम तिथिका मान साठ घटी मान लिया जाता है, उस समय पञ्चमांश बारह घटी ही आता है, किन्तु स्पष्ट मान बारह घटी शायद ही कभी आवेगा। गणितकी दृष्टिसे स्पष्ट मान निम्न प्रकार लाना चाहिए। उदाहरण—गुरुवारको पञ्चमी १५ घटी २० पल है तथा बुधवारको चतुर्थी १८ घटी ३० पल है। यहाँ पञ्चमीका कुल मान निकालकर यह निश्चय करना है कि गुरुवारको पञ्चमी श्रीधराचार्यके मतसे ग्राह्य हो सकती है या नहीं? तिथिका कुल मान तभी मालूम हो सकता है जब एक तिथिके अन्तसे लेकर अहोरात्र पर्यन्त जितना मान हो उसे पञ्चाग अंकित तिथि मानमें जोड़ दिया जाय। यहाँ पर पञ्चमीका मान निकालना है, बुधवारको चतुर्थीकी समाप्ति १८।३० के उपरान्त हो जाती है, अर्थात् पञ्चमी तिथि बुधवारको सूर्योदयके १८।३० घट्यात्मक मानके उपरान्त आरम्भ हो गयी है। अतः बुधवारको पञ्चमीका प्रमाण =

(६०।०) – (१८।३०) = (अहोरात्र—वर्तमान तिथि) = ४१।३० घट्यादि मान बुधवारको पञ्चमीका हुआ । गुरुवारको पञ्चमी १५ घटी २० पल है, अत दोनों मानोंको जोड़ देने पर पञ्चमी तिथिका कुल प्रमाण निकल आयगा । (४१।३०)+(१५।२०) = ५६।५० । इसका पञ्चमांश निकाला तो ५६।५० ÷ ५ = ११।२२ अर्थात् ११ घटी २२ पल प्रमाण यदि सूर्योदय कालमें पञ्चमी होगी, तभी व्रतके लिए ग्राह्य मानी जा सकेगी । परन्तु हमारे उदाहरणमें १५ घटी २० पल प्रमाण गुरुवारको पञ्चमी उदयकालमें बतायी गयी है, जो कि गणितसे आये हुए पञ्चमांश से ज्यादा है । अत गुरुवारको पञ्चमीका व्रत किया जायगा । मुनिसुव्रत पुराणकारने व्रतकी तिथिका मान कुल तिथिका पष्ठांश स्वीकार किया है । दक्षिण भारतके कर्णाटक प्रान्तमें पञ्चमांश प्रमाण तिथि, तमिल प्रान्तमें षष्ठांश प्रमाण तिथि एव तैलगु प्रान्तमें त्रिमुहूर्तात्मिका तिथि व्रतके लिए ग्रहणकी गयी है । उत्तर भारतमें प्राय सर्वत्र रसघटी प्रमाण तिथि ही व्रतके लिए ग्राह्य मानी गयी है ।

मूलसघ और सेनगणके आचार्य तिथि प्रभाव और तिथि शक्तिकी अपेक्षा छ घटी प्रमाण तिथि ही व्रतके लिए ग्रहण करते हैं । काशी, कोशल, मगध एव अवन्ति आदि समस्त उत्तर भारतके प्रदेशोंमें मूल सघका ही मत तिथिके लिए ग्राह्य माना जाता था । काष्ठा सघके प्रधान आचार्य जिनसेन हैं, इन्होंने व्रतकी तिथिका प्रमाण तीन मुहूर्त अर्थात् ५ घटी ३६ पल बतलाया है । हस्तिनापुर, मथुरा और कोशल देशोंमें प्राचीनकालमें इस मतका प्रचार था । मूलसघ और काष्ठासघके व्रततिथि प्रमाणमें कोई विशेष अन्तर नहीं । मात्र चौबीस पलका अन्तर है, जो कि मध्यम और स्पष्ट मानके अन्तरसे हो सकता है । यहाँ सभी मतोंका समन्वय करनेपर स्पष्ट प्रतीत होता है कि व्रत करनेके लिए तिथिका प्रमाण छ घटीसे ज्यादा होना चाहिए । सेनगणके कतिपय आचार्योंने इसी कारण व्रत तिथिका मान तीन मुहूर्त्तसे लेकर छ मुहूर्त्त तक बतलाया है ।

तीन मुहूर्त्त प्रमाण तिथि लेकर व्रत करनेसे जघन्य फल, चार मुहूर्त्त

प्रमाण तिथिमें व्रत करनेसे मध्यम फल एवं छ मुहूर्त्त प्रमाण तिथिमें व्रत करनेसे उत्तम फल मिलता है। तीन मुहूर्त्तसे अल्पप्रमाण तिथिमें व्रत करनेसे व्रत निष्फल हो जाता है। निर्णयसिन्धुमें हेमाद्रि मतका निरूपण करते हुए बताया गया है कि विवाद उपस्थित होनेपर व्रतके लिए तिथिका प्रमाण समम्न पूर्वाह्णव्यापी लेना चाहिए। पूर्वाह्णका प्रमाण गणितसे निकालते हुए बताया है कि दिनमानमें पाँचका भाग देकर जो लब्ध आवे, उसे दोसे गुणा करनेपर पूर्वाह्णकालका मान आता है। उदाहरण दिनमान बुधवारको २८ घटी ४० पल है तथा चतुर्दशी तिथि इस दिन ६ घटी ७ पल है, क्या यह तिथि पूर्वाह्णव्यापी है? इसे व्रतके लिए ग्रहण करना चाहिए?

दिनमान २८।४० में पाँचका भाग दिया तो—२८।४० ÷ ५ = ५।४४। इसको दोसे गुणा किया तो—५।४४ × २ = ११।२८ घटी तक पूर्वाह्ण माना जायगा। जो तिथि पूर्वाह्णव्यापिनी नहीं होगी, वह व्रतके लिए ग्राह्य नहीं हो सकती। अतः बुधवारको चतुर्दशी व्रतकी तिथि नहीं मानी जा सकती है, क्योंकि इसका प्रमाण पूर्वाह्णके प्रमाणसे अलग है।

यह हेमाद्रि मत कर्णाटकप्रान्तीय श्रीधराचार्यके मतसे मिलता जुलता है। केवल गणित प्रक्रियामें थोड़ा सा अन्तर है। गणितसे निष्पन्न फल दोनोंका प्रायः एक ही है। दीपिकाकार एवं मदनरत्नकार सत्यव्रतने उदय तिथिका खण्डन करते हुए बताया है कि जब तक पूर्वाह्णकालमें तिथि न हो तब तक व्रतारम्भ और व्रत समाप्ति नहीं करनी चाहिए। देवलने भी उक्त मतका समर्थन किया है तथा जो केवल उदय तिथिको ही प्रमाण मानते हैं, उनका खण्डन किया है। देवल और सत्यव्रतका मत बहुत कुछ मूलसंघके आचार्योंके मतके साथ समानता रखता है। तिथि हानि और तिथिके बलाबलको प्रधान हेतु मानकर पूर्वाह्णकाल व्यापी तिथिको व्रतके लिए ग्राह्य माना है[1]। गणितमें पूर्वाह्णका प्रमाण

---

१ उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद्दिनमध्यभाक्।
सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम्॥—निर्णय० पृ० १७।

भी एक विलक्षण ढगसे निकाला है, इन्होंने दिनमानका मान्य पञ्चमाश ही पूर्वाह्न माना है। यद्यपि अन्य गणितके आचार्योंने पञ्चमाशपर पूर्वाह्न का प्रारम्भ और दो पञ्चमाशपर पूर्वाह्नकी समाप्ति मानी है। दिनमान का मान्य पञ्चमाश कह देनेसे ही पूर्वाह्नका ग्रहण हो जाता है।

निष्कर्ष यह है कि अनेक मतमतान्तरोंके रहनेपर भी जैनाचार्योंने व्रतके लिए छ घडीसे लेकर बारह घडी तक तिथिका प्रमाण बताया है।

दशलक्षण और सोलहकारण व्रतके दिनोंकी अवधिका निर्धारण

कारणे लक्षणे धर्मे दिनानि दशषोडशात्।
न्यूनाधिक्दिनानि स्युराद्यन्तविधिमयुते ॥१८॥
अधिका तिथिरादिष्टा व्रतेषु बुधसत्तमे ॥
आदिमध्यान्तभेदेषु यथाशक्तिर्विधीयते ॥१९॥

अर्थ—दशलक्षण और सोलहकारण व्रतके दिनोंकी सख्या क्रमसे दश और सोलह है। तिथिक्षय और तिथिवृद्धिमें व्रत प्रारम्भ करनेकी तिथिसे लेकर व्रत समाप्त करनेकी तिथि तक न्यूनाधिक दिन सख्या भी हो जाती है। मध्यमें जब तिथिक्षय हो जाता है तो दिन सख्या कम और जब तिथि-वृद्धि हो जाती है तो दिन सख्या बढ जाती है।

व्रतके जानकार विद्वान् लोगोने तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन अधिक व्रत करनेका आदेश दिया है, अत आदि, मध्य और अन्त भेदोंमें शक्ति के अनुसार व्रत करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि एक तिथिके बढ जाने पर एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए। व्रतके आदि, मध्य अथवा अन्तम तिथिके क्षय होनेपर शक्तिके अनुसार व्रत करना।

विवेचन—यद्यपि सोलहकारणव्रतके दिनोंकी सख्या तथा उसकी अवधिके सम्बन्धमें पहले ही विस्तारसे कहा जा चुका है। सोलहकारण व्रतमें एक तिथिके बढ जानेपर दिनसख्या बढ जाती है किन्तु व्रतके दिनोंके मध्यमें एक तिथिके घट जानेपर दिनसख्यामे एक दिन कम

किया जाता है। यह व्रत भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे आरम्भ होता है और आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको समाप्त किया जाता है, अत बीचकी तिथिके नष्ट हो जानेपर भी तिथि अवधि ज्यों-की-त्यों रहती है। व्रत आरम्भ और व्रत समाप्त करनेकी तिथियाँ इसमें निश्चित रहती हैं, अत तिथिक्षयमें एक दिन आगेसे व्रत नहीं किया जाता है, जिससे ३१ दिन की जगह ३० दिन ही किया जाता है।

दशलक्षण व्रतमे एक दिनके घट जानेपर एक दिन आगेसे व्रत करने की परिपाटी भी है तथा यह शास्त्रसम्मत भी है। दशलाक्षणी व्रतके बीचमे जब किसी तिथिका क्षय रहता है, तो उसे पूरा करनेके लिए एक दिन आगे व्रत किया जाता है। दस दिनोंके स्थानमें यह व्रत कभी भी नौ दिनोंमें नहीं किया जाता है। जब तिथि बढ जाती है तो इस व्रतकी अवधि ग्यारह दिनकी हो जाती है, तिथि बढ जानेपर एक दिन घटता नहीं है। व्रतकी समाप्ति चतुर्दशीको की जाती है। तिथि घट जानेपर भी व्रतकी समाप्ति चतुर्दशीको की जाती है। हाँ, पञ्चमीको व्रत आरम्भ न कर तिथि-क्षयकी स्थितिमें चतुर्थीको व्रतारम्भ किया जाता है। सेनगणके आचार्योंने व्रत समाप्तिका तिथि निश्चित कर दी है। व्रतारम्भके सम्बन्ध में काष्ठासघ और मूल सघमे थोड़ा सा मतभेद है। मूल सघके आचार्य मध्यमें तिथिक्षय होनेपर चतुर्थीको ही व्रतारम्भ मान लेते है, उन्होंने बतलाया है कि मध्यमे तिथि-क्षयकी अवस्थामे पञ्चमी विद्ध चतुर्थी ग्रहण की गई है। सूर्यास्त समयमे पञ्चमी तिथि आ ही जाती है। ऐसा नियम भी है कि जब दशलक्षण व्रतके मध्यमे किसी तिथिका क्षय होता है तो चतुर्थी तिथि मध्याह्नके पश्चात् पञ्चमीसे सिद्ध हो हो जाती है। अतएव मूलसघके आचार्योंने एक दिन पहलेसे व्रत करनेका विधान किया है। यद्यपि उदयकालमे छःघटी प्रमाण तिथिको ही व्रतके लिए ग्राह्य बताया है, परन्तु 'त्रिमुहूर्त्तेषु यत्रार्क उदेत्यस्त समेति च' श्लोकमें च-शब्दका पाठ रखा है, जिससे स्पष्ट है कि सूर्यास्तकालमें तीन मुहूर्त्त प्रमाण तिथिके होनेपर भी तिथि व्रतके लिए ग्राह्य मान ली जाती है।

यद्यपि आचार्यने स्पष्ट कर दिया है कि यह विधान नैमित्तिक व्रतोंके लिए ही है।

'त्रिमुहूर्त्तेषु यत्रार्कः' श्लोककी संस्कृत व्याख्यामें बताया है "या तिथिरुदयकाले त्रिमुहूर्त्तादिनागतदिवसेऽपि वर्तमाना तिथिः उदयकाले त्रिमुहूर्त्तादिनागतदिवसेऽपि वर्तमाना तिथिः" आचार्य के इस कथनसे स्पष्ट है कि अस्तकालमें तीन घटी रहनेवाली तिथि भी व्रतके लिए ग्राह्य मान ली जाती है। यद्यपि आगे चलकर अपने व्याख्यानमें नैमित्तिक व्रतके लिए अस्तकालीन तिथिका उपयोग करनेके लिए कहा गया है। फिर भी व्याख्यामें दो बार "त्रिमुहूर्त्तादिनागतदिवसेऽपि वर्तमाना" पाठ आजानेसे यह अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि दशलक्षण और अष्टाह्निका व्रतके मध्यमें तिथिका अभाव होनेपर पञ्चमी विद्ध चतुर्थी तथा अष्टमी विद्ध सप्तमी व्रत करनेके लिए ग्रहण कर ली जाती है, जिससे नियत अवधिमें भी बाधा नहीं पड़ता है।

मध्यमें तिथिक्षय होनेपर उपर्युक्त व्यवस्था मान ली जायगी, किन्तु आदि और अन्तमें तिथिक्षय होनेपर उन दोनों व्रतोंके लिए क्या व्यवस्था रहेगी ? आचार्य सिंहनन्दीने इस प्रश्नका उत्तर भी उपर्युक्त पद्योंमें दिया है। आपने बतलाया है कि आदि तिथिका क्षय होनेका अर्थ है—दश लक्षणके लिए पञ्चमीका ही अभाव होना। जब सूर्योदयकालमें पञ्चमी नहीं रहेगी तो चतुर्थी विद्ध पञ्चमी ही व्रतके लिए पञ्चमी मान ली जायगी। गणित प्रक्रियाके अनुसार यही सिद्ध होता है कि जब उत्तर तिथिका अभाव होता है तो पूर्व तिथि भी पिछले दिन अल्प प्रमाण ही रहता है, जिससे क्षय होनेवाली तिथि उस दिन भुक्त हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जिस पञ्चमीका अभाव हुआ है, वस्तुतः वह उसके पहले दिन उदयकालमें चतुर्थीके रहनेपर भुक्त हो चुकी है, जिससे अगले दिन उदय कालमें उसका अभाव हो गया है। उदाहरणके लिए यों कहा जा सकता है कि बुधवारको चतुर्थी ६ घटी २० पल है, गुरुवारको पञ्चमीका अभाव है और षष्ठी ५० घटी १९ पल है। ऐसी अवस्थामें व्रतके लिए पञ्चमी कौन सी मानी जायगी ?

विपल प्रमाण या इससे अधिक होनेपर तिथि व्रतके लिए ग्राह्य है। यहाँ पर अष्टमी ७ घटी ५४ है, यह मान गणितागत मानसे अधिक होनेके कारण व्रत तिथिके लिए ग्राह्य है। दिनमान २९ घटी ४० पल है, इसका षष्ठांश लिया तो—(२९।४०)—६ = ४।५६।४० अर्थात् ४ घटी ५६ पल ४० विपल हुआ। गुरुवारको अष्टमी ७ घटी ५४ पल है जो कि गणित द्वारा आगत मानसे ज्यादा है, अत यह तिथि भी व्रतके लिए सर्व प्रकारसे ग्राह्य है। माघनन्दि आचार्यने तिथिके लिए और भी अनेक मतोंकी समीक्षा की है, परन्तु सूक्ष्म विचारसे उन्होंने दिनमानके षष्ठांश-को ही दान, अध्ययन, व्रत और अनुष्ठानके लिए ग्राह्य बताया है।

इतीन्द्रनन्दिवचनम्, अधिकायामुक्तं नियमसारे समयभूषणे च—

अधिका तिथिरादिष्टा व्रतेषु बुधसत्तमे ।
आदिमध्यान्तभेदेषु शक्तितश्च विधीयते ॥१॥

अर्थ—यह इन्द्रनन्दि आचार्यके वचन हैं। अधिक तिथि—तिथिके बढ जानेपर नियमसार और समयभूषणमें व्यवस्था बतायी गयी है कि अधिक तिथिके होनेपर विवेकी श्रावकोंको आदि, मध्य और अन्त भेदों में—दिनोंमें शक्तिपूर्वक आचरण करना चाहिए। यह श्लोक पहले भी आया है। सिंहनन्दि आचार्यका ही यह श्लोक है, यद्यपि इसी श्लोकके भावका श्लोक इन्द्रनन्दीका भी है। पर तिथि व्यवस्था सिंहनन्दीकी ही है।

तथा चोक्तं सिंहनन्दिविरचितपञ्चनमस्कारदीपिकायाम्—

शक्तिहीनं करोतु वाप्यधिकस्याधिकं फलम् ।
सशक्तिके च नि शक्तिके ज्ञेयं नेदमुत्तरम् ॥१॥

अर्थ—सिंहनन्दी विरचित पञ्चनमस्कारदीपिका नामक ग्रन्थमें भी कहा है—तिथिवृद्धि होनेपर जिसमें शक्ति नहीं है, उसको भी एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए, क्योंकि एक दिन अधिक व्रत करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होता है। जो यह प्रश्न करते हैं कि जिसमें शक्ति नहीं है, वह किस प्रकार अधिक दिन व्रत करेगा। शक्तिशालीको ही

एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए। शक्तिके अभावमें एक दिन अधिक व्रत करनेका प्रश्न उठता नहीं है। आचार्य इस थोथी दलीलका खण्डन करते हैं तथा कहते हैं कि व्रत करनेवाला शक्तिशाली या शक्ति-रहित है, यह कोई उत्तर नहीं है। व्रत समाको तिथि-वृद्धि होने पर एक दिन अधिक करना चाहिए। व्रत ग्रहण करनेवाला अपनी शक्तिको देखकर ही व्रत ग्रहण करता है।

विवेचन—आचार्य सिंहनन्दीने पञ्चनमस्कारदीपिका नामक ग्रन्थ लिखा है। अपने इस ग्रन्थमें तिथिवृद्धि होने पर व्रत कितने दिन करना चाहिए, इसकी व्यवस्था बतलायी है। कुछ लोग यह आशंका करते हैं कि जिसमें शक्ति है, वह तिथि-वृद्धिमें एक दिन अधिक व्रत करेगा और जिसमें शक्ति नहीं है, वह नियत अवधि पर्यन्त ही व्रत करेगा। आचार्य ने इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा है कि व्रत करनेमें शक्ति, अशक्तिका प्रश्न नहीं है। अधिक दिन व्रत करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होता है। जो शक्तिहीन हैं, उनको तो व्रत ग्रहण नहीं करना चाहिए। अपनेको शक्तिहीन समझना बहिरात्मा बनना है। आत्मामें अनन्त शक्ति है, कर्म बन्धनके कारण आत्माकी शक्ति आच्छादित है; कर्मबन्धनके टूटते ही या शिथिल होते ही पूर्ण या अपूर्ण रूपमें शक्ति उद्भूत होती है।

व्रत करनेका मुख्य ध्येय यही है कि कर्मबन्धन शिथिल हो जायँ और ऐसा अवसर मिले जिससे इस कर्मबन्धनको तोड़नेमें समर्थ हो सकें। व्रत करके भी अपनेको निःशक्ति समझना बहिरात्माका लक्षण है। यद्यपि जैनागम शक्तिप्रमाण व्रत करनेका आदेश देता है। यदि उपवास करनेकी शक्ति नहीं है तो एकाशन करना चाहिए। परन्तु शक्ति-प्रमाण व्रत करनेका अर्थ यह कदापि नहीं है कि अपनी शक्तिको छिपाया जाय। व्रत करनेसे शक्तिका प्रादुर्भाव होता है, जो अपनेको निःशक्ति समझते हैं, उन्हें आत्माका पक्का श्रद्धान नहीं हुआ है—भेदविज्ञानकी जागृति नहीं हुई है। भेदविज्ञानके उत्पन्न होते ही इस जीवको अपनी वास्तविक शक्तिका अनुभव हो जाता है।

शरीरसे मोह करनेके कारण ही यह जीव अपनेको शक्तिहीन समझता है। परन्तु जैनदर्शनमें शारीरिक शक्ति आत्माकी शक्तिसे ही अनुप्राणित बतलायी है। अत अनन्त बलशाली आत्माको कभी भी शक्तिहीन नहीं समझना चाहिए। मै चतुर हूँ, पण्डित हूँ, ज्ञानी हूँ आदि मानना बहिरात्मापना है। रागी, द्वेषी, लोभी, मोही, अज्ञानी, दीन, धनी, दरिद्री, सुरूप, कुरूप, बालक, कुमार, तरुण, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, काला, गोरा, मोटा, पतला, निबल, सबल आदि अपनेको एकान्त रूपमे समझना मिथ्यात्वका द्योतक है। जिसको शरीरमें आत्माकी भ्रान्ति हो जाती है, जो शरीरके धर्मको ही आत्माका धर्म मानता है, वह मिथ्या दृष्टि बहिरात्मा है। अत व्रत करनेम सर्वदा अपनेको शक्तिशाली ही समझना चाहिए।

जो लोग अपनेको शक्तिहीन कहकर व्रत करनेसे भागते हैं, वे वस्तुत आत्मानुभूतिसे हीन हैं। रत्नत्रय आत्माका स्वरूप है, इसकी प्राप्ति व्रताचरणसे ही हो सकती है। व्रताचरण ससार और शरीरसे विरक्ति उत्पन्न करता है। मोहके कारण यह आत्मा अपने स्वरूपको भूले है, मोहके दूर होते ही स्वरूपका भान होने लगता है। शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य। यह अनादि, स्वत सिद्ध, उपाधिहीन एवं निर्दोष है। इस आत्माको तीक्ष्ण शस्त्र काट नहीं सकते हैं, जलप्लावन इसे भिगा नहीं सकता। पवनकी शोषक शक्ति इसे सुखा नहीं सकती। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त्व, अगुरुलघुत्व आदि स्वाभाविक आठ गुण इसमें वर्तमान है। ये गुण इस आत्माके स्वभाव है, आत्मासे अलग नहीं हो सकते। जो व्यक्ति इस मानव शरीरको प्राप्तकर आत्माकी साधना करता है, व्रतोपवास द्वारा विषय-कषायजन्य प्रवृत्तियोंको दूर करता है, वह अपने मनुष्य जीवनको सफल कर लेता है।

शरीरके नाश होने पर भी यह आत्मा इस प्रकार नष्ट नहीं होती है जैसे मकानके भीतरका आकाश जो मकानके आकारका होता है, मकानके गिरा देने पर भी मूलस्वरूपमें ज्यों-का-त्यों अधिकृत रहता है।

ठीक इसी प्रकार शरीरके नाश हो जानेपर भी आत्मा ज्योंकी त्यों मूलरूपमें रहता है। इसीलिए आचार्योंने इस ज्ञान, दर्शनमय आत्मतत्त्वको प्राप्त करनेका साधन व्रतोपवास आदिको माना है। उपवास करनेसे इन्द्रियों की उद्दाम शक्ति क्षीण हो जाती है, विषयकी ओर उनकी दौड़ कम हो जाती है। उपवासको आचार्योंने शरीर और आत्मशुद्धिका प्रधान साधन कहा है। प्रमाद, जो कि आत्माकी उपलब्धिमें बाधक है, उपवाससे दूर किया जा सकता है। शरीरको सन्तुलित रखनेमें भी उपवास बड़ा भारी सहायक है। धर्म, ध्यान, पूजापाठ और स्वाध्यायपूर्वक उपवास करनेका फल तो अद्भुत होता है। आत्माकी वास्तविक शक्ति प्रादुर्भूत हो जाती है।

सम्यग्दृष्टि श्रावक अपने सम्यग्दर्शन व्रतको विशुद्ध करनेके लिए नित्य, नैमित्तिक सभी प्रकारके व्रत करता है। पञ्चाणुव्रतोंके द्वारा अपने आचरणको सम्यक् करता हुआ मोक्षमार्गमें अग्रसर होता है। जैनागममें स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि श्रावकको सर्वदा सावधान रहते हुए आत्मशोधनमें प्रवृत्त होना चाहिए। यह गृहस्थ धर्म भी इस आत्माको संसारके बन्धनसे छुड़ानेमें सहायक है। यद्यपि मुनिधर्म धारण किये बिना पूर्ण स्वतन्त्रता इस जीवको नहीं प्राप्त हो सकती है, क्योंकि गृहस्थ धर्ममें परावलम्बन अधिक रहता है। अभ्रदेवने अपने व्रतोद्योतन श्रावकाचारमें स्पष्ट लिखा है कि समाधिमरणमें सहायक दशलक्षण आदि व्रतों को इस जीवको अवश्य धारण करना चाहिए। व्रतोंके प्रभावसे समाधिमरण सिद्ध होता है।

व्रततिथिके निर्णयके लिए विभिन्न मत

तथा व्रतोद्योते—

रसघटीमत चापि व्रत दशघटीप्रमम्।
त्रिंशनाडीमत चापि मूले दास्मतद्वये ॥१॥
मूलसहे घटीषट्कं व्रत स्याच्छुद्धिकारणम्।
काष्ठासहे च पञ्चाश तिथे स्याच्छुद्धिकारणम् ॥२॥

पूज्यपादस्य शिष्यैश्च कथितं षट्घटीमतम् ।
ग्राह्यं सकलसङ्घेषु पारम्पर्यसमागतम् ॥३॥

अर्थ—मूल संघके आचार्योंके मतानुसार छ घटी प्रमाण तिथिका मान है। काष्ठासंघके आचार्योंके दो मत हैं—एक सिद्धान्तके आचार्य दस घटी प्रमाण व्रतकी तिथिका मान बतलाते हैं तथा दूसरे सिद्धान्तके आचार्य बीसघटी प्रमाण व्रतकी तिथिका मान बतलाते हैं। मूलसंघमें व्रतकी शुद्धि छ घटी प्रमाण तिथि होनेपर मानी है, किन्तु काष्ठासंघमें षष्ठांश प्रमाण तिथि ही व्रतशुद्धिका कारण मानी गयी है। पूज्यपादके शिष्योंने भी छ घटी प्रमाण व्रततिथिको कहा है। इस तिथि प्रमाणको ही परम्परागत आचार्योंके मतानुसार ग्रहण करना चाहिए।

विवेचन—व्रततिथिके निर्णयके सम्बन्धमें अनेक मतमतान्तर हैं। मूलसंघ, काष्ठासंघ, पूज्यपाद आदि आचार्योंकी परम्पराके अनुसार व्रततिथिका मान भी भिन्न-भिन्न प्रकारसे लिया गया है। यद्यपि व्यवहारमें मूलसंघके आचार्योंका मत ही प्रमाण माना जाता है, फिर भी विचार करनेके लिए यहाँ सभी मतोंका प्रतिपादन किया जा रहा है।

काष्ठासंघके आचार्योंमें दो प्रकारके सिद्धान्त पाये जाते हैं। कुछ आचार्य तिथिका प्रमाण षष्ठांश मात्र और कुछ तृतीयांश मात्र मानते हैं। तृतीयांश मात्र प्रमाण माननेवालोंका कथन है कि जितनी अधिक तिथि व्रतके दिन सूर्योदयकालमें होगी, उतना ही अच्छा है। क्योंकि पूर्ण तिथिका फल भी पूरा ही मिलेगा। मध्य मान तिथिका ६० घटी होता है, अतः तृतीयांशका अर्थ २० घटी मात्र है। यदि स्पष्ट तिथिका मान निकालकर तृतीयांश लिया जाय तो अधिक प्रामाणिक न होगा। परन्तु स्पष्टतिथिके मानका गणित करना होगा तभी तृतीयांश ज्ञात हो सकेगा। उदाहरण—सोमवारको सप्तमी तिथिका मान पञ्चांगमें १५ घटी २५ पल अंकित है और मंगलवारको अष्टमी १० घटी ४० पल अंकित की गयी है। कुल अष्टमीका प्रमाण निम्न प्रकार हुआ—

(अहोरात्र प्रमाण—पञ्चांग अंकित पूर्वतिथि—सप्तमी)=अनंकित

व्रततिथि=अष्टमीका प्रमाण=(६०।०) – (१५।२५)=४४।३५ अनकित व्रततिथि अष्टमी (अनकित व्रततिथि + पञ्चाग अकित व्रततिथि)= (४४।३५) + (१०।४०)=समस्त व्रततिथि=५५।१५ इसका तृतीयांश निकाला तो—५५।१५ – ३=१८।२५ अथात् १८ घटी २५ पल तृतीयांश प्रमाण आया। यदि अष्टमी सूर्योदय कालमें १८ घटी २५ पलके तुल्य हो या इससे अधिक हो तभी काष्ठासंघके द्वितीय मतके अनुसार ग्राह्य हो सकती है। प्रस्तुत उदाहरण में १० घटी ४० पल ही है, अत व्रतके लिए ग्राह्य नहीं मानी जा सकती है। व्रत करनेवालेको सोमवारके दिन ही इस सिद्धान्तके अनुसार व्रत करना पड़ेगा।

तृतीयांश प्रमाण व्रतके लिए तिथि माननेवाले मतकी आलोचना

मध्यममान या स्पष्टमानसे समस्त तिथिका तृतीयांश व्रतके लिए प्रमाण मानना उचित नहीं जँचता है। क्योंकि उदयकालमें तृतीयांशमात्र शायद ही कभी तिथि मिलेगी, ऐसी अवस्थामें व्रत सदा अनकित तिथिमें ही करना पड़ेगा। मध्यममानकी अपेक्षा २० घटी प्रमाण उदय तिथिका मान आवेगा और स्पष्टमानकी अपेक्षासे कभी २० घटीसे अधिक २२ घटीके लगभग हो सकता है और कभी २० घटीसे न्यून ही प्रमाण रहेगा। ऐसी अवस्थामें उदयकालमें उक्त प्रमाण तुल्य व्रतके लिए तिथि मिलना सम्भव नहीं होगा। वर्षमें दो-चार बार ही ऐसी स्थिति आवेगी, जब २० घटी प्रमाण या इसके लगभग तिथि मिल सकेगी, अत अधिकांश व्रतमें उदयकालीन तिथिको छोड़ अस्तकालीन तिथि ही ग्रहण करनी पड़ेगी।

दूसरी आपत्ति तृतीयांश मात्र व्रततिथि माननेमें यह भी आता है कि प्रोषधोपवास करनेवालेका प्रत्येक पर्व सम्बन्धी प्रोषधोपवास कभी भी यथासमयपर नहीं होगा। क्योंकि प्रोषधोपवासके लिए एकाशनकी तिथिका विधान है, उपवासके लिए भी निश्चित तिथि होनी चाहिए तथा

पारणाके लिए भी विहित तिथिका होना आवश्यक है। जैसे किसी व्यक्तिको चतुर्दशीका प्रोषधोपवास करना है। सोमवारको त्रयोदशी ८ घटी २० पल है, मंगलको चतुर्दशी ७ घटी ५० पल है और बुधवार को पूर्णिमा ६ घटी ३० पल है। इस प्रकारकी तिथि व्यवस्था होनेपर क्या चतुर्दशीका प्रोषधोपवास मंगलवारको किया जा सकेगा और पूर्णिमाको पारणा हो सकेगी ?

प्रत्येक तिथिका तृतीयांश प्रमाण निकालनेके लिए गणित क्रिया की। रविवारको द्वादशी १२ घटी ४० पल है। अत (अहोरात्र—एकाशनके पूर्वकी तिथि) = (६०।०)—(१२।४०) = ४७।२० अनंकित त्रयोदशी तिथि, (अनंकित तिथि + अंकित तिथि) = (४७।२०) + (८।२०) = ५५।४० त्रयोदशी, इसका तृतीयांश = ५५।४० — ३ = १८।३३।२० घट्यादि मान त्रयोदशीका।

(अहोरात्र—व्रतके पूर्वकी तिथि) = (६०।०) – (८।२०) = ५१।४० अनंकित चतुर्दशी (अनंकित+अंकित चतुर्दशी)=(५१।४०)+ (७।५०) = ५९।३० समस्त चतुर्दशी, इसका तृतीयांश ५९।३० — ३= १९।५० चतुर्दशीका तृतीयांश।

(अहोरात्र—व्रत तिथि) = (६०।०) – (७।५०) = ५२।१० अनंकित व्रतके बादकी पारणा तिथि , (अनंकित पारणा + अंकित पारणा) = (५२।१०) + (६।३०) = ५८।४०, इसका तृतीयांश ५८।४० — ३ = १९।३३।२० घट्यादि पूर्णिमाका।

प्रस्तुत उदाहरणमें एकाशनकी त्रयोदशी तिथि सोमवार को ८ घटी २० पल है, स्पष्टमानपरसे तृतीयांशका प्रमाण १८।३३।२० घट्यादि आया है। एकाशनकी तिथिका प्रमाण तृतीयांशके प्रमाणसे अल्प है, अत सोमवारको एकाशन नहीं करना चाहिए क्योंकि उस दिन त्रयोदशी तिथि है ही नहीं। यदि रविवारको एकाशन किया जाता है, तो उदय कालमें १२ घटी ४० पल तक द्वादशी तिथि भी रहती है, अत धर्मध्यान, सामायिक आदि क्रियाएँ, जिनका सम्बन्ध प्रोषधोपवाससे है, त्रयोदशीमें सम्पन्न नहीं हो सकेंगी।

चतुर्दशीको प्रोषधोपवास करना है, यह भी मंगलवारको ७ घटी ५० पल प्रमाण है। गणितसे चतुर्दशीका तृतीयांश १९।५० घट्यादि आया है, अतः मंगलको उपवास नहीं किया जा सकता, उपवास सोमवारको करना पड़ेगा। इसी प्रकार पारणा भी मंगलवारको करनी होगी। उपवास और पारणाकी क्रियाएँ सम्पन्न करनेकी तिथियोंमें व्यतिक्रम हो जाता है, जिससे नियमित समयपर धार्मिक क्रियाएँ नहीं हो सकेंगी।

तीसरा दोष तृतीयांश प्रमाण तिथि माननेसे यह आता है कि स्पष्ट मानके अनुसार तिथिका तृतीयांश लेनेपर एकाशनकी तिथिके अनन्तर एक दिन बीचमें योंही खाली रह जायगा तथा उपवासकी तिथि एक दिन आगे हो पड़ेगी। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि किसी व्यक्तिको चतुर्दशीका प्रोषधोपवास करना है। त्रयोदशी बुधवारको १५।१२ है, गुरुवारको चतुर्दशी १६ घटी १० पल है। और शुक्रवारको पूर्णिमा १७ घटी १५ पल है। ऐसी अवस्थामें मंगलवारको त्रयोदशीका एकाशन करना पड़ेगा, बुधवारको यों ही रहना पड़ेगा, तथा गुरुवारको चतुर्दशीका उपवास करना पड़ेगा तथा शुक्रवारको पारणा। यह प्रोषधोपवास यथार्थ प्रोषधोपवास नहीं कहलाएगा। विधिमें भी व्यतिक्रम हो जायगा, अतः तृतीयांश प्रमाण तिथिको स्वीकार कर व्रत करना उचित नहीं है।

सामान्यतः तृतीयांश मान तिथिका ग्रहण किया जाय तो ठीक है, पर उदयकालमें तृतीयांश प्रमाण मानना उचित नहीं जँचता है। इस प्रमाणमें अनेक दोष आते हैं, तथा व्रत करनेमें व्यतिक्रम भी होता है।

दशघटी प्रमाण भी तिथिका मान काष्ठासंघके कुछ आचार्य मानते हैं। उनका कथन है कि समस्त तिथियाँ षष्ठांश प्रमाण लिए ग्राह्य हैं। यदि उदयकालमें कोई भी तिथि अपने प्रमाणके षष्ठांश भी हो तो उस मतके लिए विहित माना गया है। दान, अध्ययन, उपवास और अनुष्ठान इन चारों कार्योंके लिए षष्ठांश प्रमाण तिथिके अतिरिक्त विधेय वस्तुओंका मान भी षष्ठांश ही कहा है। अर्थात् दान उपार्जित सम्पत्तिका षष्ठांश

देना चाहिए। अध्ययन समस्त अहोरात्र प्रमाणका षष्ठांशमात्र समय अध्ययन—स्वाध्यायमें अवश्य लगाना चाहिए। उपवासके लिए भी विहित तिथिका समस्त तिथिके षष्ठांश प्रमाण होना आवश्यक है। अनुष्ठानमें—विधान, प्रतिष्ठा, मन्त्रसिद्धि आदिमें संचित सम्पत्तिका षष्ठांश खर्च करना चाहिए तथा अपने समयके छठवें भागको शुभोपयोगमें बिताना आवश्यक है। अतएव काष्ठासंघके आचार्योंने व्रतके लिए विहित तिथिका उदयकालमें दस घटी प्रमाण माननेके लिए ज़ोर दिया है। इससे कम प्रमाण तिथिके होनेपर व्रत नहीं किये जा सकते हैं। यद्यपि स्पष्ट तिथिके प्रमाणानुसार दस घटीसे हीनाधिक भी प्रमाण व्रततिथिका हो सकता है, परन्तु ऐसा स्थिति बहुत ही कम स्थलोंमें आती है। उदाहरण—सोमवारको त्रयोदशी ४० घटी १५ पल है और मंगलवारको चतुर्दशी २४ घटी ३० पल है। अतः मंगलको चतुर्दशीका षष्ठांश कितना हुआ, इसके लिए गणित क्रिया की—(६०।०)—(४०।१५)=१९।४५। (१९।४५)+(३४।३०)=५४।१५ समस्त चतुर्दशी, इसका षष्ठांश ५४।१५—६=९।२।३० मंगलवारको चतुर्दशी यदि उदयकालमें ९ घटी २ पल ३० विपल हो तो यह तिथि व्रतके लिए ग्राह्य मानी जायगी।

षष्ठांश प्रमाण व्रतके लिए उदयकालमे तिथि माननेवाले मतकी समीक्षा

काष्ठासंघका षष्ठांश प्रमाण व्रतके लिए तिथि मानना तृतीयांश प्रमाण माने गये मतकी अपेक्षासे उत्तम है। यह व्यावहारिक दृष्टिसे भी ग्राह्य हो सकता है। इसमें व्रतविधिमें व्यतिक्रमकी गुंजाइश भी नहीं है। यद्यपि छः घटी प्रमाण व्रत तिथिको मान लेनेपर, सभी व्रत सम्बन्धी विधान निश्चित तिथिमें हो जाते हैं। किसी भी प्रकारकी बाधा षष्ठांश तिथिमानमें उपस्थित नहीं होती है। परन्तु सब प्रकारसे ठीक होनेपर भी एक बाधा इस तिथिको स्वीकार कर लेनेपर आ ही जाती है और वह है मानाधिक्य होनेसे सर्वदा अंकित तिथियोंमें व्रत नहीं किया

जा सकेगा। एकाधवार ऐसा भी समय आ सकेगा, जब उदयकालीन तिथियोंको छोड़कर अस्तकालीन तिथियोंको ग्रहण करना पड़ेगा।

वास्तवमें व्रतका फल तभी मिलता है, जब सूर्योदयकालमें विधेय तिथि कम-से-कम दो घटी सामायिक, प्रतिक्रमण और आलोचनाके लिए तथा तीन घटी प्रमाण पूजाके लिए और एक घटी प्रमाण आत्मचिन्तनके लिए और उपवास सम्बन्धी नियम ग्रहण करनेके लिए रहे। मूल सघके आचार्योंने इसी कारण छ घटी प्रमाण तिथिको व्रतके लिए ग्राह्य माना है। दसघटी प्रमाण तिथिको व्रतके लिए ग्राह्य माननेमें सिर्फ दो युक्तियाँ हैं—प्रथम "पद्मारामपि ग्राह्य दानाध्ययनकर्मणि" यह आगम वाक्य है। इसके अनुसार दान पूजा पाठ आदिके लिए पद्मांश तिथि ग्रहण करनी चाहिए। दूसरी युक्ति जो कि अधिक बुद्धिगत प्रतीत होती है, वह है सामायिक, प्रतिक्रमण, पूजा-पाठ, स्वाध्याय और आत्म चिन्तनके लिए दो-दो घटी समय निर्धारित करना। व्रत करनेवाले श्रावकको व्रतके दिन प्रात काल दो घटी सामायिक, दो घटी प्रतिक्रमण, दो घटी पूजापाठ, दो घटी स्वाध्याय और दो घटी आत्मचिन्तन करना चाहिए। अत जो विधेय तिथि व्रतके दिन कम-से-कम दस घटी नहीं है, उनमें धार्मिक क्रियाएँ यथार्थ रूपसे सम्पन्न नहीं की जा सकती हैं। अतएव दस घटी या इससे अधिक प्रमाण तिथिको ही व्रतके लिए ग्राह्य मानना चाहिए।

छ घटी प्रमाण मूलसंघ और पूज्यपादकी शिष्यपरम्परा व्रततिथि का मान स्वीकार करता है। इसकी उपपत्ति दो प्रकारसे देखनेको मिलती है। कुछ लोग कहते हैं कि तिथिकी चार अवस्थाएँ होती हैं, बाल, किशोर, युवा और वृद्ध। उदयकालमें पाँच घटी प्रमाण तिथि बालसंज्ञक मानी जाती है, पाँच घटीके उपरान्त दस घटी तक किशोर संज्ञक और दस घटीसे लेकर बीस घटी तक युवा संज्ञक तथा अवशिष्ट तिथि वृद्ध संज्ञक कही गयी है। युवा संज्ञक तिथिके कुछ लोगोंने दो-भेद किये हैं—पूर्व युवा और उत्तर युवा। दिनमान पर्यन्त पूर्ण युवा

होनेपर एक दिन पहलेसे प्रारम्भ कर दिया जाता है। इस व्रतकी समाप्ति पूर्णिमाको होती है। रत्नत्रय व्रतको भी तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे करना चाहिए। इन सब व्रतोंको तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहलेसे करते हैं, किन्तु तिथि वृद्धि होनेपर एक दिन और अधिक करते हैं। व्रत तिथियोंके आदि, मध्य और अन्तमें तिथिकी वृद्धि हो जानेपर नियत अवधि तक ही व्रत नहीं किया जाता। बल्कि एक दिन अधिक व्रत किया जाता है।

तिथिक्षय होनेपर गौतमादि मुनीश्वरोंका मत

आदिमध्यान्तभेदेषु तिथिर्यदि विधीयते।
तिथिह्रासे समुद्दिष्टं गोतमादिगणेश्वरैः ॥ २ ॥

अर्थ—आदि, मध्य और अन्तमें यदि तिथिक्षय हो तो गौतमादि मुनीश्वरोंका कथन है कि एक दिन पहलेसे व्रत विधिको सम्पन्न करना चाहिए।

विवेचन—जैनाचार्योंने तिथिह्रास और तिथिवृद्धि होनेपर नियत अवधिके व्रतको कितने दिनतक करना चाहिए, इसका विस्तार सहित विचार किया है। श्री गौतमगणधर तथा श्रुतज्ञानके पारगामी अन्य आचार्योंने अपनी व्यवस्था देते हुए कहा है कि तिथिह्रास होनेपर भी व्रतको अपनी निश्चित दिनसंख्यातक करना चाहिए। मध्यमें अथवा आदि, अन्तमें तिथिक्षय हो तो एक दिन आगेसे व्रतका निश्चित दिनोंतक पालन करना चाहिए। दशलक्षण, रत्नत्रय और अष्टाह्निका ये तीनों व्रत अपनी निश्चित दिन संख्यातक किये जाते हैं। दशलक्षण व्रतके दस दिनोंमेंसे प्रत्येक दिन एक-एक धर्मके स्वरूपको मनन किया जाता है। तिथि-ह्रासके कारण यदि एक दिन कम व्रत किया जाय तो एक धर्मके स्वरूपके मननका अभाव हो जायगा, जिससे समग्रव्रतका फल नहीं मिल सकेगा। जैनाचार्योंने तिथिह्रास होनेपर विभिन्न व्रतोंके लिए विभिन्न व्यवस्था बतलायी है।

कुन्दकुन्द, पूज्यपाद, जिनसेन, अभ्रदेव, सिंहनन्दी, दामोदर आदि आचार्योंने दशलक्षण और अष्टाह्निका व्रतके लिए मध्य, अन्त या आदिमें तिथिक्षय होनेपर एक मतसे स्वीकार किया है कि एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए। गौतमगणधर आदि प्राचीन आचार्योंसे भी उक्त मतकी समर्थित है। सिंहनन्दि आचार्यने तिथिक्षयकी व्यवस्था करते हुए कहा है कि प्रत्येक तिथिमें पाँच मुहूर्त्त पाये जाते हैं—आनन्द, सिद्ध, काल, क्षय और अमृत। इन पाँच मुहूर्त्तोंमें तिथिक्षयकी अवस्थामें अर्थात् उदयकालमें तिथिके न मिलनेपर तिथिमें तीन मुहूर्त्त रहते हैं—काल, आनन्द और अमृत। तिथि क्षयवाला दिन अशुभ इसीलिए माना गया है कि इसमें प्रातःकाल छ घटीतक काल मुहूर्त्त रहता है, जो समस्त कार्योंको बिगाड़नेवाला होता है। उदयकालमें छ घटा प्रमाण तिथिके होनेपर प्रथम आनन्द मुहूर्त्त आता है, तथा छ घटीके उपरान्त बारह घटीतक सिद्ध मुहूर्त्त रहता है जिसमें इसमें किये गये सभी कार्य सफल होते हैं। व्रतोपवास और धर्मध्यानकी क्रियाएँ भी सफल होती हैं, क्योंकि आनन्द और सिद्धमुहूर्त्त अपने नामके अनुसार ही फल देते हैं। मूलसंघके आचार्योंने इसी कारण व्रततिथिका प्रमाण छ घटा माना है। काष्ठासंघमें व्रततिथिका प्रमाण समस्त तिथिका दशांश माना गया है, यह भी इसी कारण युक्तिसंगत है कि सिद्ध मुहूर्त्ततक काष्ठासंघके आचार्योंने तिथिका ग्रहण किया है। जो बीसघटी प्रमाण व्रततिथिका मान मानते हैं, उनका मत सदोष प्रतीत होता है, क्योंकि काल और क्षयमुहूर्त्त, जो कि अपने नामके समान ही फल देते हैं, उनके द्वारा आनी हुई तिथिमें अन्तम विद्यमान रहते हैं। तिथि क्षयके दिन सबसे प्रथम काल मुहूर्त्त आता है, जो यथानाम तथा गुणवाला होता हुआ अमंगलकारक होता है। परन्तु तिथि क्षयके दिन मध्याह्नके उपरान्त काल मुहूर्त्तका प्रभाव घट जाता है और आनन्द तथा अमृत मुहूर्त्त अपना फल देने लगते हैं। आचार्योंने एक दिन पहले जो व्रत करनेकी विधि बतलायी है, उसका अर्थ यह है कि पहले दिनवाली तिथिका

अन्तिम मुहूर्त, जो कि अमृत संज्ञक कहा गया है, व्रत तिथिके दिनके लिए फलदायक हो जाता है।

व्रततिथिकी व्यवस्था

अवाप्य यामस्तमुपैति सूर्यस्तिथि मुहूर्तत्रयवाहिनीं च।
धर्मेषु कार्येषु वदन्ति पूर्णा तिथि व्रतमानधरा मुनीशा ॥

व्याख्या —या तिथिम् अवाप्य प्राप्य सूर्योऽस्तं याति, अस्तमुपगच्छति। कथम्भूता तिथि प्रातर्मुहूर्त्तत्रयव्यापिनीम्, चकारात् मूलमधरता व्रतज्ञानधरा मुनीश्वरा, उदय व्यापिनीमपि तिथि गृह्णन्ति। यथा पूर्वमुदयकालव्यापिनी तिथिर्गृहीता, चकारात् अस्तकालव्यापिन्या तिथेरपि ग्रहण भविष्यति तथैवात्रापि अवधेयम्। ता पूर्वोक्ता तिथिम् अखिलेषु धर्मेषु कार्येषु गौतमादिगणेश्वरा पूर्णा वदन्ति ॥

अर्थ—प्रातःकालमें तीन मुहूर्त्त रहनेवाली जिस तिथिको प्राप्तकर सूर्य अस्त होता है, धर्मादि कार्योंमें वह तिथि पूर्ण मानी जाती है, इस प्रकारका कथन व्रत धारण करनेवाले मुनीश्वरोंका है। इस श्लोकमें 'च' शब्द आया है, जिसका अर्थ यह है कि सूर्यास्तसे पूर्व तीन मुहूर्त्त रहनेवाली तिथि भी नैमित्तिक व्रतोंके लिए ग्राह्य है। तात्पर्य यह है कि इस श्लोकके अनुसार व्रत तिथिका ज्ञान दोनों प्रकारसे ग्रहण किया गया है—*उदय और अस्तकालम रहनेवाली तिथिके अनुसार।* उदयकालके उपरान्त कम-से-कम तीन मुहूर्त्त—५ घटी ३६ पल प्रमाण विधेय तिथि के रहने पर ही व्रत ग्राह्य माना जाता है। इसी प्रकार व्रतवाली तिथिके सूर्योदयके पहले तक रहनेपर भी नैमित्तिक व्रतोंके लिए तिथि ग्राह्य मान ली गयी है।

विवेचन—व्रत ग्रहण और व्रतोद्यापनके लिए इस श्लोकम तिथिका विधान किया गया है। यद्यपि सामान्यत व्रतके लिए कितनी तिथि ग्राह्य होती है, इसका विचार पहले खूब किया जा चुका है। इस समय व्रत ग्रहण और उद्यापनके लिए कितनी तिथि ग्रहण करनी चाहिए,

आचार्य विधान बतलाते हैं। व्रत ग्रहण और व्रतोद्यापनके लिए दैव सिक और नैशिक व्रतोंके निमित्त पृथक् पृथक् तिथिका विधान बतलाते हैं। प्रथम नियम तो यह है कि सूर्योदय कालके उपरान्त ढाई घण्टे तक व्रतकी विधेय तिथि हो तो व्रतका प्रारम्भ और उद्यापन करना चाहिए किन्तु यह नियम दैवसिक व्रतोंके लिए ही है, नैशिक व्रतोंके लिए नहीं नैशिक व्रतोंका यह है कि सूर्योदयके पूर्व जो तिथि ढाई घण्टे रही हो वही ग्राह्य हो सकती है। उदाहरण—भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी बुधवारको प्रातःकाल १०।१५ घट्यादि है और भाद्रपद चतुर्थी मगलवारको १८।१० घट्यादि है। अब विचारणीय यह है कि दैवसिक व्रतोंके लिए किस दिन पञ्चमी मानी जायगी और नैशिक व्रतोंके लिए किस दिन। बुधवारको १०।१५ घट्यादि मान पञ्चमीका है, इस दिन सूर्य पञ्चमीके इस मानके साथ अस्त होता है अतः दैवसिक व्रतोंके लिए बुधवारकी ही पञ्चमी ग्राह्य होगी।

नैशिक व्रतोंके लिए मगलवारकी पञ्चमी ग्राह्य नहीं हो सकती है क्योंकि मगलवारको उदयके पूर्व पञ्चमी नहीं रहती है, किन्तु सोमवारको उदयके पश्चात् और मगलवारको उदयके पूर्व ही पञ्चमी रहती है। अतः नैशिक व्रतोंके लिए पञ्चमी सोमवारकी ग्रहण की जायगी। मूलसंघके आचार्योंने उदयमें रहनेवाली छः घटी प्रमाण या इससे अधिक तिथिको दैवसिक और नैशिक दोनों ही प्रकारके व्रतोंके लिए ग्राह्य माना गया है। इस प्रकारसे एक ही प्रकारका तिथिमान स्वीकार कर लेनेसे पूर्वापर विरोध नहीं आता है तथा तिथि भी व्रतके लिए सब प्रकारसे ग्राह्य मान ली जाती है।

तथा चोक्तं पद्मदेवोपरि कर्णामृतपुराणे सप्तमस्कन्धे
"यथोक्तविधिना तिथ्युदये व्रतविधिं चरेत्"।
अखण्डवर्तिमार्त्तण्ड यद्यखण्डा तिथिर्भवेत्।
व्रतमारम्भणं तस्यामनस्तसुखमुक्त्युत् ॥

अर्थ—कर्णामृतपुराणके सप्तम स्कन्धमें भी कहा गया है कि पद्मदे

मात्र तिथिको प्रमाण व्रतके लिए मानना चाहिए। व्रतकी तिथिके दिन कही हुई व्रतविधिके अनुसार व्रतका आचरण करना चाहिए।

जिस दिन सूर्योदयकालमें तिथि षष्ठांशमात्र हो अथवा समस्त दिन तिथि रहे, उस दिन वह तिथि अखण्डा—सकला कहलाती है। इस सकला तिथिको गुरु और शुक्रके उदय रहते हुए व्रतको ग्रहण करनेकी क्रिया करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि व्रत ग्रहण करने और उद्यापन करनेके समय गुरु और शुक्रका अस्त रहना उचित नहीं है। इन दोनों ग्रहोंके उदित रहनेपर ही व्रतोंका ग्रहण और उद्यापन किया जाता है।

विवेचन—अपनी-अपनी गतिसे चलनेवाले ग्रह जब सूर्यके निकट पहुँचते हैं, तो लोगोंकी दृष्टिसे ओझल हो जाते हैं, इसीका नाम ग्रहोंका अस्त होना कहलाता है। जब ये ही ग्रह अपनी अपनी गतिसे चलते हुए सूर्यसे दूर निकल जाते हैं, तो लोगोंको दिखलायी पड़ने लगते हैं, यही ग्रहोंका उदय होना कहलाता है। वास्तवमें ग्रह न उदय होते हैं और न अस्त। केवल सूर्यके प्रकाशमें आच्छादित हो जाते हैं तथा सूर्यसे आगे पीछे होनेपर दृश्य होते हैं।

मंगल, गुरु और शनि सूर्यसे अल्प गतिवाले हैं, अतः अस्त होनेपर सूर्य ही इनसे आगे निकल जाता है। बुध सूर्यसे तेज गतिवाला है, अतः वह अस्त होनेपर सूर्यसे आगे निकल जाता है। यद्यपि मध्यम रवि, शुक्र और बुध तुल्य ही होते हैं, फिर भी स्पष्ट रवि और स्पष्ट बुध शीघ्र फलान्तरके तुल्य आगे पीछे रहते हैं। जब दोनों एकत्रित हो जाते हैं, तो बुध अस्त माना जाता है। बुधके पूर्व दिशामें अस्त होनेके बाद ३२ दिनमें पश्चिममें उदय, पश्चिमोदयसे ३२ दिनमें वक्री, वक्र होनेसे ३ दिनमें पश्चिममें अस्त, अस्तसे १६ दिनमें पूर्व दिशामें उदय, उदयसे ३ दिनमें मार्ग, मार्गसे ३२ दिनमें पूरब ही अस्त होता है। शुक्रका पूर्वास्तसे २ मासमें पश्चिमोदय, उसके बाद ८ मासमें वक्र, वक्रमें २२।३० दिनमें पश्चिममें अस्त, अस्तसे साढ़े सात दिनमें पूर्वदिशामें उदय, उदयसे पौन-मासमें मार्ग, मार्गसे ८ महीनेमें फिर पूर्वमें अस्त होता है।

मंगलका अस्तके बाद ४ मासमें उदय, उदयसे १० मासमें वक्र, वक्रसे २ मासमें मार्गी, मार्गीसे १० मासमें फिर अस्त होता है। बृहस्पतिका अस्तसे १ मासमें उदय, उदयसे सवाचार मासमें वक्र, वक्रसे ४ मासमें मार्गी, मार्गीसे सवाचार मासमें अस्त होता है। शनिके अस्तसे सवामासमें उदय, उदयसे साढ़ेतीन मासमें वक्र, वक्रसे साढ़े चार मासमें मार्गी, मार्गीसे साढ़े तीनमासमें फिर अस्त होता है। इस प्रकार उदय-अस्तकी परिपाटी चलता रहता है। आचार्यने बतलाया है कि शुक्र और गुरुके अस्त होनेपर उद्यापन और व्रत ग्रहण करना वर्ज्य है। दशलक्षण, षोडशकारण, रत्नत्रय, रत्नावलि, एकावली, द्विकावली, मुक्तावली आदि व्रतोंके ग्रहण करनेके लिए यह आवश्यक है कि गुरु और शुक्र उदित अवस्थामें रहें। इनके अस्त रहनेपर शुभ-कृत्य करना वर्जित है।

गुरु और शुक्रके अस्त होनेपर प्रतिष्ठा, मन्दिर निर्माण, विधान, विवाह, यज्ञोपवीत आदि कार्य भी नहीं किये जाते हैं। गणितसे शुक्रास्त और गुरु अस्तका प्रमाण केन्द्रांश बनाकर निकाला जाता है। इन दोनों ग्रहोंके अस्त होनेपर शुभ कृत्य वर्ज्य माने गये हैं। शेष ग्रहोंके अस्त कालमें शुभ कृत्य सम्पन्न किये जाते हैं। आरम्भसिद्धि नामक ग्रन्थमें उदयप्रभसूरिने शुक्र और गुरुके उदय होनेपर भी उनका बाल्यकाल माना है। इस बाल्यकालमें भी शुभ कृत्योंके करनेका निषेध किया गया है। अस्त होनेके पूर्व इनकी वृद्धावस्थाका काल भी माना गया है, जिस कालमें सभी कृत्य करना वर्ज्य माना है। "गुरुशुक्रयोरस्तमयोरपि दिशोऽदयेऽस्ते च बाल्यं वार्द्धक्यं च सप्ताहमवादु। अनयोः बाल्ये वार्धक्ये च सति शुभकार्यं न करणीयम्" अर्थात् उदय होनेपर भी गुरु और शुक्रका बाल्यकाल एक सप्ताह माना गया है। इस कालमें शुभ कृत्य करनेका निषेध किया गया है।

कुछ आचार्योंने शुक्रका पूर्व दिशामें पाँच दिन तक बाल्यत्व काल¹

---

¹ जीव शुक्रोऽह्नानि पञ्च प्रतीच्यां प्राच्यां बाल्यमोनदशाहं द्वेय ।
स्त्रियाः येन शानि दिनैश्चरात्य, पञ्च जीवोऽन्ये तु सप्ताहमाहुः ॥
—आरम्भसि० पृ० २००

माना है तथा तीन दिन वार्धक्यकाल स्वीकार किया है। ये दोनों ही काल शुभ कार्योंके लिए त्याज्य हैं। कुछ लोग कहते हैं कि पूर्वमें उदय होनेपर शुक्रका बाल्यकाल तीन दिन और पश्चिममें उदय होनेपर नौ दिन बाल्य काल रहता है। पूर्वमें शुक्र अस्त होनेपर पन्द्रह दिन वार्धक्य काल और पश्चिममें अस्त होनेपर पाँच दिन वार्धक्यकाल होता है। गुरुका भी तीन दिन बाल्यकाल और पाँच दिन वार्धक्य काल होता है। बाल्य और वार्धक्य कालमें शुभ कार्योंका करना त्याज्य माना है।

ज्योतिषमें प्रत्येक शुभ कार्यके लिए शुक्र और गुरुका बल, चन्द्रशुद्धि और सूर्य शुद्धि ग्रहण की जाती है। इन ग्रहोंके बलके बिना शुभ कार्यों का करना त्याज्य माना है। चन्द्रशुद्धिमें तिथि, नक्षत्र, योग, करण और वारकी शुद्धि अभिप्रेत है तथा विशेष रूपसे चन्द्र राशिका विचार कर उसके शुभाशुभत्वके अनुसार फलको ग्रहण करना है। चन्द्र शुद्धि प्रत्येक कार्यमें ली जाती है। तिथ्यादिकी शुद्धि लेना तथा उसके बला बलत्वका विचार करना एवं सूक्ष्म विचारके लिए मुहूर्त मानके आधार पर शुभाशुभत्वको ग्रहण करना चन्द्र शुद्धिमें अभिप्रेत है। यात्रा, विवाह, उपनयन, प्रतिष्ठा, गृहनिर्माण, गृहप्रवेश आदि समस्त कार्योंके लिए चन्द्र शुद्धिका विचार करना आवश्यक है।

सूर्य शुद्धि भी प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण माङ्गलिक कार्योंमें ग्रहण की गयी है। यद्यपि चन्द्रमाकी अपेक्षा सूर्यका स्थान महत्त्वपूर्ण है फिर भी छोटे-बड़े सभी कार्योंमें इसके अनुकूलत्व और प्रतिकूलत्वका विचार नहीं किया गया है। सूर्यशुद्धिमें सूर्यकी राशिका शुभाशुभत्व तथा चान्द्र-मास और चान्द्रतिथिपर पड़नेवाले सूर्यके प्रभावका विचार किया जाता है।

गुरु और शुक्रकी शुद्धि तो देखी ही जाती है, पर विशेषतः इनके बलाबलत्वका विचार किया जाता है। शुक्रकी अपेक्षा गुरुकी शुद्धि अधिक माङ्गलिक कार्योंके लिए ग्रहण की गयी है। जब तक गुरु अनुकूल नहीं होता है तब तक विवाह, प्रतिष्ठा, उपनयन एवं व्रत ग्रहण आदि कार्य

सम्पन्न नहीं किये जाते हैं, अतः व्रतके लिए गुरु और शुक्रके अस्तका विचार करना आवश्यक है।

प्रतिपदा और द्वितीया तिथिके व्रतकी व्यवस्था

नियो पद्घाशोऽपि व्रतकरणे सादरमत,
व्रतशुद्धोद्धर्यै सततमुदये नियत यत ।
विहायेन्दुं पूर्णं करनिकरविध्वस्ततिमिरं,
द्वितीयेन्दु सर्वं कनकनिचयामोऽपि नमित ॥

अर्थ—व्रत करनेवाले नम्रीभूत श्रावकको सर्वदा व्रतकी शुद्धिके लिए उदय कालमें रहनेवाली पचास प्रमाण तिथिको ग्रहण करना चाहिए। अपनी किरणोंके समुदायसे अन्धकारको दूर करनेवाले पूर्ण चन्द्रमाको छोड़ अर्थात् प्रतिपदा तिथिके दिन तथा द्वितीयाके दिन सूर्योदय कालमें रहनेवाली पचास प्रमाण तिथिको ही व्रतके लिए ग्रहण करना चाहिए।

विवेचन—शास्त्रमवके आचार्योंने पूर्णिमा, प्रतिपदा एवं द्वितीया तिथिमें होनेवाले व्रतोंकी व्यवस्था करते हुए बताया है कि समस्त तिथि का पचासमात्र व्रतके लिए ग्राह्य है। इसकी उपपत्ति बतलाते हुए उन्होंने कहा है कि तीस मुहूर्तोंका एक दिन—अहोरात्र होता है। इन तीस मुहूर्तोंमें से पन्द्रह मुहूर्त दिनमें और पन्द्रह मुहूर्त रातमें होते हैं। रौद्र, श्वेत मैत्र, सारभट, दैत्य, वैरोचन, वैश्वदेव, अभिजित्, रोहण, बल, विजय, नैऋत्य, वरुण, अर्यमन् और भाग्य ये मुहूर्त प्रत्येक तिथिमें दिनको रहते हैं।[1]

रात्रिमें[2] सावित्र, ध्रुव, दात्रक, यम, वायु, हुताशन, भानु, वैजयन्त,

---

१—रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च ततः सारभटोऽपि च ।
दैत्यो वैरोचनश्चान्यो वैश्वदेवोऽभिजित्तथा ॥
रोहणो बलनामा च विजयो नैऋतोऽपि च ।
वरुणश्चार्यमा च स्युर्भाग्यः पञ्चदशो दिने ॥

२—सावित्रो ध्रुवसंज्ञश्च दात्रको यम एव च ।
वायुर्हुताशनो भानुर्वैजयन्तोऽष्टमो निशि ।

सिद्धार्थ, सिद्धसेन, विक्षोभ, योग्य, पुष्पदन्त, सुगन्धर्व और अरुण ये पन्द्रह मुहूर्त रहते हैं। प्रत्येक मुहूर्त दोघटी प्रमाण कालतक रहता है। कुछ आचार्य दिनमें पाँच मुहूर्त्त ही मानते हैं तथा कुछ छ मुहूर्त्त। दिनके पन्द्रह मुहूर्त्तोंमें रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट और दैत्य आदिका गुण और स्वभाव बतलाते हुए कहा गया है कि प्रथम रौद्र मुहूर्त्त, जो कि उदयकालमें दोघटीतक रहता है, खर और तीक्ष्ण कार्योंके लिए शुभ होता है। इस मुहूर्त्तमें किसी विलक्षण असाध्य और भयकर कार्यको आरम्भ करना चाहिए। इस मुहूर्त्तका आदि भाग शुभ, मध्य भाग साधारण और अन्त भाग निकृष्ट होता है। इस मुहूर्त्तका स्वभाव उग्र, कार्य करनेमें प्रवीण, साहसी और वचक बताया गया है। दूसरे श्वेत मुहूर्त्तका आरम्भ सूर्योदयके दो घटी—४८ मिनटके उपरान्त होता है। यह भी दो घटी तक अपना प्रभाव दिखलाता है। इसका आदि भाग साधारण, शक्तिहीन, पर मागलिक कार्योंके लिए शुभ, नृत्य गायनमें प्रवीण, आमोद प्रमोदको रुचिकर समझनेवाला एव आह्लादकारी होता है। मध्यभाग इस मुहूर्त्तका शक्तिशाली, कठोर काय करनेमें समर्थ, दृढ स्वभाववाला, श्रमशील, दृढ अध्यवसायी एव प्रेमिल स्वभावका होता है। इस भागमें किये गये सभी प्रकारके कार्य सफल होते हैं। अन्तभाग निकृष्ट है।

तीसरा मुहूर्त्त सूर्यादयके एक घंटा ३६ मिनट पश्चात् आरम्भ होता है। यह भी दो घटी तक रहता है। यह मुहूर्त्त विशेष रूपसे पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशीको अपना पूर्ण प्रभाव दिखलाता है। इसका स्वभाव मृदु, स्नेहशील, कर्त्तव्यपरायण और धर्मात्मा माना है। इसके भी तीन भाग हैं—आदि, मध्य और अन्त। आदि भाग शुभ, सिद्धिदायक, मगलकारक एव कल्याणप्रद होता है। इसमें जिस कार्यका

सिद्धार्थ सिद्धसेनश्च विक्षोभो योग्य एव च।
पुष्पदन्त सुगन्धर्वो मुहूर्त्तोऽन्योऽरुणो मत ॥
—धवला टीका जि० ४ पृ० ३१८—१९

आरम्भ किया जाता है, वह कार्य अवश्य सफल होता है। तल्लीनता, और काम करनेमें रुचि विशेषत जाग्रत होती है। विघ्न बाधाएँ उत्पन्न नहीं होता।

तीसरे मुहूर्तका मध्यभाग सबल, विचारक, अनुरागी और परिश्रम मागनेवाला होता है। इसका स्वभाव उदासीन माना है। यद्यपि इसमें आरम्भ किये जानेवाले कार्योंमें नाना प्रकारकी बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि कार्य अधूरा ही रह जायगा, फिर भी काम अन्ततोगत्वा पूरा हो ही जाता है। इस भागका महत्त्व अध्ययन, अध्यापन एवं आराधनके लिए अधिक है। स्वाध्याय आरम्भ करनेके लिए यह भाग श्रेष्ठ माना गया है। जो व्यक्ति गणितसे तीसरे मुहूर्तके मध्यभागको निकालकर उसी समयमें विद्यारम्भ या अक्षरारम्भ करते हैं, वे विद्वान् बन जाते हैं। यों तो इस समस्त मुहूर्तमें सरस्वतीका निवास रहता है, पर विशेष रूपमें इस भागमें सरस्वतीका निवास है। तीसरे मुहूर्तका अन्तिम भाग व्यापार, अध्यवसाय, शिल्प आदि कार्योंके लिए प्रशस्त माना है। इस भागमें किये जानेवाले कार्य बहुत श्रमसे पूरे होते हैं। इस भागका स्वभाव मित्रवत्सर, लोकव्यवहारज्ञ और लोभी माना गया है। इसी कारण व्यापार और बड़े-बड़े व्यवसायोंके प्रारम्भ करनेके लिए इसे प्रशस्त बतलाया है। यह मुहूर्त स्थिरसंज्ञक भी है, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, कूपारम्भ, जिनालयारम्भ, धनोपार्जन आदि कार्य इस मुहूर्तमें विधेय माने गये हैं।

चौथा सारभट नामका मुहूर्त सूर्योदयके दो घण्टा ३६ मिनटके पश्चात् प्रारम्भ होता है। इसका समय भी दो घटी अर्थात् ४८ मिनट है। इस मुहूर्तकी विशेषता यह है कि प्रारम्भमें यह प्रमादी, उत्तर कालमें श्रमशील, विचारक और स्नेही होता है। इसके भी तीन भाग हैं—आदि, मध्य और अन्त। आदिभाग शक्तिशाली, अध्यवसायी, कार्यकुशल और लोकप्रिय होता है। इस भागमें कार्य करनेपर कार्य सफल होता है, किन्तु अध्यवसाय और परिश्रमकी आवश्यकता पड़ती

है। पूजा पाठ, धार्मिक अनुष्ठान एवं शान्ति पौष्टिक कार्योंके लिए यह ग्राह्य माना गया है। इसमें किये जाने पर उक्त कार्य प्रायः सफल होते हैं। यद्यपि कार्यके अन्त होने पर विघ्न बाधाएँ आती हुई दिखलाई पड़ती हैं, परन्तु अध्यवसाय द्वारा कार्य सिद्ध होनेमें विलम्ब नहीं लगता है।

चौथे मुहूर्तका द्वितीय भाग भी आनन्द सूचक है। इसके ५ पलों में अमृत रहता है। जो व्यक्ति इसके अमृत भागमें कार्य करता है या अपने आत्मिक उत्थानमें आगे बढ़ता है, वह निश्चय ही सफलता प्राप्त करता है। इसका तीसरा भाग, जिसे अन्त भाग कहा जाता है, साधारण है। इसमें कार्य करनेपर कार्यमें विशेष सफलता नहीं मिलती है। अधिक परिश्रम करनेपर भी फल अल्प मिलता है। जो व्यक्ति इस भागमें माङ्गलिक कार्य आरम्भ करते हैं, उनके वे कार्य प्राय असफल ही रहते हैं।

पाँचवाँ दैत्य नामका मुहूर्त है जो कि सूर्योदयके तीन घण्टा १२ मिनट पश्चात् प्रारम्भ होता है। यह शक्तिशाली, प्रमादी, क्रूर स्वभाव वाला और निद्रालु होता है। इसमें आदि भागमें कार्य आरम्भ करनेपर विलम्बसे होता है, मध्य भागमें कार्यमें नाना प्रकारके विघ्न आते हैं। चञ्चलता आदि रहता है तथा उग्र प्रकृतिके कारण झगड़े झंझट तथा अनेक प्रकारसे बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। अन्त भाग अशुभ होते हुए भी शुभ फलदायक है। इसमें श्रमसाध्य कार्योंको प्रारम्भ करना हितकारी माना गया है। जो व्यक्ति क्रूर और तीक्ष्ण कार्योंको अथवा उपयोगी कलाओंके कार्योंको आरम्भ करता है, उसे इन कार्योंमें बहुत सफलता मिलती है।

छठवाँ वैरोचन मुहूर्त सूर्योदयके चार घण्टेके उपरान्त आरम्भ होता है। इस मुहूर्तका स्वभाव अभिमानी, महत्त्वाकांक्षी और प्रगतिशील माना गया है। इसका आदिभाग सिद्धिदायक, मध्यभाग हानिप्रद और अन्त भाग सफलतादायक होता है। इस मुहूर्तमें दान, अध्ययन, पूजा-

पाठके कार्य विशेष रूपसे सफल होते हैं। जो व्यक्ति एकाग्रचित्तसे इस मुहूर्तमें भगवान्का भजन, पूजन, स्मरण और गुणानुवाद करता है, वह अपने लौकिक और पारलौकिक सभी कार्योंमें सफलता प्राप्त करता है। इस मुहूर्तका उपयोग प्रधान रूपसे धार्मिक कृत्योंमें करना चाहिए।

सातवाँ मुहूर्त वैश्वदेव नामका है, इसका प्रारम्भ सूर्योदयके चार घण्टे ४८ मिनटके उपरान्त होता है। यह मुहूर्त विशेष शुभ माना जाता है, परन्तु कार्य करनेमें सफलता सूचक नहीं हैं। इस मुहूर्तका आदिभाग निकृष्ट, मध्य भाग साधारण और अन्त भाग श्रेष्ठ होता है। आठवाँ अभिजित् नामका मुहूर्त है। यह सर्वसिद्धिदायक माना गया है। इसका प्रारम्भ सूर्योदयके ५ घंटा ३६ मिनटके उपरान्त माना जाता है। परन्तु गणितसे इसका साधन निम्न प्रकारसे किया जाता है—

रविवारको २० अंगुल लम्बी सीधी लकड़ी, सोमवारको १६ अंगुल लम्बी लकड़ी, मंगलको १५ अंगुल लम्बी, बुधवारको १४ अंगुल लम्बी, गुरुवारको १३ अंगुल लम्बी, शुक्र और शनिवारको १२ अंगुल लम्बी चिकनी तथा सीधी लकड़ीको पृथ्वीमें खड़ी करे, जिस समय उस लकड़ी की छाया लकड़ीके मूलमें लगे उसी समय अभिजित् मुहूर्तका प्रारम्भ होता है। इसका आधा भाग अर्थात् एक घटी प्रमाण काल समस्त कार्योंमें अभूतपूर्व सफलता देनेवाला होता है। अभिजित् रविवार, सोम वार आदिको भिन्न-भिन्न समयमें पड़ता है। इसका कार्य-साफल्यके लिए विशेष उपयोग है। प्रायः अभिजित् ठीक दोपहरको आता है, यही सामायिक करनेका समय है। आत्मचिन्तन करनेके लिए अभिजित् मुहूर्त का विधान ज्योतिष-ग्रन्थोंमें अधिक उपलब्ध होता है।

नौवाँ मुहूर्त रोहण नामका है, इसका स्वभाव गम्भीर, उदासीन और विचारक है। यह समस्त तिथिका शासक माना गया है। यद्यपि पाँचवाँ दैत्य मुहूर्त तिथिका अनुशासक होता है, परन्तु कुछ आचार्योंने इसी मुहूर्तको तिथिका प्रधान अंग माना है। इस मुहूर्तमें कार्य करने

पर कार्य सफल होता है। विघ्न बाधाएँ भी नाना प्रकार की आती हैं, फिर भी किसी प्रकारसे यह सफलता दिलानेवाला होता है। इसका आदिभाग मध्यम, मध्य भाग श्रेष्ठ और अन्तिम भाग निकृष्ट होता है। दसवाँ वलनामक मुहूर्त है, यह प्रकृतिसे निर्बुद्धि तथा सद्योगस बुद्धिमान् माना जाता है। इसका आदि भाग श्रेष्ठ, मध्यभाग साधारण और अन्त भाग उत्तम होता है। ग्यारहवाँ विजय नामक मुहूर्त है, यह समस्त कार्योंमें अपने नामके अनुसार विजय देता है। बारहवाँ नैर्ऋत् नामका मुहूर्त है, जो सभी कार्योंके लिए साधारण होता है। तेरहवाँ वरुण नामका मुहूर्त है, जिसमें कार्य करनेसे धन व्यय तथा मानसिक परेशानी होती है। चौदहवाँ अयमन् नामक मुहूर्त है, यह सिद्धिदायक होता है तथा पन्द्रहवाँ भाग्य नामक मुहूर्त है, जिसका अर्ध भाग शुभ और अर्धभाग अशुभ माना गया है।

इस प्रकार दिनके पन्द्रह मुहूर्तोंमेंसे पष्ठांश प्रभाव तिथिमें पाँच मुहूर्त आते हैं। प्रातःकालमें रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट और दैत्य ये पाँच मुहूर्त मध्यम मानसे सूर्योदयसे दस घटी समय तक रहते हैं। दैत्य मुहूर्त तिथिका शासक होता है, तथा पाँचों मुहूर्त दिनके तृतीयांश भाग में मुक्त होते हैं, अतः कम से कम तिथिका मान दस घटी या षष्ठांशमात्र मानना आवश्यक है, क्योंकि शासक मुहूर्तके आये बिना तिथि अपना प्रभाव ही नहीं दिखला सकती है। शासक मुहूर्त षष्ठांश प्रमाण तिथिके मानने पर ही आता है, अतः दस घटीसे न्यून तिथिका प्रमाण व्रतके लिए ग्राह्य नहीं किया जा सकता। व्रतविधिमें जाप, सामायिक, पूजापाठ, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ व्रतकी तिथिमें दैत्यमुहूर्त्त तक होनी चाहिए। क्योंकि समस्त तिथि दैत्य मुहूर्त्तके अनुसार ही अपना कार्य करती हैं। जिस व्रत तिथिमें पाँचवाँ मुहूर्त्त नहीं पड़ता है, वह तिथि व्रतके लिए ग्राह्य नहीं मानी जा सकती। आचार्य महाराजने इसी कारण तिथिके षष्ठांशके ग्रहण करनेपर ज़ोर दिया है।

तिथि-ह्रास होने पर तृतीया व्रतका विधान

तिथिनैष्फल्यतोऽथ तृतीया व्रतमुच्यते—
यणाश्रमेतराणां च युक्तं तृतीयाह्रासश्रम्।
इत्यनन्तव्रतारुयेति कृष्णसेनेन चोदितम् ॥

अर्थ—तिथि ह्रास होनेपर अथवा तिथिका घट्यात्मक मान कम होनेपर तृतीया व्रतका नियम कहते हैं—

यणाश्रमधर्मको न माननेवाले—श्रमण संस्कृतिके प्रतिष्ठापक तृतीया तिथिकी हानि होने पर द्वितीयाको व्रत करनेका विधान करते हैं। अनन्त व्रतका पालन करते हुए कृष्णसेनने इसका वर्णन किया है। तात्पर्य यह है कि मूलसंघके आचार्योंके मतमें तृतीया तिथिके ह्रास होनेपर अथवा तृतीयाका घट्यादि प्रमाण छ घटीसे अल्प होने पर द्वितीयाको ही व्रत कर लेना चाहिए।

विवेचन—ज्योतिषशास्त्रके अनुसार प्रतिपदा तिथि पूर्वाह्णव्यापिनी व्रतके लिए ग्रहण की जाती है। द्वितीया तिथि भी शुक्लपक्षमें पूर्वाह्ण व्यापिनी और कृष्णपक्षमें सर्वदिन व्यापिनी ली गयी है। "पूर्वद्युरसती प्रातः परेद्युस्त्रिमुहूर्त्तगा" अर्थात् जो द्वितीया पहले दिन न होकर अगले दिन वर्तमान हो तथा उदयकालमें कम-से-कम तीन मुहूर्त—६ घटी ३६ पल हो, वही व्रतके लिए ग्रहण करने योग्य है। द्वितीया तिथिको व्रतके लिए जैनाचार्योंने ६ घटी प्रमाण माना है। जो तिथि इस प्रमाणसे न्यून होगी, वह व्रतके लिए ग्राह्य नहीं हो सकती है। सर्वदिन व्यापिनी तिथिकी परिभाषा भी यही की गयी है कि समस्त तिथिका षष्ठांश प्रमाण जो तिथि उदयकालमें रहे, वह सर्वदिनव्यापिनी कहलाती है।

तृतीया तिथिको वैदिकधर्ममें व्रतके लिए परान्वित ग्रहण किया गया है[1]। इसका अभिप्राय यह है कि एक घटी प्रमाण या इससे अल्प

१—एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी।
अमावास्या तृतीया च ता उपोष्या परान्विता ॥
—नि० सि० पृ० २३

रहने पर भी तृतीया तिथि पराश्रित हो ही जाती है, अतः प्रातःकाल एकाध घटी तिथिके रहने पर भी व्रतके लिए उसका ग्रहण किया गया है। इस प्रकार वैदिक धर्ममें प्रत्येक तिथिको व्रतके लिए हीनाधिक मानके रूपमें ग्रहण नहीं किया गया है। प्रत्येक तिथिका मान व्रत कालके लिए अलग अलग बतलाया है। जैनाचार्योंने इसी सिद्धान्तका खण्डन किया है और सर्वसम्मतिसे व्रततिथिका मान छ घटी अथवा समस्त तिथिका षष्ठांश माना है। आचार्यने उपयुक्त श्लोकोंमें प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया तिथिके नियम निर्धारित करते हुए यही बताया है कि जो तिथि छ घटी प्रमाण नहीं है, वह चाहे पूर्वविद्ध हो, चाहे परविद्ध, व्रतके लिए ग्रहण नहीं की जा सकती है। निर्णयसिन्धुमें प्रत्येक तिथिकी जो अलग अलग व्यवस्था बतलायी है, वह युक्तिसंगत नहीं है। सामान्य रूपसे प्रत्येक व्रतके लिए छ घटी या समस्त तिथिका षष्ठांश ग्रहण करना चाहिए।

व्रतोंके भेद, निरवधि व्रतोंके नाम तथा कवलचान्द्रायणकी परिभाषा

व्रतानि कति भेदानि, इति चेदुच्यते—

सावधीनि, निरवधीनि, दैवसिकानि, नैशिकानि, मासावधिकानि, वात्सरिकानि, काम्यानि, अकाम्यानि, उत्तमार्थानि, इति नवधा भवन्ति। निरवधिव्रतानि कवलचान्द्रायणतपोऽञ्जलिजिनमुखावलोकनमुक्तावलीद्विकावल्येकावल्येककवलवृद्ध्याहारव्रतानि। अमावास्याया प्रोषध पुनः शुक्लपक्षे तु तन्न्यूनतप एककवलं यावत् एष निरवधिकवलचान्द्रायणाख्य व्रतं भवति, न तिथ्यादिको विधिर्भवति।

अर्थ—व्रत कितने प्रकारके होते हैं? आचार्य इस प्रश्नका उत्तर देते हैं। व्रतके नौ भेद हैं—सावधि, निरवधि, दैवसिक, नैशिक, मासावधि, वर्षावधि, काम्य, अकाम्य और उत्तमार्थ। निरवधि व्रतोंमें

कवलचान्द्रायण, तपोऽञ्जलि, जिनमुखावलोकन, मुक्तावली, द्विकावली, एकावली, मेरुपंक्ति आदि। अमावस्याका प्रोषधोपवास कर शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया आदि तिथियोंमें एक-एक कवलकी वृद्धि करते हुए पूर्णिमाको १५ ग्रास आहार ग्रहण करे। पश्चात् कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे एक एक कवल कम करते हुए चतुर्दशीको एक ग्रास आहार ग्रहण करे। अमावस्याको पारणा करे। इसमें तिथिकी विधि नहीं की जाती है। एकाध तिथिके घटने बढ़नेपर दिनसंख्याकी अवधिका इसमें विचार नहीं किया जाता है।

विवेचन—जिन व्रतोंके आरम्भ और समाप्त करनेकी तिथि निश्चित रहती है तथा दिनसंख्या भी निर्धारित रहती है, वे व्रत सावधि व्रत कहलाते हैं। दशलक्षण, अष्टाह्निका, रत्नत्रय, षोडशकारण आदि व्रत सावधि व्रत माने जाते हैं। क्योंकि इन व्रतोंके आरम्भ और अन्तकी तिथियाँ निश्चित हैं तथा दिनसंख्या भी निर्धारित है। जिन व्रतोंकी दिनसंख्या निर्धारित रहती है किन्तु आरम्भ और समाप्तिकी तिथि निश्चित नहीं है, वे व्रत निरवधिव्रत कहलाते हैं। जिन व्रतोंके क्रियाका महत्त्व दिनके लिए है, वे दैवसिक व्रत कहलाते हैं, जैसे पुष्पाञ्जलि, रत्नत्रय, अष्टाह्निका, अक्षयतृतीया, रोहिणी आदि।

जिन व्रतोंका महत्त्व रात्रिकी क्रियाओं और विधानोंके सम्बन्धके साथ रहता है, वे व्रत नैशिक व्रत कहलाते हैं। चन्दनषष्ठी, आकाश पञ्चमी आदि व्रत नैशिक माने गये हैं। महीनोंकी अवधि रखकर जो व्रत सम्पन्न किये जाते हैं, वे मासावधिक व्रत कहलाते हैं। संवत्सर पर्यन्त जो व्रत किये जाते हैं, वे सांवत्सरिक व्रत हैं। किसी फलकी प्राप्तिके लिए जो व्रत किये जाते हैं, वे काम्य तथा बिना किसी फल प्राप्तिके जो व्रत किये जाते हैं, वे अकाम्य कहलाते हैं। उत्तम फलकी प्राप्तिके लिए जो व्रत किये जाते हैं, वे उत्तमार्थ व्रत हैं। इस प्रकार नौ तरहके व्रत बतलाये गये हैं। इन व्रतोंके करनेसे उत्तम भोगोपभोगकी प्राप्ति होती है तथा कर्मोंकी निर्जरा होनेसे कर्मभार भी हलका होता है।

निरवधि व्रतोंमें कवलचान्द्रायण, तपोऽञ्जलि, जिनमुखावलोकन, मुक्तावली, द्विकावली, एकावली बताये हैं। कवलचान्द्रायण व्रतका प्रारम्भ किसी भी मासमें किया जा सकता है, यह अमावस्यासे आरम्भ होकर अगले महीनेकी चतुर्दशीको समाप्त होता है तथा अमावस्याको पारणा की जाती है। प्रथम अमावस्याको प्रोषधोपवास कर प्रतिपदाको एक ग्रास आहार, द्वितीयाको दो ग्रास, तृतीयाको तीन ग्रास, चतुर्थीको चार ग्रास, पञ्चमीको पाँच ग्रास, षष्ठीको छ ग्रास, सप्तमीको सात ग्रास, अष्टमीको आठ ग्रास, नवमीको नौ ग्रास, दशमीको दस ग्रास, एकादशीको ग्यारह ग्रास, द्वादशीको बारह ग्रास, त्रयोदशीको तेरह ग्रास, चतुर्दशीको चौदह ग्रास और पूर्णिमाको पन्द्रह ग्रास, प्रतिपदाको पुन चौदह ग्रास, द्वितीयाको तेरह ग्रास, तृतीयाको बारह ग्रास, चतुर्थीको ग्यारह ग्रास, पञ्चमीको दस ग्रास, षष्ठीको नौ ग्रास, सप्तमीको आठ ग्रास, अष्टमीको सात ग्रास, नवमीको छ ग्रास, दशमीको पाँच ग्रास, एकादशीको चार ग्रास, द्वादशीको तीन ग्रास, त्रयोदशीको दो ग्रास और चतुर्दशीको एक ग्रास आहार लेना चाहिए। अमावस्याके अनन्तर जिस प्रकार चन्द्रकलाओंकी वृद्धि होती है, आहारके ग्रासोंकी भी वृद्धि होती चली जाती है तथा चन्द्रकलाओंके घटनेपर ग्राससख्या भी घटती जाती है। इस व्रतका नाम कवलचान्द्रायण इसीलिए पड़ा है कि चन्द्रमाकी कलाओंकी वृद्धि और हानिके साथ भोजनके कवलोंकी हानि और वृद्धि होती है।

जिनमुखावलोकन व्रत भी भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे आश्विन कृष्णा प्रतिपदा तक किया जाता है। इस व्रतमें सबसे पहले श्रीजिनेन्द्रका दर्शन करना चाहिए, अन्य किसी व्यक्तिका मुँह नहीं देखना चाहिए। प्रतिपदाको प्रोषधोपवास कर, द्वितीयाको पारणा, तृतीयाको प्रोषधोपवास कर चतुर्थीको पारणा, पञ्चमीको प्रोषधोपवास कर षष्ठीको पारणा, सप्तमीको प्रोषधोपवास कर अष्टमीको पारणा, नवमीको प्रोषधोपवास कर दशमीको पारणा करनी चाहिए। इसी प्रकार एक दिन उपवास,

अगले दिन पारणा करते हुए भाद्रपद मासको बिताना चाहिए। पारणा के दिन एकाशन करना चाहिए। भोजनमें माड भात, या दूध अथवा छाछ ऐसा चाहिए। वस्तुओंकी संख्या भी भोजनके लिए निर्धारित कर लेनी चाहिए। यह व्रत कवलचान्द्रायणके समान भी किया जा सकता है। इसमें केवल विशेषता इतनी ही है कि प्रात जिनमुखका अवलोकन करना चाहिए। रातका अधिकांश भाग जागते हुए धर्मध्यानपूर्वक बिताना चाहिए।

मुक्तावली व्रत दो प्रकारका होता है—लघु और बृहत्। लघु व्रतमें नौ वर्ष तक प्रतिवर्ष नौ-नौ उपवास करने पड़ते हैं। पहला उपवास भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को, दूसरा आश्विन कृष्णा षष्ठी को, तीसरा आश्विन कृष्णा त्रयोदशीको, चौथा आश्विन शुक्ला एकादशीको, पाँचवाँ कार्तिक कृष्णा द्वादशीको, छठवाँ कार्तिक शुक्ला तृतीयाको, सातवाँ कार्तिक शुक्ला एकादशीको, आठवाँ मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशीको और नौवाँ मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीयाको करना चाहिए। मुक्तावली व्रतमें ब्रह्मचर्य सहित अणुव्रतोंका पालन करना चाहिए। रातमें उपवासके दिन जागरणकर धर्माचरन करना चाहिए। "ॐ ह्रां वृषभजिनाय नम" इस मंत्रका जाप करना चाहिए।

बृहत् मुक्तावली व्रत ३४ दिनोंका होता है। इस व्रतमें प्रथम एक उपवास कर पारणा, पुन दो उपवासके पश्चात् पारणा, तीन उपवासके पश्चात् पारणा, चार उपवासके पश्चात् पारणा तथा पाँच उपवासके पश्चात् पारणा करनी चाहिए। अब चार उपवासके पश्चात् एक पारणा तीन उपवासके पश्चात् पारणा, दो उपवासके पश्चात् पारणा एव एक उपवासके पश्चात् पारणा करनी होती है। इस प्रकार कुल २५ दिन उपवास तथा ९ दिन पारणाएँ; इस प्रकार कुल ३४ दिनों तक व्रत किया जाता है। इस व्रतमें लगातार दो, तीन, चार और पाँच उपवास करने पड़ते हैं, दिन धर्मध्यानपूर्वक बिताने पड़ते हैं तथा रातको जागकर आत्मचिन्तन करते हुए व्रतकी क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। इस व्रतका फल

विशेष बताया गया है। इस प्रकार निरवधि व्रतोंका अपने समयपर पालन करना चाहिए, तभी आत्मोत्थान हो सकता है। वृहद् मुक्तावली-में "ॐ ह्रा णमो अरहंताण ॐ ह्री णमो सिद्धाण ॐ ह्रू णमो आइरियाण ॐ ह्रौ णमो उवज्झायाण ॐ ह्र णमो लोए सव्व-साहूण' इस मंत्रका जाप करना चाहिए।

वृहद् मुक्तावली और लघुमुक्तावलि व्रतके मध्यमें एक मध्यम मुक्तावलि व्रत भी होता है। यह ६२ दिनोंमें पूर्ण होता है, इसमें ४९ उपवास और १३ पारणाएँ होती हैं। मध्यममुक्तावली व्रतमें भी वृहद्-मुक्तावली व्रतके मंत्रका जाप करना चाहिए। पारणाके दिन तीनों ही प्रकारके मुक्तावली व्रतमें भात ही लेना चाहिए।

तपोञ्जलि व्रतका लक्षण

किंनाम तपोऽञ्जलिर्व्रतम्? द्वादशमासेषु निशिजलपान न कर्त्तव्यमुपवासाश्चतुर्विंशतय कार्या, अष्टम्या चतुर्दश्या नैव नियम अष्टम्यामेव चतुर्दश्यामेवेति ॥

अर्थ—तपोऽञ्जलि व्रतकी क्या विधि है? कैसे किया जाता है? आचार्य कहते हैं कि बारह महीनों तक अर्थात् एक वर्ष पर्यन्त रातको पानी नहीं पाना और एक वर्षमें चौबीस उपवास करना तपोऽञ्जलि व्रत है। उपवास करनेका नियम अष्टमी और चतुर्दशीको ही नहीं है, प्रत्येक महीनेमें दो उपवास कभी भी किये जा सकते हैं।

विवेचन—आचार्यने तपोऽञ्जलि व्रतका अर्थ यह किया है कि रातको जल नहीं पीना, ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना, धर्मध्यान पूर्वक वर्षको बिताना। यह व्रत श्रावण मासकी कृष्णा प्रतिपदासे किया जाता है। इसका प्रमाण एक वर्ष है। व्रत करनेवाला दि० जैन मुनि या दि० जैन प्रतिमाके समक्ष बैठकर व्रतको विधिपूर्वक ग्रहण करता है। दो घटी सूर्य अस्त होनेके पूर्वसे लेकर दो घटी सूर्योदयके बाद तक जलपानका त्याग करता है। जलपानका अर्थ यहाँ हल्का भोजन नहीं है बल्कि जल पीने

का त्याग करना अभिप्रेत है। इस व्रतका धारी श्रावक रातको जल तो पीता ही नहीं, किन्तु ब्रह्मचर्यका भी पालन करता है। यद्यपि कहीं कहीं स्वदारसन्तोष व्रत रखनेका विधान किया है, पर उचित तो यही प्रतीत होता है कि एक वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर आत्मिक शक्तिका विकास किया जाय। ब्रह्मचर्यसे रहनेपर शरीर और मन दोनों स्वस्थ होते हैं।

वर्षा ऋतुसे व्रतारम्भ करनेका अभिप्राय भी यही है कि इस ऋतुमें पेटकी अग्नि मन्द हो जाती है, अत ब्रह्मचर्यसे रहनेपर शक्तिका विकास होता है। ब्रह्मचर्यके अभावमें वर्षा ऋतुमें नानाप्रकारके रोग हो जाते हैं, जिससे मनुष्य आत्मकल्याणसे वञ्चित हो जाता है। इस ऋतुमें रातको जल न पीना भी बहुत लाभप्रद है। नानाप्रकारके सूक्ष्म और बादर जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति इस ऋतुमें होती है, जिससे रातमें पीनेवाले जलके साथ वे पेटमें चले जाते हैं। भयंकर व्याधियाँ भी वर्षा ऋतुकी रातमें जल पीनेसे हो जाती हैं। तपोऽञ्जलि व्रतमें प्रत्येक मासमें दो उपवास स्वेच्छासे किसी भी तिथिको करने चाहिए।

प्रत्येक महीनेकी शुक्लपक्षकी अष्टमी और कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका नियम इस व्रतके लिए बताया गया है, परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं कि यह व्रत इन दोनों दिनोंमें होना ही चाहिए। प्रत्येक पक्षमें एक उपवास करना आवश्यक है, एक ही पक्षमें दो उपवास नहीं करने चाहिए। जो लोग अष्टमी और चतुर्दशीका उपवास करना चाहते हैं, उनको भी इस व्रतके लिए कृष्णपक्षमें अष्टमीका और शुक्लपक्षमें चतुर्दशीका अथवा शुक्लपक्षमें अष्टमीका और कृष्णपक्षमें चतुर्दशीका उपवास करना चाहिए। लगातार एक ही पक्षमें दो उपवास करनेका निषेध है। कोई भी व्यक्ति एक ही पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास नहीं कर सकता है। उपवासके लिए जिस प्रकार पक्षका पृथक् होना आवश्यक है, उसी प्रकार तिथिका भी। एक महीनेमें उपवासकी तिथियाँ एक नहीं हो सकती। जैसे कोई व्यक्ति कृष्णा पञ्चमीका उपवास करे, तो पुन शुक्लपक्षमें वह

पञ्चमीका उपवास नहीं कर सकता है। कृष्णपक्षमें पञ्चमीके उपवासके पश्चात् शुक्लपक्षमें उसे तिथि-परिवर्तन करना ही पड़ेगा। अत शुक्लपक्षमें पञ्चमीको छोड़ किसी भी अन्य तिथिको उपवास कर सकता है। इस व्रतमें प्रतिदिन 'ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नम' मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिए।

जिनमुखावलोकन व्रतकी विधि

किं नाम जिनमुखावलोकनं व्रतम्? को विधि? जिनमुखदर्शनानन्तरमाहारो यस्मिन् तज्जिनमुखावलोकन नामैतत् निरवधि व्रतम्। इद व्रत भाद्रपदमासे करणीयम्, प्रोषधोपवासानन्तर पारणा पुन प्रोषधोपवास, एवमेव प्रकारेण मासान्त पर्यन्तमिति।

अर्थ—जिनमुखावलोकन व्रत किसे कहते हैं? उसकी विधि क्या है? आचार्य उत्तर देते हैं कि प्रात काल जिनेन्द्रमुख देखनेके अनन्तर आहार ग्रहण करना जिनमुखावलोकन व्रत है। यह निरवधि व्रत होता है। यह व्रत भाद्रपद मासमें किया जाता है। प्रथम प्रोषधोपवास, अनन्तर पारणा, पुन प्रोषधोपवास पश्चात् पारणा, इसी प्रकार मासान्त तक उपवास और पारणा करते रहना चाहिए।

विवेचन—जिनमुखावलोकन व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ प्रचलित हैं। प्रथम मान्यता इस एक वर्ष पर्यन्त करनेकी है और दूसरी मान्यता एक मासतक करनेकी। प्रथम मान्यताके अनुसार यह व्रत भाद्रपद मासमें आरम्भ होकर श्रावण मासमें पूरा होता है और द्वितीय मान्यताके अनुसार भाद्रपद मासकी कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ होकर इस मासकी पूर्णिमाको समाप्त हो जाता है। एक वर्षतक करनेका विधान करनेवालोंके मतसे वर्षमें कुल ३६ उपवास और एक मासका विधान माननेवालोंके मतमें एक मासमें १५ उपवास करने चाहिए।

प्रथम मान्यता बतलाती है कि भाद्रपद मासकी प्रतिपदाको पहला

उपवास करना चाहिए पश्चात् इस मासमें किन्हीं भी दो तिथियोंको दो उपवास करने चाहिए। परन्तु इस बातका ध्यान सदा रखना होगा कि प्रत्येक मासमें कृष्णपक्षमें दो उपवास और शुक्लपक्षमें एक उपवास करना पड़ता है। इस मतके लिए कोई तिथि निर्धारित नहीं की गयी है। यह किसी भी तिथिको सम्पन्न किया जा सकता है। प्रथम मान्यताके अनुसार उपवासके दिन रातभर जागरण करते हुए प्रातःकाल श्रीजिनेन्द्र प्रभुके मुखका अवलोकन करना चाहिए। रातको 'ॐ अर्हद्भ्यो नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए। जिन दिनों उपवास नहीं करना है, उन दिनों भी उपर्युक्त मन्त्रका एक जाप अवश्य करना चाहिए। उपवासके दिन पञ्चाणु व्रतोंका पालन करना, विशेष रूपसे ब्रह्मचर्य धारण करना तथा पूजन-सामायिक करना आवश्यक है। जिस समय जिनमुखाव-लोकन किया जाता है, उस समय व्रत करनेवाला भगवान्‌के समक्ष दोनों घुटने पृथ्वीपर टेककर घुटनोंके बल बैठ जाता है अथवा सुखासन लगाकर बैठता है। व्रतीको भगवान्‌के समक्ष बैठते हुए निम्न मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिए।

'त्रैलोक्यवशङ्कराय केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीअर्हत्परमेष्ठिने नमः', 'संसारपरिभ्रमणविनाशनाय अभीष्टफलप्रदानाय धरणेन्द्रफणमण्डलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथस्वामिने नमः', 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उ सा नमः सर्वसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।' इन तीनों मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए अन्तिम मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिए। प्रोषधोपवासके दिन भी अन्तिम मन्त्रका तीनों सन्ध्याओंमें जाप करना आवश्यक है। उपवासके दूसरे दिन पारणा करते समय भोज्य वस्तुओंकी संख्या निर्धारित कर लेनी चाहिए।

दूसरी मान्यताके अनुसार भी उपवासके दिन 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उ सा नमः सर्वसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्रका तीनों सन्ध्याओंमें जाप करना चाहिए। अन्य दिनोंमें दिनमें एकबार इस मन्त्रका जाप किया जाता है। जिनेन्द्रभगवान्‌के दर्शनके अनन्तर

अन्य कार्योंका प्रारम्भ करना चाहिए। जिन मुखावलोकन व्रत निरवधि कहलाता है, क्योंकि दोनों ही मान्यताओंमें इस व्रतके लिए कोई तिथि निश्चित नहीं की गयी है। आचार्यने यहाँपर दूसरी मान्यताको प्रधानता दी है।

मुक्तावली व्रतकी विधि

का नाम मुक्तावली? कथं चेयं क्रियते सज्जनोत्तमैः? मुक्तावल्यामेकं द्वौ त्रयश्चत्वारः पञ्चोपवासाः, पश्चात् चत्वारः त्रयो द्वावेकः उपवासा भवन्ति। अस्य व्रतस्योपवासाः पञ्चविंशतिः पारणा नवदिनानि। इति चतुस्त्रिंशत् दिनानि। एतदपि निरवधि।

अर्थ—मुक्तावली व्रत किसे कहते हैं? यह सज्जन पुरुषोंके द्वारा कैसे किया जाता है? आचार्य कहते हैं कि मुक्तावली व्रतमें पहले एक उपवास, फिर दो उपवास, पश्चात् तीन उपवास, चार उपवास, अनन्तर पाँच उपवास किये जाते हैं। पाँच उपवासके पश्चात् चार उपवास, तीन उपवास, दो उपवास और एक उपवास किये जाते हैं। इस प्रकार व्रतके मध्यमें नौ बार पारणा और २५ दिन व्रत किया जाता है। इस व्रतकी गिनती भी निरवधि व्रतोंमें है।

विवेचन—मुक्तावली व्रतका अर्थ है मोतियोंकी लड़ी, जो व्रत मोतियोंकी लड़ीके समान हो, वही मुक्तावली है। मुक्तावली व्रतमें एक उपवाससे प्रारम्भ कर पाँच उपवास तक किये जाते हैं, पश्चात् पाँचपरसे घटते घटते एक उपवासपर आ जाते हैं। इस प्रकार यह व्रत गोल मालाके समान बन जाता है। २५ दिन उपवास करनेपर केवल नौ दिन पारणा करनी पड़ती है। इस व्रतके दिनोंमें णमोकार मन्त्रका तीन बार जाप करना चाहिए। व्रतके दिनोंमें कषाय और विकथाओंका त्याग करना चाहिए। इस व्रतके विधिपूर्वक धारण करनेसे सांसारिक उत्तम भोगोंको भोगनेके उपरान्त मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।

द्विकावली व्रत-विधि

द्विकावल्यां द्विकान्तरेणैकशादानोपवासाः, चतुःपञ्चाशत् कार्याः, न तिथ्यादिनियमः। मतान्तरेण द्विकावल्यां प्रत्येक मासे कृष्णपक्षे चतुर्थी पञ्चम्योः, अष्टमी-नवम्योः, चतुर्दश्यमावस्ययोः उपवासाः कार्याः। शुक्लपक्षे तु प्रतिपद् द्वितीययोः, पञ्चमी षष्ठ्योः, अष्टमी नवम्योः, चतुर्दशी-पूर्णिमयोः उपवासाः कार्याः। एवं प्रकारेण चतुरशीति पारणादिवसानि भवन्ति[१]।

अर्थ—द्विकावली व्रतमें दो उपवासके अनन्तर पारणा की जाती है। इसमें कुल ५४ उपवास होते हैं और ५४ दिन ही पारणा करनी पड़ती है। इसमें तिथि आदिका कोई नियम नहीं है। मतान्तरसे द्विकावली व्रतके प्रत्येक महीनेके कृष्णपक्षमें चतुर्थी पञ्चमी, अष्टमी नवमी, चतुर्दशी अमावास्या और शुक्लपक्षमें प्रतिपदा द्वितीया, पञ्चमी षष्ठी, अष्टमी-नवमी और चतुर्दशी पूर्णिमाका उपवास करना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक महीनेमें ७ उपवास तथा ७ एकाशन करने चाहिए। वर्षमें इस प्रकार ८४ उपवास और ८४ पारणाएँ होती हैं।

---

१ विधि दुकावली वरतकी श्री जिन भाखी ताम।
बेला सात जु मास में करिए सुणि तिय नाम॥
पखि श्वेत धरी व्रत लीजै, पडिवा दोयज बृद्धि कीज।
पुनि पाँचै पष्ठी जाणों, आठै नवमी छट्ठि ठाणो॥
चौदसि पूनु गिण लेह, बेला चहु परिवसि तइएह।
तिथि चौथी पाचमी कारी, आठै नौमी सुविचारी॥
चौदसि मावसि परवीन, पखि किसन करै छठ तीन।
इम सात मास एक माहीं, बारामासहि इक ठाहीं॥
चौरासी बेला कीजै, उद्यापन करि छाँडीजै।
इस व्रत तैं सुरसिर पावै, सुख को तहाँ वार न आवै॥
—क्रियाकोश

विवेचन—द्विकावली व्रतकी विधिके सम्बन्धमे दो मत प्रचलित हैं। पहला मत इस व्रतके लिए तिथिका कोई बन्धन नहीं मानता है। इसमें कभी भी दो दिन उपवास कर पारणा करनी चाहिए। इस प्रकार ५४ उपवास और ५४ पारणाएँ करके व्रतको समाप्त करना चाहिए। ५४ उपवास १६२ दिनमें सम्पन्न किये जाते हैं। उपवास करनेवाला प्रथम दो दिन उपवास, एक दिन पारणा, पुन दो दिन उपवास, एक दिन पारणा, इसी प्रकार आगे भी करता जाता है। इस प्रकार एक उपवासके सम्पन्न करनेमें तीन दिन लगते हैं, अत ५४ उपवासके ५४×३ = १६२ दिन हुए। उपवासके दिनोंमें शीलव्रतका पालन करते हुए तीनों समय प्रतिदिन—प्रात, मध्याह्न और सायंकाल 'ॐ ह्रा ह्रीं ह्रॅं ह्रों ह्र श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय सर्वशान्तिकराय सर्वक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय श्रीं क्लीं नम स्वाहा' मन्त्रका जाप करना चाहिए। यह मन्त्र तीनों सन्ध्याकालोंमें कमसे कम १०८ वार जपा जाता है।

उपवास और पारणाके लिए किसी तिथिका नियम नहीं है, फिर भी यह व्रत श्रावणमाससे आरम्भ किया जाता है। यह माघ मासकी द्वादशी तक किया जाता है। कुछ लोग इसे वर्ष भर करनेकी सम्मति देते हैं, उनका कहना है कि श्रावण माससे आरम्भ कर दो दिन उपवास, एक दिन पारणा इस क्रमसे वर्षान्त तक व्रत करते रहना चाहिए।

द्विकावली व्रतकी विधिके सम्बन्धमें दूसरी मान्यता यह है कि इस व्रतमे प्रत्येक मासमें सात उपवास किये जाते हैं, ये सात उपवास २१ दिनमें सम्पन्न होते हैं। दो दिन व्रत रखनेके उपरान्त पारणा करनी पड़ती है, इस प्रकार २१ दिनमें सात उपवास करनेके पश्चात् महीनेके शेष दिनोंमें एकाशन करना चाहिए। प्रथम उपवास कृष्णपक्षमें चतुर्थी-पञ्चमीका किया जायगा। षष्ठीको पारणा की जायगी, सप्तमीको एकाशन करनेके उपरान्त अष्टमी और नवमीको व्रत किया जायगा। इस व्रतकी दशमीको पारणा होगी, पुन एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशीको एकाशन करना होगा। चतुर्दशी और अमावस्याको उपवास, पुन शुक्लपक्षमें

प्रतिपदा और द्वितीयाका उपवास करना होगा। इस प्रकार व्रतमें एक बार चार दिनका उपवास पड़ेगा। एक पारणा बीचकी लुप्त हो जायगी। चार दिनोंके व्रतके उपरान्त तृतीया और चतुर्थीको एकाशन करना होगा। पंचमी और षष्ठीके उपवासके अनन्तर, सप्तमीको पारणा, पश्चात् अष्टमी और नवमीको उपवास करनेपर दशमी, एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशीको एकाशन करना चाहिए। प्रत्येक महीनेका अन्तिम उपवास शुक्लपक्षम चतुर्दशी और पूर्णिमाका करना होगा।

कुछ लोग इस व्रतको शुक्लपक्षसे आरम्भ करनेके पक्षम हैं। शुक्लपक्षसे आरम्भ करनेपर प्रथम बार चार दिन तक लगातार उपवास नहीं पड़ता है, क्योंकि चतुर्दशी और पूर्णिमाके उपवासके पश्चात् कृष्णपक्षमें चतुर्थी-पञ्चमीको उपवास करनेका विधान है। परन्तु इस क्रममें भी दूसरी आवृत्तिमें चार उपवास करना पड़ेगा।

द्वितीय मान्यतामें द्विकावली व्रतके लिए तिथियाँ निर्धारित की गयी हैं। अत इसमें भी छ घटी प्रमाण तिथिके होनेपर ही व्रत करना होगा। इस व्रतकी जाप-विधि सर्वत्र एक-सी ही है। कषाय और विकथाओंके त्यागपर विशेष ध्यान रखना चाहिए। द्विकावली व्रतका फल स्वर्ग मोक्षकी प्राप्ति होना है। जो श्रावक इस व्रतका अनुष्ठान ध्यानपूर्वक करता है तथा प्रमादका त्याग कर देता है, वह शीघ्र ही अपना आत्मकल्याण कर लेता है।

यों तो सभी व्रतों-द्वारा आत्मकल्याण करनेमें व्यक्ति समर्थ है, पर इस व्रतके पालन करनेसे समस्त मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं। किसी संकट या विपत्तिको दूर करनेके लिए भी यह व्रत किया जाता है। कुछ लोग इसे संकटहरण व्रत भी कहते हैं।

लघुद्विकावली

यह व्रत १२० दिनमें समाप्त होता है, इसमें २४ बेला, ४८ एकाशन और २४ पारणा इस प्रकार १२० दिन लगते हैं। प्रथम बेला, पुन

पारणा, तत्पश्चात् दो एकाशन करे इस प्रकार इस व्रतको पूर्ण करना चाहिए। इस व्रतमें णमोकार मन्त्रका जाप या पूर्वोक्त बृहद् द्विकावली मन्त्रका जाप करना चाहिए।

एकावली व्रतकी विधि और फल

किंनाम एकावलीव्रतम्? कथं च विधीयते व्रतिकै:? अस्य किं फलम्? उच्यते—एकान्तर्यामुपवासा एकान्तरेण चतुरशीति कार्या, न तु तिथ्यादिनियम। इदं स्वर्गापवर्गफलप्रदं भवति। इति निरवधिव्रतानि॥

अर्थ—एकावली व्रत क्या है? व्रती व्यक्तियोंके द्वारा यह कैसे किया जाता है? इसका फल क्या है? आचार्य कहते हैं कि एकावली व्रतमें एकान्तर रूपसे उपवास और पारणाएँ की जाती हैं, इसमें चौरासी उपवास तथा चौरासी पारणाएँ की जाती हैं। तिथिका नियम इसमें नहीं है। इस व्रतके पालनेसे स्वर्ग मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार निरवधि व्रतोंका वर्णन समाप्त हुआ।

विवेचन—एकावली व्रतकी विधि दो प्रकार देखनेको मिलती है। प्रथम प्रकारकी विधि आचार्य द्वारा प्रतिपादित है, जिसके अनुसार किसी तिथि आदिका नियम नहीं है। यह कभी भी एक दिन उपवास, अगले दिन पारणा, पुन उपवास, पुन पारणा, इस प्रकार चौरासी उपवास करने चाहिए। चौरासी उपवासोंमें चौरासी ही पारणाएँ होती हैं। इस व्रतको प्राय श्रावण माससे आरम्भ करते हैं। व्रतके दिनोंमें शीलव्रत और पञ्चाणुव्रतोंका पालन करना आवश्यक है।

दूसरी विधि यह है कि प्रत्येक महीनेमें सात उपवास करने चाहिए, शेष एकाशन, इस प्रकार एक वर्षमें कुल चौरासी उपवास करने चाहिए। प्रत्येक मासकी कृष्ण पक्षकी चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशी एवं शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशी तिथियोंमें उपवास करना चाहिए। उपवासके अगले और पिछले दिन एकाशन करना आवश्यक

है। शेष दिनोंमें भोज्य वस्तुओंकी संख्या परिगणित कर दोनों समय भी आहार ग्रहण किया जा सकता है। इस व्रतमें णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए।

सावधि व्रतोंके भेद

सावधीन्युच्यन्ते, तानि द्विविधानि, तिथिसावधिकानि दिनसंख्यासावधिकानि च। तिथिसावधिकानि कानि? सुखचिन्तामणिभावना पञ्चविंशतिभावना-द्वात्रिंशत्-सम्यक्त्वपञ्चविंशत्यादीनि णमोकारपञ्चत्रिंशत्कानि॥

अर्थ—सावधि व्रतोंका कहते हैं, ये दो प्रकारके होते हैं—तिथिकी अवधिसे किये जानेवाले और दिनोंकी अवधिसे किये जानेवाले। तिथिकी अवधिसे किये जानेवाले व्रत कौन-कौन हैं? आचार्य कहते हैं कि सुखचिन्तामणिभावना, पञ्चविंशतिभावना, द्वात्रिंशत्भावना, सम्यक्त्वपञ्चविंशति भावना और णमोकार पञ्चत्रिंशत् भावना।

विवेचन—जो किसी भी प्रकारकी अवधिको लेकर किये जाते हैं, वे सावधिक व्रत कहलाते हैं। यों तो सभी व्रतोंमें किसी न किसी प्रकार की मर्यादा रहती ही है, परन्तु सावधिक व्रतमें उन्हींकी गणना की गयी है, जिनमें तिथि आदिका विधान बिल्कुल निश्चित है। ऐसे व्रत सुखचिन्तामणि भावना, पञ्चविंशति भावना, द्वात्रिंशत् भावना, सम्यक्त्वपञ्चविंशति भावना, णमोकारपञ्चत्रिंशत् भावना आदि हैं। इन व्रतोंमें तिथिकी अवधिके अनुसार उपवास किए जाते हैं। समय मर्यादाके अतिक्रमण करनेपर इन व्रतोंका फल भी कुछ नहीं होता है। इनका फल समय—मर्यादापर ही आश्रित है। अतः ये व्रत तिथिसावधिक कहलाते हैं। क्रियाकोष आदि आचारके ग्रन्थोंमें इन व्रतोंकी विशेष विशेष विधियोंका निरूपण किया गया है। इस ग्रन्थमें पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित १०८ व्रतोंकी विधियोंका संक्षेपमें निरूपण किया है। व्रत विधियोंके सम्बन्धमें प्रकरणवश आगे विचार किया जायगा।

सुखचिन्तामणि व्रतका स्वरूप

उच्यते, सुखचिन्तामणौ चतुर्दशी चतुर्दशैक, एकादश्येका-दशक, अष्टम्यष्टकं, पञ्चमी पञ्चकं तृतीया त्रिकमेवमुपवासा एकचत्वारिंशत्। न कृष्णपक्षशुक्लपक्षगतो नियम, केवलं तिथि नियमस्य भवतीति उपवासा। अस्य व्रतस्य पञ्चभावना भवन्ति, प्रत्येकभावनायामभिषेको भवति।

अर्थ—सुखचिन्तामणि नामके व्रतको कहते हैं—सुखचिन्तामणि व्रतमें चतुर्दशियोंके चौदह उपवास, एकादशियोंके ग्यारह उपवास, अष्टमियोंके आठ, पञ्चमियाके पाँच उपवास, तृतीयाओंके तीन उपवास, इस प्रकार कुल ४१ उपवास करने चाहिए। इस व्रतमें कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षका कुछ भी नियम नहीं है, केवल तिथिका नियम है। उपवासके दिन व्रतकी विधेय तिथिका होना आवश्यक है। इस व्रतकी पाँच भावना होती हैं, प्रत्येक भावनामें एक अभिषेक किया जाता है। अभिप्राय यह है कि चौदह चतुर्दशियोंके व्रतके पश्चात् एक भावना, ग्यारह एकादशियोंके व्रतके पश्चात् एक भावना, आठ अष्टमियोंके व्रतके बाद एक भावना, पाँच पञ्चमियोंके व्रतके पश्चात् एक भावना एवं तीन तृतीयाओंके व्रतके पश्चात् एक भावना करनी पड़ती है। प्रत्येक भावनाके दिन भगवान्‌का अभिषेक करना पड़ता है।

विवेचन—सुखचिन्तामणि व्रतके लिए केवल तिथियोंका विधान है। यह व्रत तृतीया, पञ्चमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशीको किया जाता है। प्रथम इस व्रतका प्रारम्भ चतुर्दशीसे करते हैं, लगातार चौदह चतुर्दशी अर्थात् सात महीनेकी चतुर्दशियोंमें चतुर्दशीव्रत पूरा होता है। साथ ही चतुर्दशी व्रतके तीन उपवास हो जानेपर एकादशी व्रत प्रारम्भ होता है। जिस दिन एकादशी व्रत आरम्भ किया जाता है, उस दिन भगवान्‌का अभिषेक करते हैं तथा व्रतकी भावना भाते हैं। तीन चतुर्दशियोंके व्रतके उपरान्त एकादशी और चतुर्दशी दोनों व्रत अपनी अपनी तिथिमें साथ-साथ किये जाते हैं।

तीन एकादशी व्रत हो जानेके पश्चात् अष्टमी व्रत प्रारम्भ किया जाता है। जिस दिन अष्टमी व्रत प्रारम्भ करते हैं, उस दिन भगवान्‌का अभिषेक समारोहपूर्वक करते हैं। यह सदा स्मरण रखना होगा कि प्रत्येक व्रतके प्रारम्भमें अभिषेक १०८ कलशोंसे किया जाता है। तीन अष्टमी व्रत हो जानेके उपरान्त पञ्चमी व्रत प्रारम्भ करते हैं, इसके प्रारम्भ करनेकी विधि पूर्ववत् ही है। चतुर्दशी, एकादशी, अष्टमी और पञ्चमी ये व्रत एक साथ चलते हैं। दो पञ्चमीव्रतोंके हो जानेपर तृतीया व्रत आरम्भ होता है, इस दिन भी बृहद् अभिषेक, पूजन-पाठ आदि धार्मिक कृत्य किये जाते हैं। ये सभी व्रत तीन पक्षतक अर्थात् तीन तृतीया व्रतोंके सम्पूर्ण होनेतक साथ-साथ चलते हैं। तृतीयाके दिन ही इन व्रतोंकी समाप्ति होती है। इस दिन बृहद् अभिषेक समारोहपूर्वक करना चाहिए। उपवासके निमित्त 'ॐ ह्रीं सर्वदुरितविनाशनाय चतुर्विंशतितीर्थंकराय नमः' इस मन्त्रका जाप प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल करना चाहिए। सुखचिन्तामणि व्रत निश्चित तिथियोंमें ही सम्पन्न किया जाता है। यदि व्रतकी तिथि आगे पीछेके दिनोंमें होती है तो व्रत आगे-पीछे किया जाता है। यह व्रत चिन्तामणि रत्नके समान सभी प्रकारके सुखोंको देनेवाला है। भावनाके दिन चिन्तामणि भगवान् पार्श्वनाथकी पूजा विशेष रूपसे की जाती है तथा 'ॐ ह्रीं सर्वसिद्धिकराय पार्श्वनाथाय नमः' इस मन्त्रका जाप किया जाता है।

तिथिह्रास और तिथिवृद्धि होनेपर सुख-चिन्तामणि व्रतकी व्यवस्था

अधिकगृहीतानुक्ततिथौ को विधिरिति चेत्तदाह—तिथिह्रासे व्रतिके तद्‌दिदिनमारभ्य उपवासः कार्यः। अधिकतिथौ को विधिरिति चेत्तदाह—यथाशक्ति द्वितीयायां तिथौ पुनः पूर्वप्रोक्तो विधिः कार्यः, हीनत्वात्त्रिमुहूर्तत व्रतविधिर्न भवति।

अर्थ—सुखचिन्तामणि व्रतमें तिथिह्रास और तिथि वृद्धि होनेपर व्रत

करनेकी क्या विधि है ? तिथिह्रास होनेपर व्रत करनेवालोंको एक दिन पहले व्रत करना चाहिए।

तिथिवृद्धि होनेपर क्या व्यवस्था है—आचार्य कहते हैं कि तिथि वृद्धि होनेपर दूसरे दिन—बढ़े हुए दिन भी विधिपूर्वक व्रत करना चाहिए। यदि तिथि तीन मुहूर्त्त अर्थात् बढ़ी हुई तिथि छ घटीसे अल्प हो तो उस दिन व्रत नहीं करना चाहिए।

विवेचन—तिथिह्रास और तिथिवृद्धि होनेपर मुक्तचिन्तामणि व्रतमें उपवास निश्चित तिथिको करना चाहिए। जब तिथिकी वृद्धि हो, उस समय एक दिन तक उपवास करना पड़ेगा। परन्तु तिथि-वृद्धिमें इस बातका सदा ख्याल रखना पड़ेगा कि बढ़ी हुई तिथि छ घटीसे अधिक होनी चाहिए। छ घटीसे अल्प होनेपर उस दिन पारणा कर ली जायगी। तिथिह्रास अर्थात् जिस तिथिको व्रत करना है, उसीका ह्रास—क्षय हो तो उस तिथिके पहले वाली तिथिको व्रत करना होगा, क्योंकि व्रतकी तिथि उस दिन सूर्योदयमें न भी रहेगी तो भी अस्त कालमें अवश्य आ जायगी। अतएव एक दिन पहले व्रतवाली तिथिके वर्तमान रहनेसे व्रत एक दिन पूर्व करना होगा। सूर्योदय कालमें यदि व्रतकी तिथि छ घटी प्रमाण न हो तो भी व्रत एक दिन पहले करना पड़ेगा।

तिथिह्रासमें व्रततिथिकी व्यवस्था पहले ही बतलायी गयी है। जैनागममें सोदया तिथि वही मानी गयी है, जो उदयकालमें कमसे कम छ घटी प्रमाण हो। उदया तिथिके न मिलनेपर अस्तकालीन तिथि ग्रहण की जाती है। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि किसी व्यक्तिको चतुर्दशीसे मुक्तचिन्तामणि व्रत प्रारम्भ करना है। व्रत प्रारम्भके दिन चतुर्दशी उदयकालमें ८ घटी १० पल प्रमाण थी, अत व्रत कर लिया गया। अगली चतुर्दशी बुधवारको ३ घटी १० पल है और मंगलवारको त्रयोदशी ५ घटी १५ पल है। यहाँ यदि बुधवारको व्रत किया जाता है तो ३ घटी १० पल प्रमाण, जो कि उदयकालमें तिथिका

मान है; छ घटी प्रमाणसे अल्प है। अत बुधवारको चतुर्दशी सोदया नहीं कहलायेगी। व्रतके लिए तिथिका सोदया होना आवश्यक है, सोदया न मिलनेपर अस्त तिथि ग्राह्य की जाती है। इसलिए चतुर्दशी का व्रत मगलवारको ही कर लिया जायगा।

तिथि वृद्धि होनेपर दो दिन लगातार व्रत करनेकी बात आती है। मान लीजिए कि बुधवारको एकादशी ६० घटी ० पल है और गुरुवारको एकादशी ६।४० पल है। इस प्रकारकी स्थितिमें प्रथम तिथि एकादशी पूर्ण है, अत बुधवारको व्रत करना होगा। गुरुवारके दिन भी एकादशीका प्रमाण सोदया—छ घटीसे अधिक है, अत गुरुवारको भी उपवास करना पड़ेगा। इस प्रकार तिथिवृद्धिमे दो दिन लगातार उपवास करना पड़ता है। यदि यहाँपर गुरुवारके दिन एकादशी ५ घटी ४० पल ही होती, तो सोदया—छ घटी प्रमाण न होनेसे उपवासके लिए ग्राह्य नहीं थी। अतएव गुरुवारको पारणा की जा सकती है। उपवासका दिन केवल बुधवार ही रहेगा। इस प्रकार तिथिक्षय और तिथिवृद्धिमें सुखचिन्तामणि व्रतकी व्यवस्था समझना चाहिए।

अष्टाह्निकादि व्रतोंमे तिथि-क्षय होनेपर पुनः व्यवस्था

व्रतान्त व्रत कथ क्रियतेऽस्योपर्यन्युक्त च अपभ्रंशदूहा—
अट्ठिमजावय अट्ठणिय जाणियह मज्झे तिहि।
पडणहोइ तहयर आइह्य अतलौ वय ॥

व्याख्या—अष्टम्या यावत्पूर्णिमान्तं व्रत चाष्टाह्निक जानीहि। अस्य मध्ये तिथिपतनं भवति, तर्हि व्रतस्यादिदिनमारभ्य व्रतान्तमवलोक्येत्यर्थ ॥

अर्थ—यदि व्रतके मध्यमें तिथि-ह्रास हो तो व्रतकी समाप्ति किस प्रकार करनी चाहिए, इसके ऊपर अन्य आचार्यों-द्वारा कही गयी गाथा को कहते हैं—

अष्टमीसे लेकर पूर्णिमातक जो व्रत किया जाता है, उसे अष्टाह्निक व्रत कहते हैं। यदि इस व्रतके दिनोंमें किसी तिथिका ह्रास हो तो व्रत आरम्भ करनेके एक दिन पहलेसे लेकर व्रतकी समाप्तितक व्रत करना चाहिए।

तथान्यैरप्युक्ता गाथा—

वयविहीण च मज्झे तिहिए पडण वजाई होइ जई।
मूलदिण पारभिय अते दिवसम्मि होइ सम्मत्त॥

व्याख्या—व्रतविधीना च मध्ये तिथिपतन यदि भवेत्, तदा मूलदिने प्रारभ्य अन्त्ये दिवसे च भवति समाप्तमिति केचित्।

अर्थ—व्रत विधिके मध्यमें यदि किसी तिथिका ह्रास हो तो एक दिन पहले व्रत आरम्भ किया जाता है और व्रतकी समाप्ति अन्तिम दिन होती है। यही सम्यक्त्व है, ऐसा कुछ आचार्य कहते हैं।

मास अधिक होनेपर सावत्सरिक क्रिया कैसे करनी चाहिए।

मासाधिक्ये किं कर्त्तव्यमिति चेत्तदाह—

सवत्सरे यदि भवेन्मासो वै चाधिकस्तदा।
पूर्वस्मिन्न व्रत कार्यं त्वपरस्मिन् कृत शुभम्॥

अर्थ—अधिमास होनेपर व्रत कब करना चाहिए? आचार्य कहते हैं कि यदि वर्षमें एक मास अधिक हो तो पहले वाले मासमें व्रत नहीं करना चाहिए, किन्तु आगे वाले मासमे व्रत करना चाहिए।

विवेचन—सौर और चान्द्रमासमें अन्तर रहनेके कारण दो वर्ष छोड़कर तीसरे वर्षमें एक मासकी वृद्धि हो जाती है, जो अधिमास कह लाता है। इसका नाम शास्त्रकारोंने मलमास भी रखा है। यह अधिमास चैत्रसे लेकर आश्विन तक पड़ता है अर्थात् चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन ये ही महीने वृद्धिको प्राप्त होते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि सूर्य मन्द गतिसे गमन करता है और चन्द्रमा तेज गतिसे। इसलिए प्रति महीनेमें अधिशेषकी वृद्धि होती जाती है। जब

दो महीनोंमें एक सक्रान्ति पड़ती है, तब अधिमास आता है। बात यह है कि व्यवहारमें चन्द्रमास लिये जाते हैं, प्रतिपदासे लेकर पूर्णिमान्त चान्द्र मास गणना होती है। सौरमास सक्रान्तिसे लेकर सक्रान्ति तक होता है, यह पूरे ३० दिनका होता है। चान्द्रमास २९ दिनके लगभगका होता है तथा जिस दिन चान्द्रमास आरम्भ होता है, उस दिन सौरमास नहीं। सौर मास सदा चान्द्रमाससे आगे-पीछे आरम्भ होता है, इसी कारण तीन वर्षोंमें एक महीनेकी वृद्धि हो जाती है।

अधिमासका आनयन गणितसे निम्न प्रकार किया जाता है। दिनादि और अवमका योग करके दसगुणित वर्षगणमें जोड़कर तीसका भाग देने पर फल अधिमास संख्या होती है।

सावन दिन और चान्द्र दिनका अन्तर अवम होता है। इसलिए सावन दिन और अवमके योगसे चान्द्रदिन सिद्ध होते हैं।

एक वर्षमें सावनदिन=३६५।१५।३०।२२।३०

अवमदिन= ५।४८।२२।७।३०

एक वर्षमें चान्द्रदिन=३७१।३।५२।३०

,, सौरदिन=३६०।०।०।०

११।३।५२।३० एक वर्षमें इतने दिनादि बढ़ जाते हैं। इसका नाम वार्षिक अधिमास या शुद्धि है। क्योंकि सौर और चान्द्र दिनोंके अन्तरमें अधिमास होता है अथवा अनुपात करनेपर कि कल्पवर्षों में कल्पाधिमास तो एक वर्षमें क्या ? से भी उपर्युक्त वार्षिक अधिमास आ जाता है।

सावन दिन घटी आदि=०।१५।३०।२२।३०

अवम दिन घटी आदि=०।४८।२२।७।३०

अधिशेष=११।३।५२।३०=दिनादि+क्षयाद्यादि अथवा अनुपात किया-एक वर्ष में ११।३।५२।३० अधिमास आता है तो गत वर्षोंमें क्या ? यहाँ सुविधाके लिए गुणकके दो खण्ड कर दिये—एक १० का और

दूसरा पूर्वसाधित १।३।५२।३० का। इस प्रकार दिनादि और क्षयादिके योगमें दसगुणित वर्षसंख्या जोड़नेपर अधिदिन आये, इनमें तीसका भाग देनेपर अधिमास होता है।

अतः $\frac{\text{दिनादि}+\text{क्षयादि}+१० \times \text{वर्षगण}}{३०}$ = अधिमास। यहाँ शकाब्द-के अनुसार गणितकर कुछ अधिमासोंकी सूची दी जाती है।

शकाब्द	विक्रम सं०	अधिमास	शकाब्द	वि० स०	अधिमास
१८७२	२००७	आषाढ	१९२३	२०५८	आश्विन
१८७५	२०१०	वैशाख	१९२६	२०६१	श्रावण
१८७७	२०१२	भाद्रपद	१९२९	२०६४	ज्येष्ठ
१८८०	२०१५	श्रावण	१९३२	२०६७	वैशाख
१८८३	२०१८	ज्येष्ठ	१९३४	२०६९	आश्विन
१८८५	२०२०	आश्विन	१९३७	२०७२	आषाढ
१८८६	२०२१	चैत्र	१९४०	२०७५	ज्येष्ठ
१८८८	२०२३	श्रावण	१९४२	२०७७	आश्विन
१८९१	२०२६	आषाढ	१९४५	२०८०	श्रावण
१८९४	२०२९	वैशाख	१९४८	२०८३	ज्येष्ठ
१८९६	२०३१	आश्विन	१९५१	२०८६	चैत्र
१८९९	२०३४	श्रावण	१९५३	२०८८	आश्विन
१९०२	२०३७	ज्येष्ठ	१९५६	२०९१	आषाढ
१९०४	२०३९	आश्विन	१९५९	२०९४	ज्येष्ठ
१९०७	२०४२	श्रावण	१९६१	२०९६	आश्विन
१९१०	२०४५	ज्येष्ठ	१९६४	२०९९	श्रावण
१९१३	२०४८	वैशाख	१९६७	२१०२	ज्येष्ठ
१९१५	२०५०	आश्विन	१९७०	२१०५	चैत्र
१९१८	२०५३	आषाढ	१९७२	२१०७	आश्विन
१९२१	२०५६	ज्येष्ठ	१९७५	२११०	आषाढ

शकाब्द	विक्रम सं०	अधिमास	शकाब्द	विक्रम सं०	अधिमास
१९७८	२११३	वैशाख	१९८६	२१२२	ज्येष्ठ
१९८१	२११६	आश्विन	१९८९	२१२५	चैत्र
१९८३	२११९	श्रावण	१९९१	२१२७	श्रावण

इस प्रकार अधिमासका परिज्ञान कर जिस मासकी वृद्धि हो उसके अगलेवाले मासमें व्रत करना चाहिए। जैसे श्रावण मास अधिमास है तो दो श्रावणोंमेंसे पहले श्रावण मासमें व्रत नहीं किया जायगा, किन्तु दूसरे श्रावणमें व्रत करना पड़ेगा।

मास-क्षय होने पर व्रतके लिए व्यवस्था

मासहानौ किं कर्त्तव्यमिति चेत्तदाह—
संवत्सरे यदि भवेन्मासो वै हीयमानकः ।
पूर्वस्मिंश्च व्रतं कार्यं परस्मिन्न तु योग्यता ॥

अर्थ—मासहानिमें क्या करना चाहिए? उत्तर देते हैं कि संवत्सरमें यदि मासहानि हो तो पूर्वके महीनेमें व्रत करना चाहिए, आगेवाले महीनेमें नहीं। व्रतकी योग्यता पूर्वमासमें ही होती है, उत्तरमासमें नहीं।

विवेचन—जैसे अधिमास होता है, वैसे ही क्षयमास भी होता है। कभी कभी वर्षमें एक मासकी हानि हो जाती है। स्पष्टमानसे जिस समय चान्द्रमासके प्रमाणसे सौरमासका मान कम होता है, तब एक चान्द्रमासमें दो संक्रान्तियोंके सम्भव होनेसे क्षयमास होता है। यह सौरमास अल्प, तभी सम्भव है जब स्पष्ट रविकी गति अधिक हो। क्योंकि अधिक गति होनेपर थोड़े समयमें राशिभोग होता है। क्षयमास प्रायः कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौषमें ही होता है। क्षयमास जिस वर्षमें होता है, उस वर्षमें अधिमास भी होता है। मान लिया कि भाद्रपद अधिमास है, उस समय अधिशेष बहुत कम रहता है और क्रमशः घटता भी है, क्योंकि सूर्य अपने नीचके आसन्न है। अधिशेष जब घटते-घटते

शून्य हो जाता है, तब क्षयमास होता है। कारण स्पष्ट है कि चान्द्र मासमे रविमास कम होता है। क्षयमासके अनन्तर अधिमास दोष एक चान्द्रमासके आसन्न पहुँच जाता है। इसके पश्चात् जब सूर्य पुन अपने उच्चके आसन्न पहुँचता है, तब सौरमासके अल्प होनेके कारण पुन अधिमास हो जाता है। इस प्रकार क्षयमास होनेपर दो अधिमास होते हैं। यदि पहला अधिमास भाद्रपदको मान लिया जाय तो दूसरा अधि मास चैत्रम पड़ेगा तथा अगहनमें क्षयमास होगा। क्षयमास १४१ वर्षके अनन्तर आता है। पिछला क्षयमास वि० स० १९३६ में पड़ा था अब अगला वि० स० २०२० में कार्त्तिकमें पड़ेगा। कभी-कभी क्षयमास १९ वर्षोंके बाद भी पड़ता है। यदि समय पर क्षयमास पडा तो ४३३ वर्षोंके पश्चात भी आता है।

यह नियम है कि जिस वर्ष क्षय मास पड़ेगा, उस वर्ष दो अधि मास अवश्य होंगे। क्षयमास पड़नेपर व्रत पिछले महीनेसे किया जाता है। मान लिया कि कार्त्तिक क्षयमास है। एकावली व्रत करनेवालेको कार्त्तिकके व्रत आश्विनमें ही कर लेने होंगे अथवा नक्षत्र आदि व्रत जो मासिक व्रत हैं, वे कार्त्तिकका अभाव होनेपर आश्विनमें किये जायँगे। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि जिस वर्ष क्षयमास होता है, उस वर्ष अधिमास पहले अवश्य पड़ता है और यह अधिमास भी नीचासन्न सूर्यके होनेपर अर्थात् भाद्रपद या आश्विनमें आयगा। इस प्रकार एक महीनेके बढ़ जानेसे तथा एक महीना घट जानेसे कोई विशेष गड़बड़ी नहीं होती है। व्रतके लिए बारह मास प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु विचारणीय बात यह है कि अधिमास पड़नेपर भी व्रतके लिए तो एक ही मास ग्राह्य है, दूसरा मास तो मलमास होनेके कारण त्याज्य है। अत एव क्षय मास होनेपर मासिक व्रत करनेवालोंको एक महीनेमें दुगुने व्रत करने पड़ेंगे।

दुगुने व्रत करनेके लिए क्षयमासके पहिलेका महीना ही लिया जायगा। क्षयमाससे आगेका महीना नहीं। जिन व्यक्तियोंको मासिक

व्रत प्रारम्भ करना है, उन्हें क्षयमासके पूर्ववर्ती महीनेसे व्रत प्रारम्भ करने चाहिए।

तिथिका प्रमाण

तिथिप्रमाणं कियदित्युक्ते चाह—चतु पञ्चाशात्घटीभ्यो न्यूना तिथिर्न भवति, अधिका तु सप्तषष्टिघटीप्रमाण कथितम्। यत जैनाना त्रिमुहूर्त्तोदयवर्त्तिनीतिथि सम्मता, अधिक तिथे प्रमाण तु सप्तषष्टिघटी, अहोरात्रप्रमाण षष्टिघटीमतमतः सप्तघटिकाभ्योऽधिका पारणादिने पारणा न कर्त्तव्या, यदा तु चतु, पञ्च घटिकाप्रमाण अपरदिने तिथि तदा तस्मिन्नेव दिने पारणा कार्या, नान्यत्र।

अर्थ—तिथिका प्रमाण कितना होता है? इस प्रकारका प्रश्न करने पर आचार्य उत्तर देते हैं—प्रत्येक तिथि ५४ घटीसे कम और ६७से अधिक नहीं होती है। जैनाचार्योंने उदयकालमें छ घटी प्रमाण तिथिका मान व्रतके लिए ग्राह्य बताया है। तिथिका अधिकतम मान ६७ घटी होता है। अहोरात्रका प्रमाण ६० घटी माना जाता है, अत पहले दिन कोई भी तिथि ६० घटीसे अधिक नहीं हो सकती। आगे दिन वृद्धि होनेपर वह तिथि अधिक-से अधिक ७ घटी प्रमाण रहेगी। ऐसी अवस्था में उस दिन व्रतकी पारणा नहीं की जायगी, किन्तु उस दिन भी व्रत रखना होगा। यदि वृद्धिगत तिथि छ घटीसे अल्प प्रमाण है तो उस दिन पारणा की जायगी, अन्य दिन नहीं।

विवेचन—गणितके अनुसार तिथिका प्रमाण अधिकसे अधिक ६७ घटी और कमसे कम ५४ घटी आता है। ५४ घटी प्रमाणसे अल्प घटी प्रमाण वाली तिथिका ह्रास या क्षय माना जाता है। यद्यपि सूर्योदयकाल में कम ही तिथियाँ ५४ घटी या इससे अधिक मिलेंगी; क्योंकि एक तिथिकी समाप्ति होनेपर दूसरी तिथिका आरम्भ हो जाता है। वास्तविक बात यह है कि प्रत्येक तिथिका मान गणितसे ६० घटी नहीं आता

है, जिससे सूर्योदयसे लेकर सूर्योदयकाल तक एक ही तिथि रह सके। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि मध्यम मानानुसार एक ही दिनमें तीन तिथियाँ भी रह जाती हैं तथा कभी दो दिन तक भी एक ही तिथि रह सकती है। आचार्यने ऊपर इसी तिथि-व्यवस्थाको बतलाया है।

व्रततिथि-निर्णयके सम्बन्धमें शंका-समाधान

अत्र संशयं करोति "पद्मदेवैः प्रायो धर्मेषु कर्मसु" इत्यत्र प्रायः इत्यव्ययं कथितम्, तस्य कोऽर्थः, उच्यते देशकालादिभेदात् तिथिमानं ग्राह्यम्।

अर्थ—यहाँ कोई शंका करता है कि पद्मदेवने तिथिका मान छः घटी बतलाते हुए कहा है कि प्रायः धर्मकृत्योंमें इसी तिथिमानको ग्रहण करना चाहिए। यहाँ प्रायः शब्द अव्यय है, इसका क्या अर्थ है? क्या छः घटीसे हीनाधिक प्रमाण भी व्रतके लिए ग्रहण किया गया है? आचार्य उत्तर देते हैं—देश, काल आदिके भेदसे तिथिमान ग्रहण करना चाहिए, इस बातको दिखलानेके लिए यहाँ प्रायः शब्द ग्रहण किया है।

विवेचन—तिथिका मान प्रत्येक स्थानमें भिन्न होता है। अक्षांश और देशान्तरके भेदसे प्रत्येक स्थानमें तिथिका प्रमाण पृथक् होगा। पञ्चांगमें जो तिथिके घटी, पल, विपल आदि लिखे रहते हैं, वे जिस स्थानका पञ्चांग होता है, वहाँके होते हैं। अपने यहाँके घटी, पल निकालनेके लिए देशान्तर संस्कार करना पड़ता है। इसका नियम यह है कि पञ्चांग जिस स्थानका हो उस स्थानके रेखांशके साथ अपने स्थानके रेखांशका अन्तर कर लेना चाहिए। अंशात्मक जो अन्तर हो उसे चारसे गुणा करनेपर मिनट, सैकण्ड रूप काल आता है। इसका घट्यात्मक काल निकालकर पञ्चांगके घटी, पलोंमें संस्कार कर देनेसे स्थानीय तिथिके घटी, पल निकल आते हैं। संस्कार करनेका नियम यह है कि पञ्चांग स्थानका रेखांश अधिक हो और अपने स्थानका रेखांश कम हो तो ऋण संस्कार, और अपने स्थानका रेखांश अधिक तथा पञ्चांग स्थानका रेखांश

कम हो तो धन संस्कार करना चाहिए । उदाहरण—विश्वपञ्चांगमें बुधवारको अष्टमीका प्रमाण १० घटी १५ पल दिया है । हमें देखना यह है कि आरामें बुधवारको अष्टमी तिथि कितनी है—

बनारस—पञ्चांग निर्माणका स्थान, का रेखांश ८३।० है और अपने स्थान आराका रेखांश ८४।४० है । इन दोनोंका अन्तर किया—(८४।४०)—(८३।०)=१।४० । इसको ४ से गुणा किया—१।४० × ४= ६।४० मिनट, सैकण्ड आदि । ६ मिनट और ४० सैकण्डके १६ पल ४० विपल हुए । आराके रेखांशसे पञ्चांगस्थान बनारसका रेखांश कम है, अतः यहाँके तिथ्यादि मानमें धन-संस्कार करना चाहिए । अतः (१०।१५) + (०।१६।४०)=१०।३१।४० अर्थात् आरामें बुधवारको अष्टमी १० घटी ३१ पल ४० विपल हुई । यदि यही तिथि मान आगरामें निकालना है तो—

आगराका रेखांश ७८।१५ और बनारसका रेखांश ८३।० है, दोनोंका अन्तर किया (८३।०)—(७८।१५)=४।४५, ४।४५ × ४=१९।० मिनट । इसके घट्यादि बनाये । ०।४७।३० हुए । इष्ट स्थानका रेखांश पञ्चांगके रेखांशसे अल्प है, अतः पञ्चांगके घटी, पलोंमें ऋण संस्कार किया । (१०।१५)—(०।४७।३०)=९।२७।३०, आगरामें बुधवारको अष्टमी तिथिका प्रमाण ९ घटी २७ पल ३० विपल हुआ । कलकत्तामें अष्टमीका प्रमाण—

कलकत्ताका रेखांश (८८।२४)—बनारसका रेखांश (८३।०)=५।२४। ५।२४ × ४=२१।३६ । इसका घट्यात्मक मान ५३।५० हुआ । इसको बनारसके घटी, पलोंमें जोड़ा

१०।१५
०।५३।५०
११।८।५० तिथिका मान कलकत्तामें हुआ ।

अपने स्थानके तिथिमानको निकालनेके लिए नीचे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नगरोंके रेखांश दिये जाते हैं । जिससे कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थानके पञ्चांग परसे अपने यहाँके तिथिमानको निकाल सकता है ।

रेखांश-बोधक सारिणी

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेखांश देशांश
१	अजमेर	राजपूताना	७४ ४२
२	अमरावती	बरार	७७ ४७
३	अम्बाला	पंजाब	७६ ५२
४	अमरोहा	यू० पी०	७८ ३१
५	अमृतसर	पंजाब	७४ ४८
६	अयोध्या	यू० पी०	८२ १९
७	अलवर	राजपूताना	७६ ३८
८	अलीगढ़	यू० पी०	७८ ६
९	अहमदाबाद	बम्बई	७२ ४०
१०	आगरा	यू० पी०	७८ १५
११	आरा	बिहार	८४ ४०
१२	आसाम	आसाम	९३ ०
१३	इटारसी	सी० पी०	७० ५१
१४	इन्दौर	मध्यभारत	७५ ५०
१५	इलाहाबाद	यू० पी०	८१ ५०
१६	उज्जैन	ग्वालियर स्टेट	७५ ४३
१७	उदयपुर	राजपूताना	७३ ४३
१८	कटनी	सी० पी०	८० २७
१९	काठियावाड़	गुजरात	७१ ०
२०	कर्णाटक	दक्षिण भारत	७८ ०
२१	कराँची	सिन्ध	६७ ४
२२	कल्याण	बम्बई	७३ १०
२३	कलकत्ता	बंगाल	८८ २४
२४	काञ्जीवरम्	मद्रास	७९ ४५
२५	कानपुर	यू० पी०	८० २४

क्र० स०	नाम नगर	प्रान्त	रेखांश देशांश
२६	कारकल	मद्रास	७९ ४०
२७	कालीकट	,,	७५ ५९
२८	किशनगढ़	जैसलमेर	७० ४७
२९	किशनगढ़	राजपूताना	७४ ५५
३०	कोटा राज्य	राजपूताना	७५ ५२
३१	कोलूर	मद्रास	७४ ५३
३२	कोल्हापुर	,,	७४ १६
३३	खण्डवा	सी० पी०	७६ २३
३४	खुरजा	यू० पी०	७७ ५०
३५	गया	बिहार	८५ ०
३६	ग्वालियर	ग्वालियर	७८ १०
३७	गाजियाबाद	यू० पी०	७७ २८
३८	गाजीपुर	,,	८३ ३५
३९	गुजरात	गुजरात	७२ ३०
४०	गुजरानवाला	पजाब	७४ १४
४१	गोरखपुर	यू० पी०	८३ २४
४२	गोहाटी	आसाम	९१ ४७
४३	चग्गाँव	बगाल	९२ ५३
४४	चिदम्बरम्	मद्रास	७९ ४४
४५	चुनार	यू० पी०	८२ ५६
४६	छपरा	विहार	८४ ४७
४७	छोटानागपुर	,,	८५ ०
४८	जब्बलपुर	सी० पी०	७९ ५९
४९	जैपुर राज्य	राजपूताना	७५ ५२
५०	जैसलमेर राज्य	,,	७० ५७
५१	[illegible]धपुर राज्य	,,	७३ ४

क्र० सं०	[illegible]	[illegible]	
७८	[illegible]	[illegible]	
७९	[illegible]	[illegible]	
८०	[illegible]	[illegible]	
८१	[illegible]	[illegible]	
८२	[illegible]	[illegible]	
८३	[illegible]	[illegible]	
८४	[illegible]	[illegible]	
८५	[illegible]	[illegible]	
८६	[illegible]	[illegible]	
८७	[illegible]	[illegible]	
८८	[illegible]	[illegible]	
८९	[illegible]	[illegible]	
९०	[illegible]	[illegible]	
९१	[illegible]	[illegible]	
९२	[illegible]	[illegible]	
९३	[illegible]	[illegible]	६
९४	[illegible]	[illegible]	२५
९५	[illegible]	[illegible]	३५
९६	[illegible]	[illegible]	१२
९७	भरतपुर	[illegible]	१६
९८	भागलपुर	[illegible]	१२
९९	भावनगर	[illegible]	१०
१००	भुसावल	[illegible]	३५
१०१	भेलसा	[illegible]	
१०२	भोपाल	[illegible]	
१०३	मथुरा	[illegible]	

ग्रहप
नान्या
ई पूजा

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेखांश-देशांश
१०४	मद्रास	मद्रास	८० १७
१०५	मनीपुर	आसाम	८५ ३०
१०६	मदुरा	मद्रास	७८ १०
१०७	महोवा	यू० पी०	७९ ५५
१०८	मालवा	मध्यभारत	७५ ३०
१०९	मिरजापुर	यू० पी०	८२ २
११०	मुजफ्फरनगर	,,	७७ ४४
१११	मुजफ्फरपुर	विहार	८५ २७
११२	मुर्शिदाबाद	बगाल	८८ १९
११३	मुरादाबाद	यू० पी०	७८ ४९
११४	मुरार	ग्वालियर	७८ ११
११५	मुल्तान	पजाब	७१ ३१
११६	मेरठ	यू० पी०	७७ ४५
११७	मैंगलूर	मद्रास	७४ ५३
११८	मैनपुरी	यू० पी०	७९ ३
११९	मैसूर	मैसूर	७६ ४२
१२०	रतलाम	मध्यभारत	७५ ७
१२१	राजकोट	बम्बई	७० ५६
१२२	राजनादगाँव	सी० पी०	८१ ५
१२३	रायगढ़	,,	८३ २६
१२४	रायपुर	,,	८१ ४१
१२५	रावलपिण्डी	पजाब	७३ ६
१२६	राँची	विहार	८५ २३
१२७	रुड़की	यू० पी०	७७ ५३
१२८	रुहेलखण्ड	,,	७९ ०
१२९	लखनऊ	,,	८० ५९

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेखांश देशांश
१३०	ललितपुर	यू० पी०	७८ २८
१३१	लश्कर	ग्वालियर	७८ १०
१३२	लाहौर	पंजाब	७४ २६
१३३	लुधियाना	,,	७५ ५४
१३४	विजगापट्टम	मद्रास	८३ २०
१३५	विजयनगर	,,	७६ ३०
१३६	ब्यावर	मारवाड़	७४ २१
१३७	शाहजहाँपुर	यू० पी०	७९ २७
१३८	शिमला	पंजाब	७७ १३
१३९	शिवपुरी	ग्वालियर	७७ ४४
१४०	श्रीनगर	काश्मीर	७४ ५१
१४१	सतारा	बम्बई	७४ १
१४२	सहारनपुर	यू० पी०	७७ २३
१४३	सागर	सी० पी०	७८ ५०
१४४	सांगली	बम्बई	७४ ३६
१४५	सिरोही	राजपूताना	७२ ५४
१४६	सिलहट	आसाम	९१ ५४
१४७	सिलीगुड़ी	बंगाल	८८ २५
१४८	सिवनी	सी० पी०	७९ ३५
१४९	सूरत	बम्बई	७२ ५२
१५०	सोलापुर	,,	७५ ५६
१५१	हुब्बली	,,	७२ १२
१५२	हैदराबाद	दक्षिणभारत	७८ ३०
१५३	होशंगाबाद	सी० पी०	७० ४५

मुकुटसप्तमी व्रत और निर्दोषसप्तमी व्रतोंका स्वरूप

मुकुटसप्तमी तु श्रावणशुक्लसप्तम्येव ग्राह्या, नान्या तस्याम् आदिनाथस्य वा पार्श्वनाथस्य मुनिसुव्रतस्य च पूजा

विधाय कण्ठे मालारोप । शीर्षमुकुटञ्च कथितमागमे । भाद्रपदशुक्लासप्तमीव्रतमागमे निर्दोषसप्तमीव्रत कथितम् । सप्त वर्षावधिर्यावत् अनयो व्रतयो विधान कार्यम् ।

अर्थ—श्रावणशुक्ला सप्तमीको ही मुकुट सप्तमी कहा जाता है, अन्य किसी महीनेकी सप्तमीका नाम मुकुट सप्तमी नहीं है । इसमें आदिनाथ अथवा पार्श्वनाथ और मुनिसुव्रतनाथका पूजन कर जयमाला को भगवान्का आशीर्वाद समझकर गलेमे धारण करना चाहिए । इस व्रतको आगममें शीर्षमुकुट सप्तमी व्रत भी कहा गया है ।

भाद्रपद शुक्ला सप्तमीके व्रतको आगममें निर्दोष सप्तमी व्रत कहा जाता है । इस व्रतमें भी भगवान् पार्श्वनाथकी पूजा करनी चाहिए । सात वर्षतक इन दोनों व्रतोंका अनुष्ठान करना चाहिए । पश्चात् उद्यापन करना चाहिए ।

विवेचन—आगममे श्रावण शुक्ला सप्तमी और भाद्रपद शुक्ला सप्तमी इन दोनों तिथियोंके व्रतका विधान मिलता है । श्रावण शुक्ला सप्तमी तिथिके व्रतको मुकुटसप्तमी या शीर्षमुकुट सप्तमी कहा गया है । इस तिथिको व्रत करनेवालेको षष्ठी तिथिसे ही सयम ग्रहण करना चाहिए । षष्ठी तिथिको प्रातःकाल भगवान्की पूजा, अभिषेक करके एकाशन करना चाहिए । मध्याह्नकालमे सामायिकके पश्चात् भगवान् की प्रतिमा या गुरुके सामने जाकर सयमपूर्वक व्रत करनेका सकल्प करना चाहिए । चारों प्रकारके आहारका त्याग सोलह प्रहरके लिए भोजनके समय ही कर देना चाहिए ।

सप्तमीको प्रातःकाल सामायिक करनेके पश्चात् नित्यक्रियाओंसे निवृत्त होकर पूजा पाठ, स्वाध्याय, अभिषेक आदि क्रियाओंको करना चाहिए । पार्श्वनाथ और मुनिसुव्रतनाथकी पूजा करनेके उपरान्त जयमालाको अपने गलेमे धारण करना चाहिए । मध्याह्नमें पुन सामायिक करना चाहिए । अपराह्नमें चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्रका पाठ करना चाहिए । सन्ध्याकालमें सामायिक, आत्मचिन्तन और देवदर्शन आदि

क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए। तीनों बारकी सामायिक क्रियाओंके अनन्तर "ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ नमः, ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रत नाथाय नमः" इन दोनों मन्त्रोंका जाप करना आवश्यक है। इस मन्त्रका रातमें भी एक जाप करना चाहिए। अष्टमीको पूजन, अभिषेक और स्वाध्यायके अनन्तर उपयुक्त मन्त्रोंका जाप कर एकाशन करना चाहिए। इस प्रकार सात वर्षों तक मुकुटसप्तमी व्रत किया जाता है, पश्चात् उद्यापनकर व्रतकी समाप्ति करनी चाहिए।

निर्दोष सप्तमी व्रत भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको करना चाहिए। इस व्रतमें षष्ठी तिथिसे संयम ग्रहण करना चाहिए। इस व्रतकी समस्त विधि मुकुटसप्तमीके ही समान है, अन्तर इतना है कि इसमें रात भी जागरणपूर्वक व्यतीत की जाती है अथवा रातके पिछले प्रहरमें अल्प निद्रा लेनी चाहिए। 'ॐ ह्रीं ह्रीं सर्वविघ्ननिवारकाय श्री शान्तिनाथस्वामिने नमः स्वाहा' इस मन्त्रका जाप करना होगा। कषाय, राग द्वेष मोह आदि विकारोंका भी त्याग करना अनिवार्य है, इस व्रतको इस प्रकार करना चाहिए जिससे किसी भी प्रकारका दोष नहीं लगे। आत्मपरिणामोंको निर्मल और विशुद्ध रखनेका प्रयास करना चाहिए। इस व्रतकी अवधि भी सात वर्ष है, पश्चात् उद्यापन कर छोड़ देना चाहिए।

श्रवण द्वादशी व्रतका स्वरूप

श्रवणद्वादशीव्रतस्तु भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां तिथौ क्रियते। अस्य व्रतस्यावधिः द्वादशवर्षपर्यन्तमस्ति। उद्यापनानन्तरं व्रत समाप्तिर्भवति।

अर्थ—श्रवणद्वादशी व्रत भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको किया जाता है। यह व्रत बारह वर्ष तक करना पड़ता है। उद्यापन करनेके उपरान्त व्रत की समाप्ति की जाती है।

विवेचन—श्रवण द्वादशी व्रतके दिन भगवान् वासुपूज्य स्वामीकी पूजा, अभिषेक और स्तुति की जाती है। नित्यनैमित्तिक पूजा-पाठोंके

अनन्तर गाने बाजेके साथ भगवान् वासुपूज्य स्वामीकी पूजा करनी चाहिए। इस व्रतमें चार बार—तीनों सन्ध्याओं और रातमें लगभग दस बजे 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्ष्वी श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय नमः स्वाहा' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। प्रायः इस द्वादशी तिथिको श्रवण नक्षत्र भी पड़ता है, इसी कारण इस व्रतका नाम श्रवणद्वादशी पड़ा है। क्योंकि यह द्वादशी श्रवण नक्षत्रसे युक्त होती है। इस व्रतकी सामान्य विधि अन्य व्रतोंके समान ही है, परन्तु विशेष यह है कि यदि श्रवण नक्षत्र त्रयोदशीको पड़ता हो या एकादशीमें ही आ जाता हो तथा द्वादशीको श्रवण नक्षत्रका अभाव हो तो द्वादशीके व्रतके साथ श्रवण नक्षत्रके दिन भी व्रत करना चाहिए। यों तो प्रायः द्वादशी तिथिको श्रवण आ ही जाता है। ऐसा बहुत कम होता है, जब श्रवण एक दिन आगे या एक दिन पीछे पड़ता है। द्वादशी तिथि व्रतके लिए छह घटी प्रमाण होनेपर ही ग्राह्य है।

यदि कभी ऐसी परिस्थिति आवे कि श्रवण द्वादशीमें श्रवण नक्षत्र न मिले, तो उस समय अस्तकालीन तिथि भी ग्रहण की जा सकती है। द्वादशीको प्रातःकालमें श्रवण नक्षत्रका होना आवश्यक नहीं है, किसी भी समय द्वादशी और श्रवणका योग होना चाहिए। ज्योतिष शास्त्रमें भाद्रपद शुक्ल द्वादशी और श्रवण नक्षत्रके योगको बहुत श्रेष्ठ बताया है। इसका कारण यह है कि श्रावण मासमें पूर्णिमाको श्रवण नक्षत्र पड़ता है तथा भाद्रपद मासमें पूर्णिमाको भाद्रपद नक्षत्र। द्वादशी श्रवण से संयुक्त होकर विशेष पुण्यकाल उत्पन्न करती है, क्योंकि श्रवण नक्षत्र मासवाली पूर्णिमाके पश्चात् प्रथम बार द्वादशीके साथ योग करता है, चन्द्रमा नीच राशिसे आगे निकल जाता है और अपनी उच्च राशिकी ओर बढ़ता है। द्वादशी तिथिको यों तो अनुराधा नक्षत्र श्रेष्ठ माना जाता है, परन्तु भाद्रपद मासमें श्रवण ही श्रेष्ठतम बताया गया है। इस कारण श्रवणसे संयुक्त द्वादशी कल्याणप्रद, पुण्यकारक और जीवन मार्गमें गति देनेवाली होती है। अपनी मासान्तकी पूर्णिमाके संयोगके पश्चात् श्रवण

प्रथम बार जिस किसी तिथिसे संयोग करता है, वही तिथि श्रेष्ठ, पुण्यो त्पादक और मंगलप्रद मानी जाती है। श्रवणकी यह स्थिति भाद्रपद शुक्ला द्वादशाको ही आती है, अतः यह व्रत महान् पुण्यको देनेवाला बताया गया है।

श्रवणद्वादशी व्रतका माहात्म्य जैनियोंमें भी बहुत अधिक माना गया है। इस व्रतको प्रायः सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपनी सौभाग्य-वृद्धि, सन्तान प्राप्ति तथा अपनी ऐहिक मंगल-कामनासे करती हैं। इस व्रतकी अवधि बारह वर्ष तक मानी गयी है, बारह वर्ष तक विधिपूर्वक व्रत करनेके उपरान्त व्रतका उद्यापन करना चाहिए।

मुकुटसप्तमी, निर्दोषसप्तमी और श्रवणद्वादशी ये सब व्रत वर्षमें एक बार ही किये जाते हैं। जो तिथियाँ इनके लिए निश्चित की गयी हैं, उन उन तिथियोंमें ही उन्हें सम्पन्न करना चाहिए। श्रवणद्वादशी व्रतके दिन वासुपूज्य भगवान्‌के पंचकल्याणकोंका चिन्तन करना चाहिए।

जिनरात्रिव्रतका स्वरूप

जिनरात्रिव्रत फाल्गुनकृष्णप्रतिपदामारभ्य कृष्णपक्षचतुर्दश्यामुपवासा वा केवलं तस्यामेवोपवास एवं नववर्षाणि यावत् वा चतुर्दशवर्षाणि।

अर्थ—जिनरात्रिव्रतमें फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ कर चतुर्दशी पर्यन्त उपवास करने चाहिए। प्रत्येक उपवासके बीचमें एक दिन पारणा करना चाहिए। अथवा केवल फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको ही उपवास करना चाहिए। इस व्रतकी अवधि ९ वर्ष या १४ वर्ष प्रमाण है। अर्थात् प्रथम विधिसे करनेपर नौ वर्षके अनन्तर उद्यापन करना चाहिए और द्वितीय विधिसे करनेपर चौदह वर्षके पश्चात् उद्यापन करना चाहिए।

विवेचन—जिनरात्रि व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ प्रचलित हैं— प्रथम मान्यताके अनुसार यह व्रत फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ किया जाता है। प्रथम उपवास प्रतिपदाका करनेके उपरान्त द्वितीयाको पारणा,

तृतीयाको उपवास, चतुर्थीको पारणा, पञ्चमीको उपवास, षष्ठीको पारणा, सप्तमीको उपवास, अष्टमीको पारणा, नौमीको उपवास, दशमीको पारणा, एकादशीको उपवास, द्वादशीको पारणा एवं त्रयोदशी और चतुर्दशीको उपवास करना चाहिए। इस प्रकार नौ वर्ष तक पालनकर व्रतका उद्यापन कर देना चाहिए।

दूसरी मान्यता यह है कि केवल फाल्गुन वदी चतुर्दशीको उपवास करे, मन्दिरमें जाकर भगवानका पञ्चामृत अभिषेक करे तथा अष्ट द्रव्यसे त्रिकाल पूजन करे। तीनों समय नियमतः सामायिक और स्वाध्याय करे। रात्रिको धर्मध्यान पूर्वक जागरण सहित व्यतीत करे। 'ओं ह्रीं त्रिकाल चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः स्वाहा' इस मन्त्रका जाप रातको करना चाहिए तथा बृहत्स्वयंभूस्तोत्रका पाठ भी करना चाहिए। रात्रिके पूर्वार्द्धमें आलोचनापाठ पढ़ना, मध्यभागमें मन्त्रका जाप करना और अन्तिम भागमें सहस्रनामका स्मरण करना चाहिए। यह विधि विशेष रूपसे ग्राह्य है, सामान्य विधि सभी व्रतोंमें समान की जाती है, जिससे कषाय और विकथाएँ घटती हैं। उपवासके अगले दिन अतिथिको आहार करानेके उपरान्त स्वयं आहार ग्रहण करना तथा सुपात्रको चारों प्रकारका दान देना चाहिए। इस प्रकार १४ वर्ष तक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन करना चाहिए। इस दूसरी विधिके अनुसार व्रत वर्षमें एक बार ही किया जाता है।

मुक्तावली व्रतका स्वरूप

मुक्तावल्यास्तु नवोपवासाः भाद्रपदे शुक्ला सप्तमी, आश्विने कृष्णाष्टमी, त्रयोदशी, आश्विने शुक्ला एकादशी, कार्तिके कृष्णा द्वादशी, कार्तिके शुक्ला तृतीया, शुक्ला एकादशी, मार्गशीर्षे कृष्णैकादशी, शुक्लपक्षे तृतीया चेति नवोपवासाः स्युः।

अर्थ—मुक्तावली व्रतमें नौ उपवास प्रतिवर्ष किये जाते हैं। पहला उपवास भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको, दूसरा आश्विन कृष्णाष्टमीको, तीसरा आश्विन कृष्णा त्रयोदशीको, चौथा आश्विन शुक्ला एकादशीको, पाँचवाँ

कार्त्तिक कृष्णा द्वादशीको, छठवाँ कार्त्तिक शुक्ला तृतीयाको, सातवाँ कार्त्तिक शुक्ला एकादशीको, आठवाँ मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशीको और नौवाँ मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीयाको करना चाहिए। उपवासके पहले और अगले दिन एकाशन करना चाहिए। यह लघु मुक्तावली व्रतकी विधि है। बृहद् मुक्तावली व्रतमें कुल २५ उपवास और ९ पारणाएँ की जाती हैं।

रत्नत्रय व्रतकी विधि

रत्नत्रय तु भाद्रपदचैत्रमाघशुक्लपक्षे च द्वादश्यां धारणं चैकभक्तं च त्रयोदश्यादिपूर्णिमान्तमष्टमं कार्यम्, तदभावे यथाशक्ति काञ्जिकादिकं, दिनवृद्धौ तदधिकतया कार्यम्; दिनहानौ तु पूर्वदिनमारभ्य तदन्तं कार्यमिति पूर्वक्रमो ज्ञेयः।

अर्थ—रत्नत्रय व्रत भाद्रपद, चैत्र और माघ मासमें किया जाता है। इन महीनोंके शुक्लपक्षमें द्वादशी तिथिको व्रत धारण करना चाहिए तथा एकाशन करना चाहिए। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाका उपवास करना, तीन दिनका उपवास करनेकी शक्ति न हो तो काजी आदि लेना चाहिए। रत्नत्रय व्रतके दिनोंमें किसी तिथिकी वृद्धि हो तो एक दिन अधिक व्रत करना एवं एक तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे लेकर व्रत समाप्ति पर्यन्त उपवास करना चाहिए। यहाँपर भी तिथिहानि और तिथिवृद्धिमें पूर्व क्रम ही समझना चाहिए।

विवेचन—रत्नत्रय व्रतके लिए सर्वप्रथम द्वादशीको शुद्धभावसे स्नानादि क्रिया करके स्वच्छ सफेद वस्त्र धारण कर जिनेन्द्र भगवान्‌का पूजन अभिषेक करे। द्वादशीको इस व्रतकी धारणा और प्रतिपदाको पारणा होती है। अतः द्वादशीको एकाशनके पश्चात् चारों प्रकारके आहारका त्याग कर, विकथा और कषायोंका त्याग करे। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाको प्रोषध तथा प्रतिपदाको जिनाभिषेकादिके अनन्तर किसी अतिथि या किसी दुःखित बुभुक्षितको भोजन कराकर एक बार आहार ग्रहण करे। अपने घरमें ही अथवा चैत्यालयमें जिन बिम्बके निकट रत्नत्रय यन्त्रकी भी स्थापना करे।

द्वादशीसे ऐसा प्रतिपदा तक पाँचों ही दिनोंको विशेष रूपसे धर्मध्यान पूर्वक व्यतीत करे। प्रतिदिन त्रैकालिक सामायिक और रत्नत्रय विधान करना चाहिए। प्रतिदिन प्रात, मध्याह्न और सायंकालमें 'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। इस व्रतको १३ वर्ष तक पालनेके उपरान्त उद्यापन कर देना चाहिए। यह व्रतकी उत्कृष्ट विधि है, इतनी शक्ति न हो तो वेला करे तथा आठ वर्ष व्रत करके उद्यापन कर देना चाहिए। यह व्रतकी मध्यम विधि है। यदि इस मध्यम विधिको सम्पन्न करनेकी भी शक्ति न हो तो त्रयोदशी और पूर्णिमाको एकाशन एवं चतुर्दशीको प्रोषध करना चाहिए। यह जघन्य विधि है, इस विधिसे किये गये व्रतका तीन या पाँच वर्षके बाद उद्यापन कर देना चाहिए। इस व्रतमें पाँच दिन तक शीलव्रतका पालन करना आवश्यक है।

रत्नत्रय व्रतके दिनोंमें तिथिवृद्धि या तिथिह्रास हो तो पहलेके समान व्रत व्यवस्था समझनी चाहिए। एक तिथिकी वृद्धि होनेपर एक दिन अधिक और एक तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए। व्रत तिथिका प्रमाण छ घटी ही उदयकालमें ग्रहण किया जायगा।

अनन्तव्रत विधि

अनन्तव्रते तु एकादश्यामुपवासः द्वादश्यामेकभक्तं त्रयोदश्यां काञ्जिकं चतुर्दश्यामुपवासस्तदभावे यथा शक्तिस्तथा कार्यम्। दिनहानिवृद्धौ स एव क्रमः सर्त्तव्यः।

अर्थ—अनन्त व्रतमें भाद्रपद शुक्ला एकादशीको उपवास, द्वादशीको एकाशन, त्रयोदशीको कांजी—छाछ अथवा छाछमें जौ, बाजराके आटेको मिलाकर महेरी—एक प्रकारकी कढ़ी बनाकर लेना और चतुर्दशीको उपवास करना चाहिए। यदि इस विधिके अनुसार व्रत पालन करनेकी शक्ति न हो तो शक्तिके अनुसार व्रत करना चाहिए। तिथि हानि या तिथि वृद्धि होनेपर पूर्वोक्त क्रम ही अवगत करना चाहिए अर्थात् तिथि

हानिमें एक दिन पहलेसे और तिथि-वृद्धिमें एक दिन अधिक व्रत करना होता है।

विवेचन—अनन्तव्रत भादों सुदी एकादशीसे आरम्भ किया जाता है। प्रथम एकादशीको उपवास कर द्वादशीको एकाशन कर अर्थात् मौन सहित स्वाद रहित प्रासुक भोजन ग्रहण करे, सात प्रकारके गृहस्थोंके अन्तरायका पालन करे। त्रयोदशीको जिनाभिषेक, पूजन-पाठके पश्चात् छाछ या छाछमें जौ, बाजराके आटेसे बनाई गई महेरी—एक प्रकारकी कढ़ीका आहार ले। चतुर्दशीके दिन प्रोषध करे तथा सोना, चाँदी या—रेशम सूतका अनन्त बनावे, जिसमें चौदह गाँठ लगावे।

प्रथम गाँठ पर ऋषभनाथसे लेकर अनन्तनाथ तक चौदह तीर्थंकरोंके नामों का उच्चारण, दूसरी गाँठ पर सिद्धपरमेष्ठीके चौदह[1] गुणोंका चिन्तन, तीसरी पर उन चौदह मुनियोंका नामोच्चारण जो मति श्रुत अवधिज्ञानके धारी हुए हैं, चौथी पर अर्हन्त भगवान्के चौदह देवकृत अतिशयोंका चिन्तन, पाँचवीं पर जिनवाणीके चौदह पूर्वोंका चिन्तन, छठवीं पर चौदह गुणस्थानोंका चिन्तन, सातवीं पर चौदह मार्गणाओंका स्वरूप, आठवीं पर चौदह जीवसमासोंका स्वरूप, नौवीं पर गंगादि चौदह नदियोंका उच्चारण, दसवीं पर चौदह राजू प्रमाण ऊँचे लोकका स्वरूप, ग्यारहवीं पर चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंका, बारहवीं पर चौदह स्वरोंका, तेरहवीं पर चौदह तिथियोंका एवं चौदहवीं गाँठ पर आभ्यन्तर

---

१ तपसिद्धि, विनयसिद्धि, संयमसिद्धि, चारित्रसिद्धि, श्रुताभ्यास, निश्चयात्मक भाव, ज्ञान, बल, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व।

२ गृहपति, सेनापति, शिल्पी, पुरोहित, स्त्री, हाथी, घोड़ा, चक्र, असि (तलवार), छत्र, दण्ड, मणि, चर्म, काकिणी। काकिणी रत्नकी विशेषता यह होती है कि इससे कठोरसे कठोर वस्तु पर भी लिखा जा सकता है, इससे सूर्यके प्रकाशसे भी तेज प्रकाश निकलता है।

चौदह प्रकारके परिग्रहसे रहित मुनियोंका चिन्तन करना चाहिए। इस प्रकार अनन्तका निर्माण करना चाहिए।

पूजा करनेकी विधि यह है कि शुद्ध कोरा घड़ा लेकर उसका प्रक्षाल करना चाहिए। पश्चात् उस घड़े पर चन्दन, केशर आदि सुगन्धित वस्तुओं का लेप करना तथा उसके भीतर सोना, चाँदी या ताँबेके सिक्के रखकर सफेद वस्त्रसे ढक देना चाहिए। घड़े पर पुष्पमालाएँ डालकर उसके ऊपर थाली प्रक्षाल करके रख देनी चाहिए। थालीमें अनन्त व्रतका माडना और यन्त्र लिखना, पश्चात् चौबीसी एवं पूर्वोक्त विधिसे गाँठ दिया हुआ अनन्त विराजमान करना होता है। अनन्तका अभिषेककर चदनकेशरका लेप किया जाता है। पश्चात् आदिनाथसे लेकर अनन्तनाथ तक चौदह भगवानोंकी स्थापना यन्त्रपर की जाती है। अष्ट द्रव्यसे पूजा करनेके उपरान्त 'ॐ ह्रीं अर्हन्नम अनन्तकेवलिने नम' इस मन्त्रको १०८ बार पढ़कर पुष्प चढ़ाना चाहिए अथवा पुष्पोंसे जाप करना चाहिए। पश्चात् 'ॐ ह्रीं द्रवीं ह स अमृतवाहिने नम', अनेन मन्त्रेण सुरभिमुद्रा धृत्वा उत्तमगन्धोदकप्रोक्षणं कुर्यात्' अर्थात् 'ॐ ह्रीं क्ष्वीं ह स अमृतवाहिने नम' इस मन्त्रको तीन बार पढ़कर सुरभि मुद्रा द्वारा सुगन्धित जलसे अनन्तका सिंचन करना चाहिए। अनन्तर चौदहों भगवानोंकी पूजा करनी चाहिए।

'ॐ ह्रीं अनन्ततीर्थंकराय ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्र असि आ उसाय नम सर्वशान्ति तुष्टिं सौभाग्यमायुरारोग्यैश्वर्यमष्टसिद्धिं कुरु कुरु सर्वविघ्नविनाशनं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्रसे प्रत्येक भगवान्की पूजाके अनन्तर अर्घ्य चढ़ाना चाहिए। 'ॐ ह्रीं ह्रं स अनन्त केवलिभगवान् धर्मश्रीबलायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्रको पढ़कर अनन्त पर चढ़ाये हुए पुष्पोंकी आशिका एव 'ॐ ह्रीं अर्हन्नम सर्वकर्मबन्धनविमुक्ताय नम स्वाहा' इस मन्त्रको पढ़कर शान्ति जलकी आशिका लेनी चाहिए। इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं अर्हं ह स अनन्तकेवलिने नम' मन्त्रका जाप करना चाहिए। पूर्णिमाको पूजनके पश्चात् अनन्तको गले या भुजामें धारण करे।

अनन्तव्रत हिन्दुओंमें भी प्रचलित है। उनके यहाँ कहा गया है कि "अनन्तस्य विष्णोराराधनार्थं" अर्थात् विष्णु भगवान्की आराधनके लिए अनन्त चतुर्दशी व्रत किया जाता है। बताया गया है कि भादों सुदी चौदसके दिन स्नानादिके पश्चात् अर्थात् दूर्वा, तथा शुद्ध सूतसे बने और हल्दीमें रंगे हुए चौदह गाँठके अनन्तका सामने रखकर हवन किया जाता है। तत्पश्चात् अनन्तदेवका ध्यान करके शुद्ध अनन्तको दाहिनी भुजामें बाँधते हैं। इस व्रतमें प्राय एक समय अलोना—बिना नमक—मीठा भोजन किया जाता है।

अनन्तदेवके सम्बन्धमें यह कथा प्राय लोकमें प्रचलित है कि जिस समय युधिष्ठिर अपना सब राज-पाट हारकर वनवास कर रहे थे, उस समय कृष्ण उनसे मिलने आये। उनकी दुःखकथा सुनकर श्रीकृष्णने उन्हें अनन्त व्रत करनेकी राय दी। श्रीकृष्णके आदेशानुसार युधिष्ठिर अनन्त व्रत कर अपने समस्त कष्टोंसे मुक्ति पा गये। इस व्रतके दिन ब्रह्मचर्यका पालन करना आवश्यक है।

जैनागममें प्रतिपादित अनन्त व्रतकी हिन्दुओंके अनन्त व्रतसे तुलना करनेपर यह निष्कर्ष निकलता है कि यह व्रत हिन्दुओंमें जैनोंसे ही लिया गया है तथा जैनोंके विस्तृत विधिपूर्ण व्रतका यह संक्षिप्त और सरल अंश है।

मेघमाला और षोडशकारण व्रतोंकी विधि

मेघमालाषोडशकारणञ्चैतद्द्वय समम् प्रतिपद्दिनेन ह्यो रारम्भ मुख्यतया करणीयम्। पुनरयम् विशेष षोडशकारण तु आश्विनकृष्णा प्रतिपदा एव पूर्णाभिषेकाय गृहीता भवति, इति नियम। कृष्णपञ्चमी तु नाम्न एव प्रसिद्धा।

अर्थ—मेघमाला और षोडशकारण व्रत दोनो ही समान हैं। दोनोका आरम्भ भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे होता है। परन्तु षोडशकारण व्रतमें इतनी विशेषता है कि इसमें पूर्णाभिषेक आश्विन-कृष्णा प्रतिपदाको होता है, ऐसा नियम है। कृष्णा पञ्चमी तो नामसे ही प्रसिद्ध है।

विवेचन—सोलह कारण व्रत प्रसिद्ध ही है। मेघमाला व्रत भादों सुदी प्रतिपदासे लेकर आश्विन वदी प्रतिपदा तक ३१ दिन तक किया जाता है। व्रतके प्रारम्भ करनेके दिन ही जिनालयके आँगनमें सिंहासन स्थापित करे अथवा कलशको संस्कृत कर उसके ऊपर थाल रखकर, थालमें जिनबिम्ब स्थापित कर महाभिषेक और पूजन करे। श्वेत वस्त्र पहने, श्वेत ही चन्दोवा बाँधे, मेघधाराके समान १००८ कलशोंसे भग वान्का अभिषेक करे। पूजापाठके पश्चात् 'ओं ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः' इस मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिए।

मेघमाला व्रतमें सात उपवास कुल किये जाते हैं और २४ दिन एकाशन करना होता है। तीनों प्रतिपदाओंके तीन उपवास, दोनों अष्टमियोंके दो उपवास एवं दोनों चतुर्दशियोंके दो उपवास इस प्रकार कुल सात उपवास किये जाते हैं। इस व्रतको पाँच वर्ष तक पालन करनेके पश्चात् उद्यापन कर दिया जाता है। इस व्रतकी समाप्ति प्रतिवर्ष आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको होती है। सोलह कारणका व्रत भी प्रतिपदाको समाप्त किया जाता है, परन्तु इतनी विशेषता है कि सोलह कारणका संयम और शील आश्विनकृष्णा प्रतिपदा तक पालन करना पड़ता है तथा पञ्चमी-को ही इस व्रतकी पूर्ण समाप्ति समझी जाती है। यद्यपि पूर्ण अभिषेक प्रतिपदाको ही हो जाता है, परन्तु नाममात्रके लिए पञ्चमी तक संयमका पालन करना पड़ता है।

अष्टाह्निका व्रतकी विधि

अष्टाह्निकाव्रत कार्त्तिकफाल्गुनाषाढमासेषु अष्टमीमारभ्य पूर्णिमान्तं भवतीति। वृद्धावधिकतया भवत्येव, मध्यतिथिह्रासे सप्तमीतो व्रतं कार्यं भवतीति; तद्यथा सप्तम्यामुपवासोऽष्टम्या पारणा नवम्या काञ्जिक दशम्यामवमोदार्यमित्येको मार्ग सुगमं सूचितं जघन्यापेक्षया' तदादिदिनमारभ्य। पूर्णिमान्तं कार्यं षष्ठोपवास पद्मदेवनाक्यसमादरे भव्यपुण्डरीकै:

व्रतानि समाप्तानि।

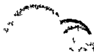
अर्थ—अष्टाह्निका व्रत कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ मासोंके शुक्ल पक्षोंमें अष्टमीसे पूर्णिमा तक किया जाता है। तिथि-वृद्धि हो जानेपर एक दिन अधिक करना पड़ता है। व्रतके दिनोंके मध्यमें तिथिह्रास होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना होता है। जैसे मध्यम तिथिह्रास होनेसे सप्तमीको उपवास, अष्टमीको पारणा, नवमीको काञ्जी-छाछ, दशमीको ऊनोदर, एकादशीको उपवास, द्वादशीको पारणा, त्रयोदशीको नीरस, चतुर्दशीको उपवास, पूर्ण शक्ति होनेपर पूर्णिमाको उपवास, शक्तिके अभावमें ऊनोदर तथा प्रतिपदाको पारणा करनी चाहिए। यह सरल और जघन्य विधि अष्टाह्निका व्रतकी है। व्रतकी उत्कृष्ट विधि यह है कि अष्टमीसे पष्ठोपवास अर्थात् अष्टमी, नवमीका उपवास दशमीको पारणा, एकादशी और द्वादशीको उपवास त्रयोदशीको पारणा एवं चतुर्दशी और पूर्णिमाको उपवास और प्रतिपदाको पारणा करनी चाहिए। श्री पद्मप्रभदेवके वचनोंका आदर करनेवाले भव्यजीवोंको उक्त विधिसे व्रत करना चाहिए।

इस प्रकार बतायी शुद्ध विधिसे जो व्रत नहीं करते हैं, उनकी व्रत विधि दूषित हो जाती है और व्रतका फल नहीं मिलता। इस प्रकार सावधि व्रतोंका निरूपण पूरा हुआ।

विवेचन—कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ मासके शुक्लपक्षमें अष्टमी से पूर्णिमा तक आठ दिन यह व्रत किया जाता है। सप्तमीके दिन व्रतकी धारणा करनी होती है। प्रथम ही श्री जिनेन्द्र भगवान्‌का अभिषेक पूजन सम्पन्न किया जाता है, तत्पश्चात् गुरुके पास, यदि गुरु न हों तो जिन बिम्बके सम्मुख निम्न संकल्पको पढ़कर व्रत ग्रहण किया जाता है।

व्रत ग्रहण करनेका संकल्प—

ओं अद्य भगवतो महापुरुषस्य ब्रह्मणो मते मासाना मासोत्तमे मासे आषाढमासे शुक्लपक्षे सप्तम्या तिथौ यामरे




जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे प्रदेशे नगरे एतत् अवसर्पिणीकालावसानचतुर्दशप्राभृतमानिमानितसकललोकव्य-वहारे श्रीगौतमस्वामिश्रेणिकमहामण्डलेश्वरसमाचरितसन्मार्गावशेषे वीरनिर्वाणसंवत्सरे अष्टमहाप्रातिहार्यादिशोभित-श्रीमदर्हत्परमेश्वरप्रतिमासन्निधौ अहम् अष्टाह्निकाव्रतस्य संकल्पं करिष्ये। अस्य व्रतस्य समाप्तिपर्यन्तं मे सावद्यत्यागः गृहस्था-श्रमजन्यारम्भपरिग्रहादीनामपि त्यागः।

सप्तमी तिथिसे प्रतिपदा तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना आवश्यक होता है, भूमिपर शयन, सचित पदार्थोंका त्याग, अष्टमीको उपवास, रात्रिको जागरण आदि क्रियाएँ की जाती हैं।

अष्टमी तिथिको दिनमें नन्दीश्वर द्वीपका मण्डल माँडकर अष्टद्रव्यसे पूजा की जाती है। पूजा पाठके अनन्तर नन्दीश्वर व्रतकी कथा पढ़नी चाहिए। 'ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो नमः' इस मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिए। नवमीको 'ॐ ह्रीं अष्ट-महाविभूतिसंज्ञाये नमः' इस महामन्त्रका जाप, दशमीको 'ॐ ह्रीं त्रिलोकसागरसंज्ञाये नमः' मन्त्रका जाप, एकादशीको 'ओं ह्रीं चतुर्मुखसंज्ञाये नमः' मन्त्रका जाप, द्वादशीको 'ओं ह्रीं पञ्चमहा-लक्षणसंज्ञाये नमः' मन्त्रका जाप, त्रयोदशीको 'ओं ह्रीं स्वर्गसोपान-संज्ञाये नमः' मन्त्रका जाप, चतुर्दशीको 'ओं ह्रीं सिद्धचक्राय नमः' मन्त्रका जाप एवं पूर्णमासीको 'ओं ह्रीं इन्द्रध्वजसंज्ञाये नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए।

व्रतकी धारणा और समाप्तिके दिन णमोकार मन्त्रका जप करना चाहिए। व्रत समाप्तिके दिन निम्न संकल्प पढ़कर सुपारी पैसा या नारियल पैसा चढ़ाकर भगवान्को नमस्कार कर घर आना चाहिए—

'ओं आद्यानाम् आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे शुभे श्रावणमासे कृष्णपक्षे अद्य प्रतिपदायां श्रीमदर्हत्प्रतिमासन्निधौ पूर्वं यद्व्रतं गृहीतं तस्य परिसमाप्तिं करिष्ये—अहम्। प्रमादाज्ञानवशात्

व्रते जायमानदोषा शान्तिमुपयान्ति—ॐ ह्रीं क्ष्वीं स्वाहा। श्रीमज्जिनेन्द्रचरणेषु आनन्दभक्तिः सदास्तु, समाधिमरणं भवतु, पापविनाशनं भवतु—ॐ ह्रीं असि आ उ सा य नमः। सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा।

दैवसिक व्रतोंका वर्णन

दैवसिकानि कानि भवन्ति ? त्रिमुखशुद्धिद्वारावलोकन जिनपूजापात्रदानव्रतप्रतिमायोगादीनि व्रतानि भवन्ति।

अर्थ—दैवसिक कौन कौन व्रत हैं ? त्रिमुखशुद्धि, द्वारावलोकन, जिनपूजा, पात्रदान, प्रतिमायोग आदि दैवसिक व्रत हैं।

त्रिमुखशुद्धि व्रतकी विधि

किंनाम त्रिमुखशुद्धिव्रतम् ? त्रिमुखशुद्धिव्रते पात्रदानानन्तरं भोजनग्रहणं भवति। तदभावे, आहारस्याप्यभाव एव मुखशुद्धिसंज्ञो नियमो दैवसिको भवति।

अर्थ—त्रिमुखशुद्धि व्रत किसे कहते हैं ? आचार्य उत्तर देते हैं कि त्रिमुखशुद्धि व्रतमें पात्रदानके अनन्तर भोजन ग्रहण किया जाता है। यदि द्वारापेक्षण करनेपर भी पात्रकी प्राप्ति न हो तो उस दिन आहार नहीं लिया जाता है। यह त्रिमुखशुद्धि व्रतका नियम दिनमें ही किया जाता है, अतः यह दैवसिक व्रत कहलाता है।

विवेचन—त्रिमुखशुद्धि व्रतका वास्तविक अभिप्राय यह है कि पात्र दानके अनन्तर भोजन ग्रहण करनेका नियम करना और दिनमें तीनों बार—प्रातः, मध्याह्न और अपराह्णम द्वारपर खड़े होकर पात्रकी प्रतीक्षा करना तथा पात्र उपलब्ध हो जाने पर आहार दान देनेके उपरान्त आहार ग्रहण करना होता है। यह व्रत कभी भी किया जा सकता है, इसके लिए किसी तिथि या मासका विधान नहीं है। जब तक पात्रदान नहीं दिया जाता है, उपवास करना पड़ता है।

द्वारावलोकन व्रत

द्वारावलोकनव्रते तु दिनयाममर्यादा कार्या, द्वौ यामौ यावत् द्वारमवलोकयामि तावत् मुनिरागतश्चेत् तस्मै आहार दत्वा पश्चादाहार ग्रहीष्यामि। इति द्वारावलोकनव्रतम्।

अर्थ—द्वारावलोकन व्रतमें दिनमें दो प्रहरका नियम करके द्वार पर खड़े होकर मुनिराजके आनेकी प्रतीक्षा करना, यदि इस बीचमें मुनि राज आ जावें तो उन्हें आहार करानेके पश्चात् आहार ग्रहण करना होता है। इस प्रकार द्वारावलोकन व्रत पूर्ण हुआ।

विवेचन—द्वारावलोकन व्रतमें दो प्रहरका नियमकर द्वारपर खड़े हो जाना और मुनि या ऐलक, क्षुल्लकके आनेकी प्रतीक्षा करना। यदि दो प्रहरोंके मध्यमें मुनिराज आ जायँ तो उन्हें आहार करा देनेके पश्चात् आहार ग्रहण करना। मुनिराजोंके न मिलनेपर ऐलक या क्षुल्लकको आहार करा देना होता है।

इस व्रतमें दो प्रहरका ही नियम रहता है, यदि दो प्रहरतक कोई पात्र नहीं मिले तो स्वयं भोजन कर लेना चाहिए। दो प्रहरतक निरन्तर पात्रकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है, विधिपूर्वक नवधाभक्तिसे युक्त होकर पात्रको भोजन कराया जाता है। पात्रके न मिलनेपर किसी साधर्मी भाईको भी भोजन करानेके उपरान्त इस व्रतवालेको आहार ग्रहण करना चाहिए। यदि कोई भी उपयुक्त अतिथि उस दिन न मिले तो दीन बुभुक्षितोंको ही आहार कराना उचित होता है। यद्यपि दो प्रहरके अनन्तर व्रतकी मर्यादा पूरी हो जाती है, फिर भी किसी भी प्रकारके पात्रको आहार करानेके उपरान्त ही भोजन ग्रहण करना चाहिए।

जिनपूजाव्रत, गुरुभक्ति एवं शास्त्रभक्ति व्रतोंका स्वरूप

जिनपूजाप्यष्टद्रव्यैः यदा विधानेन परिपूर्णा भवेत् तदाहार ग्रहीष्यामि, इति संकल्प। जिनपूजाविधानाख्यव्रतम्। एवमेव

जिनदर्शननियमस्तथा गुरुभक्तिनियमस्तथा शास्त्रभक्तिनियमश्च कार्यः ।

अर्थ—इस प्रकारका नियम करना कि विधिपूर्वक अष्टद्रव्योंसे जिन पूजा पूर्ण करनेपर आहार ग्रहण करूँगा, जिनपूजा विधान व्रत है। इसी प्रकार जिनदर्शन करनेका नियम करना, गुरुभक्ति करनेका नियम करना एवं शास्त्रभक्ति—स्वाध्याय करनेका नियम करना, जिनदर्शन, गुरुभक्ति एवं शास्त्रभक्ति व्रत हैं।

विवेचन—अच्छे कार्य करनेके नियमको व्रत कहते हैं, अतएव इस परिभाषाके अनुसार जिनपूजा, जिनदर्शन, गुरुभक्ति, शास्त्रस्वाध्याय आदि के नियमोंको भी व्रत कहा गया है। इन व्रतोंमें इतना ही सङ्कल्प करना पड़ता है कि पूजा, दर्शन, गुरुभक्ति या शास्त्र स्वाध्यायको सम्पन्न करके भोजन ग्रहण करूँगा। अपने सङ्कल्पके अनुसार उपर्युक्त धार्मिक कृत्योंको सम्पन्न करनेपर आहार ग्रहण किया जाता है। इन व्रतोंके लिए कोई तिथि या मास निश्चित नहीं है, बल्कि सदा ही देवपूजा देवदर्शन, गुरुभक्ति और स्वाध्याय जैसे धार्मिक कार्योंको करना चाहिए।

आगममें जीवन भरके लिए ग्रहण किये गये व्रतकी यम संज्ञा और अल्पकालिक व्रतकी नियम संज्ञा बतायी गयी है। जो जीवन भरके लिए उक्त धार्मिक कृत्योंका नियम करनेमें असमर्थ हों उन्हें कुछ समयके लिए अवश्य नियम करना चाहिए। यों तो श्रावकमात्रका कर्त्तव्य है कि वह अपने दैनिक षट्‌कर्मोंका पालन करे। देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दानके कार्य प्रत्येक गृहस्थके लिए करणीय हैं, अतः इनका नियम जीवन भरके लिए कर लेना आवश्यक है। इन करणीय कार्योंके किये बिना कोई श्रावक नहीं कहा जा सकता है। आचार्यने इन आवश्यक कर्त्तव्योंको व्रत संज्ञा इसलिए बतलायी है कि जो सर्वदाके लिए इनका पालन करनेमें अपनेको असमर्थ समझते हैं वे भी इनके पालन करनेकी ओर झुकें। जब एक बार इन कृत्योंकी ओर प्रवृत्ति हो जाय तथा आत्मा अन्तर्मुखी हो जाय तो फिर इन व्रतोंके पालनमें कोई भी कठिनाई नहीं है।

दैनिक षट्कर्म करनेसे आत्मामें अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती है तथा आत्मा शुभोपयोग रूप परिणतिको प्राप्त होता है। बात यह है कि आत्मा की तीन प्रकारकी परिणतियाँ होती हैं—शुद्धोपयोग, शुभोपयोग और अशुभोपयोग रूप। चैतन्य, आनन्द रूप आत्माका अनुभव करना, इसे स्वतन्त्र अखण्ड द्रव्य समझना और पर पदार्थोंमे इसे सर्वथा पृथक् अनुभव करना शुद्धोपयोग है। कषायोंको मन्द करके अर्थात् भक्ति, दान, पूजा, वैयावृत्य, परोपकार आदि कार्य करना शुभोपयोग है। पूजा, दर्शन, स्वाध्याय आदिमे उपयोग—जीवकी प्रवृत्ति विशेष शुद्ध नहीं होती है, शुभ रूप हो जाती है। तीव्र कषायोदय परिणाम, विषयोंमें प्रवृत्ति, तीव्र विषयानुराग, आर्तपरिणाम, असत्य भाषण, हिंसा, अपकार आदि कार्य अशुभोपयोग हैं। जिनपूजाव्रत, जिनदर्शनव्रत, गुरुभक्तिव्रत एवं स्वाध्याय व्रत करनेसे जीवको शुभोपयोगकी प्राप्ति होती है तथा कालान्तरमें शुद्धोपयोग भी प्राप्त किया जा सकता है। और आत्मबोध भी प्राप्त होता है, जिससे राग द्वेष, मोह आदि दूर किये जा सकते हैं। अहंकार और ममकार जिनके कारण इस जीवको संसारमें अनादिकालसे भ्रमण करना पड़ रहा है, दूर किये जा सकते हैं। अत उपर्युक्त व्रतोंका अवश्य पालन करना चाहिए।

पात्र-दान और प्रतिमायोग व्रत का स्वरूप

प्रतिदिन पात्रदान कार्यम्। यदि पात्रदान न स्यात्तदा रसपरित्याग कार्यं। प्रतिमायोग कायोत्सर्गादिकं यथाशक्ति नियम दैवसिक कार्यं इत्यादीनि दैवसिकव्रतानि।

अर्थ—प्रतिदिन पात्रदान करनेका नियम लेना पात्रदान व्रत है। यदि प्रतीक्षा और द्वारापेक्षण करनेपर भी पात्र नहीं मिले तो रसपरित्याग करना चाहिए।

शक्तिके अनुसार कायोत्सर्ग आदिका नियम दिनके लिए लेना प्रतिमायोग व्रत है। इस प्रकार दैवसिक व्रतोंका पालन करना चाहिए। उपर्युक्त त्रिमुहूर्तशुद्धि आदि सभी व्रत दैवसिक हैं

विवेचन—गृहस्थको अपनी अर्जित सम्पत्तिमेंसे प्रतिदिन दान देना आवश्यक है। जो गृहस्थ दान नहीं देता है, पूजा प्रतिष्ठामें सम्पत्ति खर्च नहीं करता है, उसकी सम्पत्ति निरर्थक है। धनकी सार्थकता धर्मोन्नतिके लिए धन व्यय करनेमें ही है, भोगके लिए खर्च करनेमें नहीं। अपना उदर पोषण तो शूकर-कूकर सभी करते हैं, यदि मनुष्य जन्म पाकर भी हम अपने ही उदर-पोषणमें लगे रहे तो हम शूकर-कूकरसे भी बदतर हो जायँगे। जो केवल अपना पेट भरनेके लिए जीवित हैं, जिसके हाथसे दान पुण्यके कार्य कभी नहीं होते हैं, जो मानव सेवामें कुछ भी खर्च नहीं करता है, दिन-रात जिसकी तृष्णा धन एकत्रित करनेके लिए बढ़ती जाती है, ऐसे व्यक्तिकी लाशको कुत्ते भी नहीं खाते हैं। अतएव प्रत्येक गृहस्थके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह प्रतिदिन नियमपूर्वक दान दे तथा कुछ तपश्चर्या भी करे।

वास्तविक तप तो इच्छाओंका रोकना ही है, या निजी कुछ समयकी अवधिकर कायोत्सर्ग करना भी तप है। अभ्यासके लिए कायोत्सर्ग आदिका भी नियम करना तथा अपनी भोगोपभोगकी लालसाओंको घटाना जीवनको उन्नतिकी ओर ले जाना है।

नैशिक व्रत

नैशिकानि चतुराहारविवर्जन स्त्रीसेवनविवर्जन रात्रिभुक्तिविवर्जनञ्चेत्यादीनि, खाद्य स्वाद्य लेह्यपेयभेदानि चतुर्विधान्यशनानि त्याज्यानि, चेतत् निशाभुक्तिपरित्याग व्रत विधीयते। स्त्रीसेवनविवर्जन च यावज्जीवन यम नियमश्चेति मासदिन सत्याभर कर्त्तव्य। रात्रिभक्तव्रते तु दिवसे स्त्रीसेवनविवर्जन यमनियमविभागतया करणीयम्। भोगोपभोगपरिमाणव्रते तु ताम्बूलपुष्पमालाशैय्याभूषणवस्त्रादीना नियम सदैव निशि कार्य, एव नैशिकनियम इत्यादीनि नैशिकानि व्रतानि।

अर्थ—नैशिक व्रतोंमें रातमें चारों प्रकारके आहारोंका त्याग कर

स्त्रीमैथुनका त्याग करना होता है। आहार चार प्रकारके हैं—खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय। जिस भोजनको दाँतोंसे काटकर खाते हैं वह खाद्य, स्वाद्यमें सभी प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंके सूँघनेका त्याग करना, लेह्यमें सभी प्रकारके चाटे जानेवाले पदार्थोंका त्याग और पेयमें सभी प्रकारके पेय पदार्थोंका त्याग किया जाता है। रात्रिभोजन त्यागमें चारों प्रकारके भोजनके अलावा दिवामैथुनका भी त्याग करना आवश्यक है। जीवनभर के लिए त्याग करना यम और कुछ मास या दिनोंके लिए त्याग देना नियम है।

भोगोपभोगपरिमाण व्रतमें पान, पुष्पमाला, शय्या, आभूषण और वस्त्र आदिका नियम करना पड़ता है कि अमुकरात्रिको अमुक संख्यामें भोगोपभोगकी वस्तुओंका सेवन करूँगा, शेषका त्याग है। इस प्रकार व्रत करना भी नैमित्तिक व्रत है। इस प्रकार ये नैमित्तिक व्रत कहे गये हैं।

मासिकव्रत

मासिकानि पञ्चमासचतुर्दशी पुष्पचतुर्दशी-शीलचतुर्दशी रूपचतुर्दशी-कनकावली रत्नावली पुष्पाञ्जलिलब्धिविधानकार्य-निर्जरादीनि व्रतानि भवन्ति ॥

अर्थ—मासिक व्रतोंमें पञ्चमासचतुर्दशी, पुष्पचतुर्दशी, शीलचतुर्दशी, रूपचतुर्दशी, कनकावली, रत्नावली, पुष्पाञ्जलि, लब्धिविधान और कार्यनिर्जरा इत्यादि व्रत हैं।

पञ्चमास चतुर्दशी व्रत, शीलचतुर्दशी और रूपचतुर्दशी व्रत

पञ्चमासचतुर्दशी तु शुचिश्रावणभाद्रआश्विनकार्त्तिकमास शुक्लचतुर्दशीपर्यन्त कार्या, ज्ञेया यथा पञ्चमासचतुर्दशी: वृहती मास मास प्रति चतुर्दशीशुक्ला सा मासचतुर्दशी ता पर्यन्त कार्या, पञ्चोपवासा। व्यतिरेकेण शीलचतुर्दशीरूपचतुर्दशी-

मारभ्य कार्त्तिकशुक्लचतुर्दशीपर्यन्तं दशोपवासाः कार्याः भवन्ति।

अर्थ—पद्ममासचतुर्दशी आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन मासोंकी शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको व्रत करना कहलाता है। इस व्रतमें प्रत्येक महीनेमें एक ही शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको उपवास करना पड़ता है। पाँच ही उपवास किये जाते हैं। विशेष रूपसे आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन महीनोंमें दोनों ही चतुर्दशियोंका उपवास करना, इस प्रकार उक्त पाँच महीनोंमें दस उपवास करना तथा रूपचतुर्दशी और शीलचतुर्दशीके उपवासोंको भी शामिल करना पद्म चतुर्दशी व्रत है। आषाढ़ मासकी अष्टाह्निकाकी चतुर्दशीको शीलचतुर्दशी और श्रावण मासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको रूपचतुर्दशी कहते हैं। पद्ममासचतुर्दशीका प्रारम्भ शीलचतुर्दशीसे किया जाता है।

विवेचन—मासिक व्रत उन व्रतोंको कहा जाता है, जो वर्षमें कई महीने अथवा एक-दो महीनेतक किये जायँ। मासिक व्रत प्रायः महीनेमें एक बार ही किये जाते हैं। कुछ व्रत ऐसे भी हैं, जिनके उपवास एक महीनेकी कई तिथियोंमें करने पड़ते हैं। आचार्यने ऊपर पद्ममास चतुर्दशीका स्वरूप बतलाते हुए दो मान्यताएँ रखी हैं। प्रथम मान्यतामें आषाढ़से लेकर कार्त्तिक तक पाँच महीनोंकी शुक्ला चतुर्दशीको उपवास करनेका विधान किया है। इस मान्यताके अनुसार कुल पाँच उपवास करने पड़ते हैं।

दूसरी मान्यताके अनुसार उपर्युक्त पाँच महीनोंमें दस उपवास करनेको पद्ममासचतुर्दशी व्रत बताया गया है। इन दस उपवासोंमें शीलव्रत चतुर्दशी और रूप चतुर्दशीके व्रत भी शामिल कर लिये गये हैं। आषाढ़ सुदी चतुर्दशीको शीलचतुर्दशी कहा जाता है, इस दिन शीलव्रतका पालन करना तथा उपवास करना महान् पुण्यका कारण माना गया है। शीलव्रतकी महत्ताको दिखलानेके कारण ही इस व्रतको शीलचतुर्दशी व्रत कहा गया है। शील चतुर्दशीके करनेवालेको 'ओं

स्त्रीसेवनका त्याग करना होता है। आहार चार प्रकारके हैं—खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय। जिस भोजनको दाँतोंसे काटकर खाते हैं वह खाद्य, स्वाद्यमें सभी प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंके सूँघनेका त्याग करना, लेह्यमें सभी प्रकारके चाटे जानेवाले पदार्थोंका त्याग और पेयमें सभी प्रकारके पेय पदार्थोंका त्याग किया जाता है। रात्रिभोजन त्यागमें चारों प्रकारके भोजनके अलावा दिवामैथुनका भी त्याग करना आवश्यक है। जीवनभर के लिए त्याग करना यम और कुछ मास या दिनोंके लिए त्याग देना नियम है।

भोगोपभोगपरिमाण व्रतमें पान, पुष्पमाला, शय्या, आभूषण और वस्त्र आदिका नियम करना पड़ता है कि अमुकरात्रिको अमुक संख्यामें भोगोपभोगकी वस्तुओंका सेवन करूँगा, शेषका त्याग है। इस प्रकार व्रत करना भी नैदिक व्रत है। इस प्रकार ये नैदिक व्रत कहे गये हैं।

मासिकव्रत

मासिकानि पञ्चमासचतुर्दशी पुण्यचतुर्दशी-शीलचतुर्दशी रूपचतुर्दशी कनकावली रत्नावली पुष्पाञ्जलिलब्धिविधानकार्य-निर्जरादीनि व्रतानि भवन्ति ॥

अर्थ—मासिक व्रतोंमें पञ्चमासचतुर्दशी, पुण्यचतुर्दशी, शीलचतुर्दशी, रूपचतुर्दशी, कनकावली, रत्नावली, पुष्पाञ्जलि, लब्धिविधान और कार्यनिर्जरा इत्यादि व्रत हैं।

पञ्चमास चतुर्दशी व्रत, शीलचतुर्दशी और रूपचतुर्दशी व्रत

पञ्चमासचतुर्दशी तु शुचिश्रावणभाद्रआश्विनकार्तिकमास शुक्लचतुर्दशीपर्यन्त कार्या, ज्ञेया यथा पञ्चमासचतुर्दशी, बृहती मास मास प्रति चतुर्दशीशुक्ला सा मासचतुर्दशी ता पर्यन्त कार्या, पञ्चोपवासा। व्यतिरेकेण शीलचतुर्दशीरूपचतुर्दशी-

मारभ्य कार्तिकशुक्लचतुर्दशीपर्यन्त दशोपवासा कार्या, भवन्ति।

अर्थ—पद्ममासचतुर्दशी आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन मासोंकी शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको व्रत करना कहलाता है। इस व्रतमें प्रत्येक महीनेमें एक ही शुक्लपक्षकी चतुर्दशीका उपवास करना पड़ता है। पाँच ही उपवास किये जाते हैं। विशेष रूपसे आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन महीनोंमें दोनों ही चतुर्दशियोंका उपवास करना, इस प्रकार उक्त पाँच महीनोंमें दश उपवास करना तथा रूपचतुर्दशी और शीलचतुर्दशीके उपवासोंको भी शामिल करना पद्म चतुर्दशी व्रत है। आषाढ़ मासकी अष्टाह्निकाकी चतुर्दशीको शीलचतुर्दशी और श्रावण मासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको रूपचतुर्दशी कहते हैं। पद्ममासचतुर्दशीका प्रारम्भ शीलचतुर्दशीसे किया जाता है।

विवेचन—मासिक व्रत उन व्रतोंको कहा जाता है, जो वर्षमें कई महीने अथवा एक दो महीनेतक किये जायँ। मासिक व्रत प्रायः महीनेमें एक बार ही किये जाते हैं। कुछ व्रत ऐसे भी हैं, जिनके उपवास एक महीनेकी कई तिथियोंमें करने पड़ते हैं। आचार्यने ऊपर पद्ममास चतुर्दशीका स्वरूप बतलाते हुए दो मान्यताएँ रखी हैं। प्रथम मान्यतामें आषाढ़से लेकर कार्तिक तक पाँच महीनोंकी शुक्ला चतुर्दशीको उपवास करनेका विधान किया है। इस मान्यताके अनुसार कुल पाँच उपवास करने पड़ते हैं।

दूसरी मान्यताके अनुसार उपर्युक्त पाँच महीनोंमें दस उपवास करनेको पद्ममासचतुर्दशी व्रत बताया गया है। इन दस उपवासोंमें शीलव्रत चतुर्दशी और रूप चतुर्दशीके व्रत भी शामिल कर लिये गये हैं। आषाढ़ सुदी चतुर्दशीको शीलचतुर्दशी कहा जाता है, इस दिन शीलव्रतका पालन करना तथा उपवास करना महान् पुण्यका कारण माना गया है। शीलव्रतकी महत्ताको दिखलानेके कारण ही इस व्रतको शीलचतुर्दशी व्रत कहा गया है। शील चतुर्दशीको करनेवालेको 'ओं

ह्रीं निरतिचारशीलव्रतधारकेभ्योऽनन्तमुनिभ्यो नम ' मन्त्रका जाप करना चाहिए। इस व्रतके करनेवालेको त्रयोदशीसे शील व्रत धारण करना होता है और पूर्णमासी तक निरतिचार रूपसे व्रतका पालन करना होता है।

रूप चतुर्दशी श्रावण सुदी चतुर्दशीको कहते हैं। इस चतुर्दशीको प्रोषधोपवास करना पडता है तथा भगवान् आदिनाथका पूजन अभिषेक कर उन्हींके अतिशय रूपका दर्शन करना चाहिए। अथवा किसी भी तीर्थंकरकी प्रतिमाका पूजन अभिषेक कर उनके रूपका दर्शन करना चाहिए। इस व्रतकी भी पूर्णिमाको पारणा करनी पड़ती है। इसके लिए 'ओं ह्रीं श्रीऋषभाय नम ' मन्त्रका जाप करना होता है।

कनकावली व्रतकी विशेष विधि

कनकावल्या तु आश्विनशुक्ले प्रतिपत्, पञ्चमी, दशमी, कार्तिककृष्णपक्षे द्वितीया, षष्ठी, द्वादशी चेति, एवं एतद्दिवसेषु सर्वेषु मासेषु चोपवासा द्विसप्ततिः कार्या, इय द्वादशमासभवा कनकावली। कस्यापि मासस्य शुक्लकृष्णपक्षयो षडुपवासा कार्या, एषा मावधिका मासिका कनकावली।

अर्थ—कनकावलीमें आश्विनशुक्ला प्रतिपदा, पञ्चमी और दशमी तथा कार्तिक कृष्णपक्षमें द्वितीया, षष्ठी और द्वादशी इस प्रकार छ उपवास करने चाहिए, इसी प्रकार सभी महीनोंमें कुल ७२ उपवास किये जाते हैं। यह बारह महीनोंमें किये जानेवाला कनकावली व्रत है। किसी भी महीनेमें कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षकी उपर्युक्त तिथियोंमें छ उपवास करना सावधिक मासिक कनकावली व्रत है।

विवेचन—यद्यपि कनकावली व्रतकी विधि पहले बतायी जा चुकी है, परन्तु यहाँपर इतनी विशेषता समझनी चाहिए कि आचार्य सिंहनन्दीने श्रावणसे आरम्भ न कर आश्विनमाससे व्रतारम्भ करनेका विधान किया है। आश्विन मासमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, पञ्चमी और दशमी तथा

कार्तिक मासमें कृष्णपक्षकी द्वितीया, षष्ठी और द्वादशी इस प्रकार छ उपवास किये जाते हैं। आचार्यके मतानुसार प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी तीन तिथियाँ तथा प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी तीन तिथियाँ लेनी चाहिए। मास गणना अमावस्यासे लेकर अमावस्यतक ली जाती है। एक वर्षमें कुल ७२ उपवास करने पड़ते हैं। मासिक कनकावलीमें केवल छ उपवास किये जाते हैं। मास गणना अमान्त ली जाती है।

रत्नावलीव्रतकी विधि

कनकावली चैवमेव रत्नावली, तस्यामाश्विनशुक्ले तृतीया पञ्चमी, अष्टमी, कार्त्तिककृष्णे द्वितीया, पञ्चमी, अष्टमी एव एतद्दिवसेषु सर्वेषु मासेषु द्विसप्ततिरुपवासा कार्या। प्रत्येक मासे षडुपवासा भवन्ति। इय द्वादशमासमया रत्नावली। सावधिका मासिका रत्नावली न भवति।

अर्थ—कनकावली व्रतके समान रत्नावली व्रत भी करना चाहिए। इसमें भी आश्विन शुक्ला तृतीया, पञ्चमी, अष्टमी, तथा कार्तिक कृष्णा द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमी इस प्रकार प्रत्येक महीनेमें छ उपवास करने चाहिए। बारह महीनोंमें कुल ७२ उपवास उपयुक्त तिथियोंमें ही करने पड़ते हैं। यह द्वादश मासवाली रत्नावली है। सावधिक मासिक रत्नावली व्रत नहीं होता है।

विवेचन—कनकावलीके समान रत्नावली व्रतमें भी मास गणना अमावस्यासे ग्रहण की गयी है। अमान्तसे लेकर दूसरे अमान्त एक मास माना जाता है। व्रतका आरम्भ आश्विनके अमान्तके पश्चात् किया जाता है तथा कनकावली और रत्नावली दोनों व्रतोंके लिए वर्ष गणना आश्विनके अमान्तसे ग्रहण की जाती है। रत्नावली व्रत मासिक नहीं होता है, वार्षिक ही किया जाता है। प्रत्येक महीनेमें उपयुक्त तिथियोंमें छ उपवास होते हैं, इस प्रकार एक वर्षमें कुल ७२ उपवास हो जाते हैं। उपवासके दिन अभिषेक, पूजन आदि कार्य पूर्ववत् ही

किये जाते हैं। 'ओं ह्रीं त्रिकालसम्बन्धिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप इन दोनों व्रतोंमें उपवासके दिन करना चाहिए।

पुष्पाञ्जलि व्रत की विधि

पुष्पाञ्जलिस्तु भाद्रपदशुक्ला पञ्चमीमारभ्य शुक्लानवमीपर्यन्त यथाशक्ति पञ्चोपवासा भवन्ति ॥

अर्थ—पुष्पाञ्जलिव्रत भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी से नवमी पर्यन्त किया जाता है। इसमें पाँच उपवास अपनी शक्तिके अनुसार किये जाते हैं।

विवेचन—भादो सुदी पञ्चमीसे नवमी तक पाँच दिन पञ्चमेरुकी स्थापना करके चौबीस तीर्थंकरोंकी पूजा करनी चाहिए। अभिषेक भी प्रतिदिन किया जाता है। पाँच अष्टक और पाँच जयमाल पढ़ी जाती है। 'ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनालयेभ्यो नमः' मन्त्र का प्रतिदिन तीन बार जाप किया जाता है। यदि शक्ति हो तो पाँचों उपवास, अन्यथा पञ्चमीको उपवास, शेष चार दिन रस त्याग कर एकाशन करना चाहिए। रात्रि जागरण विषय कषायोंको अल्प करनेका प्रयत्न एवं आरम्भ परिग्रहका त्याग करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। विकथाओंको कहने और सुननेका त्याग भी इस व्रतके पालनेवालेको करना आवश्यक है। इस व्रतका पालन पाँच वर्षतक करना चाहिए, तत्पश्चात् उद्यापन करके व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है।

लब्धिविधान व्रतकी विधि

लब्धिविधानस्तु भाद्रपदमाघचैत्रशुक्लप्रतिपदमारभ्य तृतीयापर्यन्त दिनत्रयं भवति। दिनहानौ तु दिनमेकं प्रथम कार्यम्, वृद्धौ स एव क्रम स्मर्तव्य ॥

अर्थ—भाद्रपद, माघ और चैत्र मासमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर तृतीयातक तीन दिन पर्यन्त लब्धिविधान व्रत किया जाता है। तिथि हानि होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना होता है और तिथि वृद्धि

होनेपर पहलेवाला क्रम अर्थात् वृद्धिगत तिथि छ घगसे अधिक हो तो एक दिन व्रत अधिक करना चाहिए।

विवेचन—भादों, माघ और चैत्र सुदी प्रतिपदासे तृतीयातक रत्नत्रयविधान व्रत करनेका नियम है। इस व्रतकी धारणा पूर्णिमाको तथा पारणा चतुर्थीको करनी होता है। यदि शक्ति हो तो तीनों दिनोंका अष्टमोपवास करनेका विधान है। शक्तिके अभाव म प्रतिपदाको उपवास, द्वितीयाको ऊनोदर एव तृतीयाको उपवास या कांजी—छाछ या छाछसे निर्मित महेरी अथवा माडभात ऐसा होता है। व्रतके दिनोंम महावीर स्वामीकी प्रतिमाका पूजन, अभिषेक किया जाता है तथा 'ॐ ह्रीं महावीरस्वामिने नम' मन्त्रका जप प्रतिदिन तीन बार किया जाता है। त्रिकाल सामायिक करनेका भी विधान है। रात्रि जागरण तथा स्तोत्र पाठ, भजन-गान आदि भी व्रतके दिनोंकी रात्रियोंमें किये जाते हैं।

आवश्यकता पड़ने अथवा आकुलता होनेपर मध्यरात्रिमें अल्प निद्रा ली जा सकती है। कषाय और आरम्भ परिग्रहको घटाना, विकथाओंकी चर्चाका त्याग करना एव धर्मध्यानमें लीन होना आवश्यक है।

कर्मनिर्जर व्रत की विधि

कर्मनिर्जरस्तु भाद्रपदशुक्लामेकादशीमारभ्य चतुर्दशीपर्यन्त भवति। हानिवृद्धौ च स एव क्रम ज्ञातव्य।

अर्थ—कर्मनिर्जराव्रत भादों सुदी एकादशीसे लेकर भादों सुदी चतुर्दशीतक चार दिन किया जाता है। तिथि हानि और तिथि वृद्धि होनेपर पूर्वोक्त क्रम ही व्रतकी व्यवस्थाके लिए ग्रहण किया गया है।

विवेचन—कर्मनिर्जरा व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ प्रचलित हैं—प्रथम मान्यता भादों सुदी एकादशीसे लेकर चतुर्दशी तक व्रत करनकी है। दूसरी मान्यताके अनुसार आषाढ सुदी चतुर्दशी, श्रावण सुदी चतुर्दशी, भादों सुदी चतुर्दशी एवं आश्विन सुदी चतुर्दशी इन चार तिथियों

को व्रत करने की है। ये चारों उपवास क्रमश सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तपके हेतु एक वर्षके भीतर किये जाते हैं। व्रतके दिनोंम सिद्ध भगवान्‌की पूजा की जाती है तथा 'ॐ ह्रीं समस्तकर्मरहिताय सिद्धाय नम' अथवा 'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रतपसे नम' मन्त्रका जाप व्रतके दिनोंमें तीन बार करना होता है। नित्यपूजा, चतुर्विंशतिजिनपूजा, विशेषत सिद्धपूजाके अनन्तर 'ॐ ह्रीं सामग्रीविशेषविश्लेषिताशेषकर्ममलकलकतया स्वाभाविकात्यन्तिकविशुद्धविशेषाविर्भावादभिव्यक्तपरमोत्कृष्टसम्यक्त्वादिगुणाष्टकविशिष्टम् उदितोदितस्वपरप्रकाशात्मकचिच्चमत्कारमात्रपरमन्त्रपरमानन्दैकमयीं निष्पीतानन्तपर्यायतयैक किञ्चिदनवरतास्वाद्यमानलोकोत्तरपरममधुरस्वरसभरनिर्भर कौ दस्थमधिष्ठिता परमात्मनामासंसारमनासादितपूर्वामपुनरावृत्त्याधितिष्ठता मङ्गललोकोत्तमशरणभूताना सिद्धपरमेष्ठिना स्तवन करोमि" मन्त्रको पढ दोनो हाथोंसे पुष्पोंकी वर्षा करते हुए सिद्धि परमेष्ठीकी स्तुति करनी चाहिए।

ज्ञानपचीसी और भावनापचीसी व्रतोंकी विधि

ज्ञानपञ्चविंशतिव्रते एकादश्यामेकादशोपवासा चतुर्दश्या चतुर्दशोपवासा कार्या भवन्ति। मतान्तरेण दशम्या दशोपवासा पूर्णिमाया पञ्चदशोपवासा कार्या भावनापञ्चविंशतिव्रते तु प्रतिपदायामेकोपवास द्वितीयाया द्वौ उपवासौ, तृतीयाया त्रय उपवासा, पञ्चम्या पञ्चोपवास, षष्ठ्या षडुपवासा अष्टम्यामष्टो उपवासा कार्या भवन्ति। मन्तान्तरेण दशम्या दशोपवासा पञ्चम्या पञ्चोपवासा, अष्टम्यामष्टौ उपवासा प्रतिपदाया द्वौ उपवासौ, कार्या भवन्ति। एवा सम्यक्त्वपञ्चविंशतिका मूढत्रय मदाश्चाष्टौ अनायतनानि षट् अष्टौ शंकाद्यो दोषा, इत्येषा निवारणार्थं कर्त्तव्या। उपवासादीना मासतिथ्या ग्राह्य।

अर्थ—ज्ञानपचीसी व्रतमें एकादशी तिथिके ग्यारह उपवास और चतुर्दशी तिथिके चौदह उपवास किये जाते हैं। मतान्तरसे इस व्रतमें दशमीके दस उपवास और पूर्णिमाके पन्द्रह उपवास किये जाते हैं।

भावनापच्चीसी व्रतमें प्रतिपदाम एक उपवास, द्वितीया तिथिमें दो उपवास, तृतीयामें तीन उपवास, पञ्चमी तिथिमें पाँच उपवास, षष्ठी तिथिमें छ उपवास और अष्टमी तिथिमें आठ उपवास किये जाते हैं। मतान्तरसे दशमी तिथिमें दस उपवास, पञ्चमीमें पाँच उपवास, अष्टमीमें आठ उपवास और प्रतिपदामें दो उपवास किये जाते हैं। यह भावना पच्चीसी व्रत तीन मूढ़ता, आठ मद, छ अनायतन और आठ शंकादि दोषोंको दूर करनेके लिए किया जाता है। इसके उपवास करनेके लिए तिथि, मास आदिका नियम ग्राह्य नहीं है। अर्थात् यह व्रत किसी भी मासमें किसी भी तिथिसे प्रारम्भ किया जा सकता है। ज्ञानपचीसी और भावनापचीसी दोनों ही व्रतोंमें पचीस-पचीस उपवास किये जाते हैं। प्रथम ज्ञान प्राप्तिके लिए और द्वितीय सम्यग्दर्शनको निर्दोष करनेके लिए किया जाता है।

विवेचन—पचीसी व्रत कई प्रकारसे किये जाते हैं। प्रधान दो प्रकारके पचीसी व्रत हैं—ज्ञानपचीसी और भावना-पचीसी इसका उद्देश्य द्वादशांग जिनवाणीकी आराधना है तथा सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति उसका फल है। ज्ञानपचीसी व्रतमें प्रधान रूपसे श्रुतज्ञानकी पूजा तथा श्रुतस्कन्ध यन्त्रका अभिषेक किया जाता है। इस व्रतमें ग्यारह अंगोंके ज्ञानके लिए ग्यारह एकादशियोंके उपवास और चौदह पूर्वोंके ज्ञानके लिए चौदह चतुर्दशियोंके उपवास किये जाते हैं। उदाहरण—श्रावण सुदी चतुर्दशी को पहला उपवास, भाद्रपद एकादशीको दूसरा, भादों बदी चतुर्दशीको तीसरा, भादों सुदी एकादशीको चौथा, भादों सुदी चतुर्दशीको पाँचवाँ, आश्विन बदी एकादशीको छठवाँ, आश्विन बदी चतुर्दशीको सातवाँ, आश्विन सुदी एकादशीको आठवाँ, आश्विन सुदी चतुर्दशीको नौवाँ, कार्तिक बदी एकादशीको दसवाँ, चतुर्दशीको ग्यारहवाँ, कार्तिक सुदी एकादशीको

हः णमो लोए सव्व साहूणं' इस मन्त्रका जाप किया जाता है। उपवासके पहले और पिछले दिन एकाशन करना होता है।

माससावधिक व्रतोंका कथन

माससावधिकानि ज्येष्ठजिनवरसूत्रचन्दनषष्ठीनिर्दोषसप्तमीजिनरात्रिमुक्तावलीरत्नत्रयानन्तमेघमालाषोडशकारणशुक्लपञ्चम्यष्टाह्निकादीनि।

अर्थ—माससावधिक ज्येष्ठजिनवर, सूत्रमन, चन्दनषष्ठी, निर्दोष सप्तमी, जिनरात्रि, मुक्तावली, रत्नत्रय, अनन्त, मेघमाला, शुक्लपञ्चमी और अष्टाह्निका आदि हैं।

ज्येष्ठजिनवर व्रतकी विधि

ज्येष्ठकृष्णपक्षे प्रतिपदि ज्येष्ठशुक्ले प्रतिपदि चोपवास, आषाढकृष्णस्य प्रतिपदि चोपवास, एवमुपवासत्रय करणीयम्, ज्येष्ठमासस्यावशेषदिवसेष्वेकाशन करणीयम्, एतद्व्रत ज्येष्ठजिनवरव्रत भवति। ज्येष्ठप्रतिपदामारभ्याषाढकृष्णाप्रतिपत् पर्यन्त भवति।

अर्थ—ज्येष्ठकृष्णा प्रतिपदा, ज्येष्ठशुक्ला प्रतिपदा और आषाढ कृष्णा प्रतिपदा, इन तीनों तिथियोंमें तीन उपवास करने चाहिए। ज्येष्ठ मासके शेष दिनोंमें एकाशन करना होता है। इस व्रतका नाम ज्येष्ठजिनवर व्रत है। यह ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदासे आरम्भ होता है और आषाढ कृष्णा प्रतिपदाको समाप्त होता है।

विवेचन—ज्येष्ठजिनवर व्रत ज्येष्ठके महीनेमें किया जाता है। यह व्रत ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदासे प्रारम्भ होता और आषाढ कृष्णा प्रतिपदाको समाप्त होता है। इसमें प्रथम ज्येष्ठवदी प्रतिपदाको प्रोषध किया जाता है, पश्चात् कृष्ण पक्षके शेष १४ दिन एकाशन करते हैं। पुन ज्येष्ठ सुदी प्रतिपदाको उपवास और शेष १४ दिन एकाशन तथा आषाढ वदी प्रतिपदाको उपवासकर व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है।

ज्येष्ठजिनवर व्रतमें मिट्टीके पाँच कलशोंसे प्रतिदिन भगवान् आदिनाथका अभिषेक करना चाहिए। 'ॐ ह्रीं श्रीज्येष्ठजिनाधिपतये नम कलशस्थापन करोमि' इस मन्त्रको पढ़कर कलशोंकी स्थापना की जाती है। पाँच कलशोंमेंसे चार कलशा द्वारा अभिषेक स्थापनके समय ही किया जाता है और एक कलशसे जयमाल पढ़नेके अनन्तर अभिषेक होता है। इस व्रतमें ज्येष्ठजिनवरकी पूजा की जाती है। 'ॐ ह्रीं श्रीऋषभजिनेन्द्राय नम' इस मन्त्रका जाप करना होता है। ज्येष्ठ मासभर तीनो समय सामायिक करना, ब्रह्मचर्यका पालन एवं शुद्ध और अल्प भोजन करना आवश्यक है।

जिनगुणसम्पत्ति व्रतकी विधि

जिनगुणसम्पत्तौ तु प्रतिपद् षोडशोपवासा पञ्चम्या पञ्चोपवासा अष्टम्या अष्टौ उपवासा दशम्या दशोपवासा चतुर्दश्या चतुर्दशोपवासा, षष्ठ्या षडुपवासा, चतुर्थ्याश्चत्वार उपवासा, एव त्रिषष्टि उपवासा भवन्ति। ज्येष्ठमासकृष्णपक्षीयप्रतिपदमारभ्य व्रत क्रियते यावत्त्रिषष्टि स्यादेव नियमो नैव ज्ञायते पूर्वोपवासस्यैव श्रुतेऽप्युपदेशादर्शनात्। अन्येषा पृथक्भूतता स्वरुचिसम्मता।

अर्थ—जिनगुणसम्पत्ति व्रतमें प्रतिपदाके सोलह उपवास, पञ्चमीके पाँच उपवास, अष्टमीके आठ उपवास, दशमीके दश उपवास, चतुर्दशीके चौदह उपवास, षष्ठीके छ उपवास और चतुर्थीके चार उपवास, इस प्रकार कुल ६३ उपवास किये जाते हैं। यह व्रत ज्येष्ठ मासके कृष्णपक्ष की प्रतिपदासे आरम्भ होता है। ६३ उपवास लगातार किये जायँ, ऐसा नियम नहीं है। जिस तिथिके उपवास किये जायँ उनको पूर्ण करना आवश्यक है, एक तिथिके उपवास पूर्ण हो जानेपर दूसरी तिथिके उपवास स्वेच्छासे किये जा सकते हैं।

विवेचन—जिनगुणसम्पत्ति व्रतमें ६३ उपवास करनेका विधान है। इसमें षोडशकारणके सोलह उपवास, पञ्च परमेष्ठीके पाँच, अष्ट

प्रातिहार्यके आठ और चौंतीस अतिशयों—दस जन्म, दस केवलज्ञान और चौदह देवकृत अतिशयोंके चौंतीस उपवास किये जाते हैं। यह व्रत ज्येष्ठवदी प्रतिपदासे आरम्भ किया जाता है। ६३ उपवास एक साथ लगातार करनेकी शक्ति न हो तो सोलह प्रतिपदाओंके सोलह उपवास, जो कि षोडशकारणके व्रत कहे जाते हैं, के करनेके पश्चात् पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, जो कि पञ्च परमेष्ठीके गुणोंकी स्मृतिके लिए किये जाते हैं, करने चाहिए। इन उपवासोंके पश्चात् आठ प्रातिहार्योंकी स्मृतिके लिए आठ अष्टमियोंके आठ उपवास एक साथ तथा चौंतीस अतिशयोंके, स्मृतिकारक दस दशमियोंके दस उपवास, चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास, छ षष्ठियोंके छ उपवास और चार चतुर्थियोंके चार उपवास इस प्रकार कुल (१४ + १० + ६ + ४ = ३४) उपवास एक साथ करने चाहिए।

जिनगुणसम्पत्ति व्रतमें उपवासके दिन गृहारम्भका त्याग कर पूजन, अभिषेक करना चाहिए तथा प्रारम्भके सोलह उपवासोंमें 'ओं ह्रीं तीर्थंकरपदप्राप्तये दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो नम' पञ्च परमेष्ठीके उपवासोंमें "ओं ह्रीं परमपदस्थितेभ्यो पञ्चपरमेष्ठिभ्यो नम" आठ प्रातिहार्योंके उपवासोंमें 'ओं ह्रीं अष्टप्रातिहार्यमण्डिताय तीर्थंकराय नम' और चौंतीस अतिशयोंके उपवासोंके लिए "ओं ह्रीं चतुस्त्रिंशदतिशयसहितेभ्य अर्हद्भ्य नम" मन्त्रोंका जाप किया जाता है। व्रत पूरा हो जानेपर उद्यापन करा दिया जाता है।

चन्दन षष्ठीव्रतकी विधि

चन्दनषष्ठ्या तु भाद्रपदकृष्णा षष्ठी ग्राह्या, षड्वर्षाणा यावत् व्रत भवति, अत्र चन्द्रप्रभस्य पूजाभिषेकं कार्यम्।

अर्थ—चन्दनषष्ठी व्रत भादों वदी षष्ठीको होता है, छ वर्षतक व्रत किया जाता है। इस व्रतम चन्द्रप्रभ भगवान्का पूजन, अभिषेक करना चाहिए।

विवेचन—भादों वदी षष्ठीको उपवास धारण करे। चारों प्रकारके आहारका त्यागकर जिनालयमें भगवान् चन्द्रप्रभका पूजन, अभिषेक करे। छ प्रकारके उत्तम प्रासुक फलोंसे छ अष्टक चढ़ावे। णमोकार मन्त्रका १०८ बार फूलोंसे जाप करना चाहिए। चारों प्रकारके संघको आहार, औषध, अभय और ज्ञान इन चारों दानोंको देना चाहिए। तीनों काल सामायिक, अभिषेक, पूजन और रात्रि जागरण करना चाहिए। रातको स्तोत्र, भजन, आलोचना एवं प्रार्थनाएँ पढ़ते हुए धर्मध्यान पूर्वक बिताना चाहिए। उपवासके दिन गृहारम्भ, विषय कषाय और विकथाओंका त्याग करना चाहिए। यह छ वषतक किया जाता है।

रोहिणीव्रत करनेकी आवश्यकता

यथा शुक्लकृष्णपक्षयो पञ्चदशदिनेषु अष्टम्या चतुर्दश्या श्चोपवास तथैव सौभाग्यनिमित्तं स्त्रिय सप्तविंशतिनक्षत्रेषु रोहिण्याख्यनक्षत्रे उपवास कुर्वन्ति ॥

अर्थ—जिस प्रकार कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षके पन्द्रह-पन्द्रह दिनोंमें प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास किया जाता है, उसी प्रकार स्त्रियाँ अपने सौभाग्यकी वृद्धिके लिए सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे रोहिणी नक्षत्रका उपवास करती हैं।

रोहिणीव्रतका फल

रोहिणीव्रतोपवासस्य किं फलमिति चेत्तदुक्त योगीन्द्रदेवै -

दीवइ दिण्णइ जिणवरह मोहहु होइ ण ठाउ।
अह उववासहिँ रोहिणिहिँ सोउ विपलहु जाइ ॥[1]

अर्थ—रोहिणी व्रतके उपवासका क्या फल है? आचार्य योगीन्द्र देवने फल बतलाते हुए कहा है—

जिनेन्द्र भगवान्को दीप चढ़ानेसे मोहको स्थान नहीं मिलता अर्थात्

१ श्रावकधम्मदोहा १८८ दूहा, पृ० ५६।

मोह नष्ट हो जाता है तथा रोहिणी व्रतके उपवाससे शोक भी प्रलयको पहुँच जाता है। अभिप्राय यह है कि रोहिणी व्रत करनेसे सभी प्रकारके शोक, दारिद्र्य आदि नष्ट हो जाते हैं।

रोहिणीव्रतकी व्यवस्था

तथा पद्मदेवै प्रोक्त चेति—
यस्मिन् दिने समायाति, रोहिणीभ मनोहरम्।
तस्मिन् दिने व्रत कार्यं न पूर्वस्मिन् परत्र वा॥

अर्थ—जिस दिन रोहिणी नक्षत्र हो उसी दिन व्रत करना चाहिए। आगे पीछे व्रत करनेका कुछ भी फल नहीं होता है। रोहिणी नक्षत्र व्रत प्रत्येक महीनेमें एकबार किया जाता है।

यदा रोहिणी न स्यात् कृत्तिकामृगशीर्षे स्त तयोर्मध्ये किं करणीय स्यादित्याह—काले यदि रोहिणिकाया प्रोषध न स्यात्, तदा स निष्फल स्यात् कालेन विना यथा मेघ।

वामदेवे प्रोक्तमिद यावत् काल भ स्यात् तावत् काल करोतु भव्यतम, न तु दैवसिकासु नियम प्रोक्त मुनीश्वरे, अर्थात् यावत् रोहिणी तावत् सर्वथा त्याग कार्यं। पारणा-दिने तदुत्तरान्न्तर च पारणा कर्त्तव्या। एतदेव शुक्लपञ्च-मीकृष्णपञ्चमीजिनगुणसम्पत्तिज्येष्ठजिनवरकवलचान्द्रायणादयो ज्ञातव्या। रोहिणी तु त्रिवर्षा स्यात्, पञ्चवर्षा सप्तवर्षा च सम्प्रोक्ता वसुनन्द्यादिसूरिभि, आदिशब्देन सकलकीर्तिछत्रसेन सिंहनन्दिमल्लिषेणहरिषेणपद्मदेववामदेवैः सम्प्रोक्ता ग्राह्या। अन्येऽप्याधुनिका दामोदरदेवेन्द्रकीर्त्तिहेमकीर्त्यादयश्च ज्ञेया।

अर्थ—यदि व्रतके दिन रोहिणी न हो अर्थात् रोहिणी नक्षत्रका क्षय हो कृत्तिका और मृगशीर्ष हों तो क्या करना चाहिए; इस प्रकारकी शंका उत्पन्न होनेपर आचार्य कहते हैं कि यदि समयपर रोहिणी व्रतका प्रोषध नहीं किया जायगा तो, उसका फल कुछ भी नहीं होगा। जिस

प्रकार असमयपर वर्षा होनेसे उस वर्षासे कुछ भी लाभ नहीं होगा, उसी प्रकार असमयमें व्रत करनेसे कुछ भी लाभ नहीं होता है।

वामदेव आचार्यने भी कहा है कि जब रोहिणी नक्षत्र हो तभी व्रत करना चाहिए। आचार्योंने दैवसिक व्रतोंके लिए यह नियम नहीं बताया है, अर्थात् जिस दिन रोहिणी हो उस दिन व्रत करना, अन्य नक्षत्रोंमें व्रत नहीं किया जाता है। रोहिणीके अनन्तर अर्थात् मृगशिर नक्षत्रमें पारणा की जाती है। शुक्लपञ्चमी, कृष्णपञ्चमी, जिनगुणसम्पत्ति, ज्येष्ठ जिनवर, कवलचान्द्रायण आदि व्रतोंको इसी प्रकार मासावधि समझना चाहिए।

रोहिणी व्रत तीन वर्ष, पाँच वर्ष या सात वर्ष प्रमाण किया जाता है, ऐसा वसुनन्दी, सकलकीर्त्ति, जयसेन, सिंहनन्दि, मल्लिषेण, हरिषण, पद्मदेव, वामदेव आदि आचार्योंने कहा है। अन्य अर्वाचीन आचार्य दामोदर, देवेन्द्रकीर्त्ति, हेमकीर्त्ति आदिने भी इसी बातको बतलाया है।

विवेचन—रोहिणी व्रत प्रतिमास रोहिणी नामक नक्षत्र जिस दिन पड़ता है, उसी दिन किया जाता है। इस दिन चारों प्रकारके आहारका त्यागकर जिनालयमें जाकर धर्मध्यानपूर्वक सोलह पहर व्यतीत करे अर्थात् सामायिक, स्वाध्याय, पूजन, अभिषेकमें समयको लगाया जाता है। शक्त्यनुसार दान भी करनेका विधान है। इस व्रतकी अवधि साधारणतया पाँच वर्ष पाँच महीनेकी है, इसके पश्चात् उद्यापन कर देना चाहिए।

रोहिणी व्रतके समयका निश्चय करते हुए आचार्यने कहा है कि यदि रोहिणी नक्षत्र किसी भी दिन पञ्चांगमें एकघड़ी घटी भी हो तो भी व्रत उस दिन किया जा सकता है। जब रोहिणी नक्षत्रका अभाव हो तो गणितके हिसाबसे कृत्तिकाकी समाप्ति होनेपर रोहिणीके प्रारम्भमें व्रत करना चाहिए। मृगशिर अथवा कृत्तिकाको व्रत करना निषिद्ध है, इन नक्षत्रोंमें व्रत करनेसे व्रत निष्फल हो जाता है। जबतक सूर्योदय कालमें रोहिणी नक्षत्र मिले तबतक अस्तकालीन रोहिणी नक्षत्र नहीं ग्रहण

करना चाहिए। यद्यपि आगे आचार्य छ घटी प्रमाण ही नक्षत्र ग्रहण करनेके लिए विधान करेंगे, पर छ घटीके अभावमें एक दो घटी प्रमाण भी उदयकालीन रोहिणी ग्रहण किया जा सकता है।

रोहिणी व्रतकी अन्य व्यवस्था

तथान्यैः प्रोक्तं रोहिण्यां दशलक्षणरत्नत्रयषोडशकारणव्रत-वत् रसघटिकाप्रमाणं ग्राह्यमिति अन्यत् देवनन्दिमुनिभिः प्रोक्तं यत् दिवसे क्षीणे नियमस्तुते कार्या, दिवसे तस्मिन्नेव हि चतुष्टयोपलम्भात्। ते के इति चेदाह—निर्वाणकार्तिकोत्सव मालोत्सवधूपोत्सवयात्रोत्सवसवस्तूत्सवाः। चतुष्टयं किमिति चेदाह—द्रव्यकालक्षेत्रभावाख्यमिति श्रुतसागरैः प्रोक्तं, अन्यै-रपि प्रोक्तं तद्यथा—

आदिमध्यावसानेषु हीयते तिथिरुत्तमा।
आदौ व्रतविधिः कार्यः प्रोक्तं श्रीमुनिपुङ्गवैः॥
आदिमध्यान्तभेदेषु व्रतविधिर्विधीयते।
तिथिह्रासे तदुक्तञ्च गौतमादिगणेश्वरैः॥

अर्थ—अन्य आचार्योंने भी कहा है कि रोहिणी नक्षत्रका प्रमाण दश-लक्षण, रत्नत्रय, षोडशकारण व्रतके समान छ घटी प्रमाण ग्रहण करना चाहिए। देवनन्दि आचार्यने और भी कहा कि—दिनहानि होनेपर—रोहिणी नक्षत्रका अभाव होनेपर उसी दिन व्रत, नियम करना चाहिए, क्योंकि पूर्वाचार्योंके वचनोंमें व्रत तिथिका निर्णय करते समय चतुष्टय शब्दकी उपलब्धि होती है। निर्वाण, दीपमालिका उत्सव, धूपोत्सव, यात्रोत्सव, वस्तु उत्सव आदि व्रतोंके निर्णयमें भी आचार्योंने चतुष्टय शब्द-का व्यवहार किया है। श्रुतसागर आचार्यने चतुष्टय शब्दका अर्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव लिया है। अन्य आचार्योंने भी व्रत व्यवस्थाके लिए कहा है—

यदि व्रतके दिनोंमें आदि, मध्य और अन्तके दिनोंमें कोई तिथि घट जाय, तो एक दिन पहले व्रत करना चाहिए, ऐसा श्रेष्ठ मुनियोंने

कहा है। तिथि ह्रास होने पर आदि, मध्य और अन्त भेदोंमें व्रत विधि की जाती है अर्थात् तिथिह्रास होनेपर एकदिन पहले व्रत किया जाता है। इस प्रकार गौतम आदि श्रेष्ठ आचार्योंने कहा है।

विवेचन—रोहिणी व्रतके दिन रोहिणी नक्षत्र छ घटी प्रमाणसे अल्प हो तो भी देश, काल आदिके भेदसे आचार्योंने व्रत करनेका विधान किया है, अत रोहिणी व्रत करना चाहिए। रोहिणी व्रतके लिए एक दो घटी प्रमाण नक्षत्रको भी उदयकालमें ग्रहण किया गया है। कुछ आचार्यों का यह मत है कि रोहिणी नक्षत्रके क्षीण होनेपर भी व्रत उसी दिन करना है अर्थात् कृत्तिकाके उपरान्त और मृगशिराके पूर्वका जितना समय है, वही व्रतकाल है। रोहिणी व्रत यों तो ऐश्वर्य, सुख आदिकी वृद्धिके लिए स्त्री पुरुष दोनों ही करते हैं, पर विशेषत इस व्रतको स्त्रियाँ करती हैं। इस व्रतके करनेसे स्त्रियोंको सौभाग्य, सन्तान, ऐश्वर्य, स्वास्थ्य आदि अनेक फलोंकी प्राप्ति होती है। इस व्रतमें उपवासके दिन तीनों समय 'ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय नम' मन्त्रका जप करना चाहिए।

जिनको उपवास करनेकी शक्ति न हो वे संयम ग्रहण कर अल्पभोजन करें, या काजी अथवा माड भात लें। व्रतके दिन पञ्चाणुव्रतोंका पालन करना, कषाय और विकथाओंको छोड़ना आवश्यक है। मृगशिर नक्षत्रमें पारणा करना एव कृत्तिकामें व्रतकी धारणा करनेसे व्रतविधि पूर्ण मानी जाती है।

अप्राप्य यामस्तमुपैति सूर्यस्तिथिं मुहूर्त्तत्रयवाहिनीं च।
धर्मेषु कार्येषु वदन्ति पूर्णां तिथिं व्रतज्ञानधरा मुनीशा ॥

इति चामुण्डरायवाक्य तथा च तत् पुराणेऽप्येवमुक्तम्—

व्रताना दिनेशा दिनेशे प्रहीणे किलादौ च मध्येऽवसाने तथैव।
तथा मुख्यधर्म गृहीत्वा प्रकार्यं विधान व्रताना समुक्त मुनीशै ॥

आदित दिनक्षयेषु प्रथममेवमाचरेत्, मध्यत दिनक्षयेषु प्रथममेवमाचरेत्, अन्तत दिनक्षयेषु अय विधि न विधीयते। उक्त च—

तिथीना क्षये द्विपितुर्यादिकाना
न वै तद्व्रताना तिथिर्ध्येत्प्रयाति।
दिनेऽवशिष्टे व्रत कार्यमाद्यो
गृहीत्वा दिन तत्प्रपूर्णा निधि च॥ १॥
तिथीना सुवृद्धो द्वितुर्यादिकाना
व्रताना दिनेष्वेव कार्य विधानम्।
यदा कोऽपि मर्त्यो मरोग सदु ख
तदा तेपु कार्य विधान बुधोक्तम्॥ २॥

इति चामुण्डरायपुराणे रोहिण्युत्सवनिर्वाणकार्तिकाभिषेकोत्सवे यात्रोत्सवे वस्तूत्सवे च विधानम्॥

अर्थ—जिस तीन मुहूर्तवाली तिथिको प्राप्तकर सूर्य अस्त होता है, उस तिथिको व्रतके ज्ञाता धर्मादि कार्योंमें पूर्ण मानते हैं। इस प्रकार चामुण्डरायने कहा है, चामुण्डरायपुराणमें और भी कहा गया है—

व्रतोंके दिनोंमें आदि, मध्य या अन्तम तिथिका ह्रास हो तो मुख्य दिनको लेकर व्रत विधान करना चाहिए। इस प्रकार श्रेष्ठ आचार्योंने कहा है।

आदिमें तिथि क्षय हो या मध्यमें तिथि क्षय हो तो एक दिन पहले व्रत करना चाहिए। अन्तम तिथि क्षय होनेपर यह विधि नहीं की जाती है। कहा भी है—

दो-तीन या चार दिनके व्रतोंमें किसी तिथिके क्षय होनेपर, पूर्व दिनसे व्रत करने चाहिए तथा पूर दिनसे ही व्रतविधि सम्पन्न की जाती है।

यदि दो-तीन या चार दिनके व्रतोंमें किसी तिथिकी वृद्धि हो जाय तो, व्रत सख्यक दिनोंमें ही व्रतविधि पूर्ण करनी चाहिए। परन्तु आचार्योंने यह विधान किसी रोगी, दु खी व्यक्तिके लिए किया है। स्वस्थ और सुखी व्यक्तिको तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए।

इस प्रकार चामुण्डरायपुराणमें रोहिणी-उत्सव, निर्वाण कार्त्तिकोत्सव, यात्रा-उत्सव, वस्तु उत्सव आदिके लिए विधान किया है।

विवेचन—रोहिणी व्रतके लिए उदयकालमें रोहिणी नक्षत्र छः घटी अथवा इसमें अल्प प्रमाण भी हो तो उसी दिन रोहिणीव्रत करना चाहिये। यदि उदयकालमें रोहिणी नक्षत्रका अभाव हो तो एक दिन पहले व्रत किया जायगा। यों तो सभी व्रतोंके लिए यही नियम है कि तिथिक्षयमें एक दिन पूर्वसे व्रत किया जाता है और तिथि-वृद्धिमें एक दिन अधिक व्रत करनेका विधान है। चामुण्डरायपुराणके अनुसार रोगी, वृद्ध और असमर्थ व्यक्तियोंको तिथिवृद्धि होनेपर नियत दिन प्रमाण ही व्रत करना चाहिए। रोहिणीव्रत सिर्फ एक दिनका होता है, अतः इस व्रतमें उदयकालमें छः घटीका नियम प्रायः मान्य होता है। हाँ, कभी कभी एक दो घटी प्रमाण उदयमें रोहिणीके रहनेपर भी व्रत किया जाता है।

दिने क्षते च छिन्ने वाऽच्छिन्ने नत्र च निश्चयः।
क्षेत्रकालादिमर्यादोल्लङ्घनं तत्र दूषणम्॥

अन्यदपि षोडशकारणजारिदमालारत्नत्रयादिव्रतानां पूर्णाभिषेके प्रतिपत्तिथिरेव नापरा ग्राह्येति पूर्वोक्तवचनात्। अपरा द्वितीया ग्राह्येति अनवस्थाज्ञाभङ्गसङ्करादयो दोषा भवन्तीति अभ्रदेवमतमित्येष रोहिणीव्रतनिर्णयः।

अर्थ—तिथिक्षय या तिथि-वृद्धि होनेपर व्रत करनेके लिए देशकाल की मर्यादाका विचार अवश्य किया जाता है। जो देश कालकी मर्यादा का विचार नहीं करता है, उसके व्रतोंमें दूषण आ जाता है।

अन्य षोडशकारण, मेघमाला, रत्नत्रय आदि व्रतोंके पूर्ण अभिषेकके लिए प्रतिपदा तिथि ग्रहण की गयी है, अन्य तिथि नहीं। यदि अन्य द्वितीया तिथि ग्रहण की जाय तो अनवस्था, आज्ञाभंग, सङ्कर आदि दोष आ जायँगे, इस प्रकार अभ्रदेवका मत है। रोहिणी व्रतके निर्णयके लिए

भी देशकालकी मर्यादाका विचार करना चाहिए। इस प्रकार रोहिणी व्रतका निर्णय समाप्त हुआ।

विवेचन—रोहिणीव्रत रोहिणी नक्षत्रको किया जाता है। जिस दिन पञ्चाङ्गमें रोहिणी ६ घटी या इससे अधिक प्रमाण हो उस दिन व्रत करनेका विधान है। यदि कदाचित् ६ घटी प्रमाण रोहिणी नक्षत्र न मिले तो एकाध घटी प्रमाण मिलनेपर भी व्रत किया जा सकता है। जब रोहिणी नक्षत्रका अभाव हो तो कृत्तिकाके उपरान्त और मृगशिरसे पूर्व रोहिणी व्रत करना चाहिए। जब दो दिन रोहिणी नक्षत्र हो तो जिस दिन पूर्ण नक्षत्र हो उस दिन व्रत करना तथा अगले दिन यदि छ घटीसे ऊपर या ६ घटी प्रमाण ही रोहिणी नक्षत्र हो तो अगले दिन भी व्रत किया जायगा। इससे कम प्रमाण होनेपर व्रतकी पारणा की जायगी।

रविव्रतकी विधि

आदित्यव्रते पार्श्वनाथार्कसङ्गमे आषाढमासे शुक्लपक्षे तत्प्रथममादित्यमारभ्य नवसु अर्कदिनेषु व्रतं कार्यं नववर्षं यावत्। प्रथमवर्षे नवोपवास, द्वितीयवर्षे नवैकाशना, तृतीयवर्षे नव काञ्जिका, चतुर्थवर्षे नवरूक्षा, पञ्चमवर्षे नवनीरसा, षष्ठ वर्षे नवालवणा, सप्तमवर्षे नवागोरसा, अष्टमवर्षे नवोनोदरा, नवमवर्षे अलवणा ऊनोदरा नव। एवमेकाशीतिः कार्या। व्रत दिने श्रीपार्श्वनाथस्याभिषेकः कार्यः पूजनं च। समाप्तावुद्यापनं च कार्यम्, ये भव्या इदं रविव्रतं विधिपूर्वकं कुर्वन्ति तेषां कण्ठे मुक्तिकामिनी वरण्डरत्नमाला पतिष्यति।

अर्थ—रविव्रतमें आषाढ मास शुक्ल पक्षमें प्रथम रविवार पार्श्वनाथ सम्पर्क होता है, इससे आरम्भ कर नौ रविवार तक व्रत करना चाहिए। यह व्रत नौ वर्ष तक किया जाता है। प्रथम वर्षमें नौ रविवारोंको उपवास, द्वितीय वर्षमें नौ रविवारोंको एकाशन, तृतीय वर्षमें नव रविवारोंको काञ्जी–छाछ या छाछसे बने महेरी आदि पदार्थ लेकर

एकाशन, चतुर्थ वर्षमें सब रविवारोंको बिना घी का रूखा भोजन, पञ्चम वर्षमें भी रविवारोंको नीरस भोजन, षष्ठ वर्षमें भी रविवारोंको बिना नमकका अलोना भोजन, सप्तम वर्षमें भी रविवारोंको बिना दूध, दही और घीके भोजन, अष्टम वर्षमें भी रविवारोंको ऊनोदर एवं नवम वर्षमें भी रविवारोंको बिना नमकके भी ऊनोदर किये जाते हैं। इस प्रकार ८१ व्रत दिन होते हैं। व्रतके दिन श्रीपार्श्वनाथ भगवान्‌का अभिषेक और पूजन किये जाते हैं। जो विधिपूर्वक रविव्रतका पालन करते हैं, उनके गलेमें मोक्षलक्ष्मीके गलेका हार पड़ता है। व्रत पूरा होनेपर उद्यापन करना चाहिए।

विवेचन—आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षके प्रथम रविवारसे लेकर नौ रविवारों तक यह व्रत किया जाता है। प्रत्येक रविवारके दिन उपवास या बिना नमकका एकाशन करनेका नियम है। व्रतके दिन पार्श्वनाथ भगवान्‌का पूजन, अभिषेक करे तथा समस्त गृहारम्भका त्याग कर, कषाय और वासनाको दूर करनेका प्रयत्न करे। रात्रि जागरण पूर्वक व्यतीत करे तथा 'ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपार्श्वनाथाय नमः' इस मन्त्रका तीन बार एक सौ आठ बार जाप करना चाहिए। नौ वर्ष व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन करनेका विधान है।

पहले वर्ष सब उपवास, दूसरे वर्ष नमक बिना माड़ भात, तीसरे वर्ष नमक बिना दाल भात, चौथे वर्ष बिना नमक खिचड़ी, पाँचवें वर्ष बिना नमक रोटी, छठवें वर्ष बिना नमक दही भात, सातवें और आठवें वर्ष बिना नमक मूँगकी दाल और रोटी तथा नौवें वर्ष एक बारका परोसा हुआ बिना नमकका भोजन करे। थालीमें जूठन नहीं छोड़ना चाहिए। प्रथम रविवार और अन्तिम रविवारका प्रतिवर्ष उपवास करना चाहिए। व्रतके दिन नवधा भक्ति सहित मुनिराजोंको भोजन कराना चाहिए।

रविव्रतका फल

सुतं वन्ध्या समाप्नोति दरिद्रो लभते धनम्।
मूढः श्रुतमवाप्नोति रोगी मुञ्चति व्याधितः॥

अर्थ—रविवारका व्रत करनेसे बन्ध्या स्त्री पुत्र प्राप्त करती है, दरिद्र व्यक्ति धन प्राप्त करता है, मूर्ख व्यक्ति शास्त्रज्ञान एवं रोगी व्यक्ति व्याधिसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

सप्तपरमस्थान व्रतकी विधि

अथ सप्तपरमस्थान श्रावणमासे शुक्लपक्षादिमदिनमारभ्य शुक्लसप्तदिन यावत् कार्यम्। व्रतदिने स्नपनपूजाजाप्यकथाश्रवणदानानि कार्याणि। एकवस्तुभक्षणं कार्यमा सप्तदिनम्, विधिवत् समाप्तावुद्यापनं च। तत्फलम्—

जातिमैश्वर्यगार्हस्थ्यं समुत्कृष्टं तपस्तथा।
सुराधीशपदं चक्रिपदं चार्हन्त्यसप्तमम् ॥१॥
सन्निर्वाणपदं भव्यलोके हि जिनभाषितम्।
अमात्मभविदामेति परमस्थानसप्तकम् ॥२॥

अर्थ—सप्तपरमस्थान व्रतमें श्रावणमास सुदी प्रतिपदासे श्रावण सुदी सप्तमी तक व्रत करना चाहिए। व्रतके दिन अभिषेक, पूजन, जाप, कथाश्रवण, दान आदि कार्योंको करना चाहिए। सातों दिन एक ही वस्तुका भोजन किया जाता है। विधिवत् व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन किया जाता है। इस व्रतका फल निम्न है—

जाति, ऐश्वर्य, गार्हस्थ्य, उत्कृष्ट तप, इन्द्रपदवी या चक्रवर्ती पदवी, अर्हन्तपदकी प्राप्ति इस व्रतके करनेसे होती है। संसारमें निर्वाण ही परम पद है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान्ने कहा है। इस प्रकार सप्तपरमस्थान व्रतके पालनेसे सातवाँ परमपद निर्वाण प्राप्त होता है। अभिप्राय यह है कि सप्त परमस्थान व्रतके पालनेसे सप्त परमपदकी प्राप्ति होती है। यह व्रत लौकिक अभ्युदयके साथ निर्वाणपदको भी देनेवाला है। जो श्रावक इस व्रतका पालन करता है, वह परम्परासे अल्पकालमें ही निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

विवेचन—सप्तपरमस्थान व्रत श्रावण सुदी प्रतिपदासे सप्तमीतक सात दिन किया जाता है। प्रतिपदाके दिन अर्हन्त भगवान्का अभिषेक

तथा सप्तपरमस्थान पूजन करनेके उपरान्त 'ओं ह्रीं अर्हं सज्जातिपरम स्थानप्राप्तये श्रीअभयजिनेन्द्राय नमः' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। स्वाध्याय, सामायिक आदि धार्मिक क्रियाओंमें निरत होकर उपवास करना चाहिए। यदि उपवास करनेकी शक्ति न हो तो सिर्फ एक ही वस्तुका आहार ग्रहण किया जाता है। आहारमें दो अनाज या दो वस्तुएँ नहीं होना चाहिए। केवल एक अनाज होना आवश्यक है—

द्वितीयाके दिन सप्तपरमस्थान पूजन, अभिषेकके उपरान्त 'ओं ह्रीं अर्हं सद्गृहस्थपरमस्थानप्राप्तये श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप करना, तृतीयाको 'ओं ह्रीं अर्हं श्री पारिव्राज्यपरम स्थानप्राप्तये श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप चतुर्थी को 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीसुरेन्द्रपरमस्थानप्राप्तये श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप, पञ्चमीको 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीसाम्राज्यपरमस्थानप्राप्तये श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप, षष्ठीको 'ओं ह्रीं अर्हं श्री आर्हन्त्यपरमस्थानप्राप्तये श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप एवं सप्तमीको 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीनिर्वाणपरमस्थानप्राप्तये श्रीवीरजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप किया जाता है। सातदिन व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन करनेका विधान है। व्रतके दिनोंमें रात्रिजागरण करना चाहिए, यदि शक्ति न हो या और किसी प्रकारकी बाधा हो तो मध्यरात्रिमें एक प्रहर शयन करना चाहिए।

शीर्षमुकुट सप्तमी व्रत

अथ श्रावणमासे शुक्लपक्षे सप्तमीदिने आदिनाथस्य वा पार्श्वनाथस्य कण्ठे माला शीर्षे मुकुटं च निधाय उपवासं कुर्यात्। न तु एतावता वीतरागत्वहानिर्भवति। यत क्वापि कन्या नु स्वर्गेंधव्यनिवारणाय जिनशासनागमोद्दिष्टविधि युक्त। एतद्विधिनिन्दकस्तु जिनागमद्रोही जिनाज्ञालोपी भवतीति न

सन्देह कार्यं । सकलकीर्तिभि स्वीये कथाकोषे श्रुतसागरै स्तथा दामोदरैस्तथादेवनन्दिभिरभ्रदेवैश्च तथैव प्रतिपादितमत पूर्वक्रमो नाक्रमो ज्ञेय ।

अर्थ—श्रावण शुक्ला सप्तमीको आदिनाथ या पार्श्वनाथके कण्ठमें माला और शिरमें मुकुट बाँधकर उपवास करना, शीर्ष मुकुट सप्तमी व्रत है। वीतरागी प्रभुके गलेमें माला और शिरपर मुकुट बाँधनेसे वीतरागताकी हानि नहीं होती है, क्योंकि कोई भी कन्या अपने वैधव्यके निवारणके लिए जिनागममें बतायी हुई विधिका पालन करती है। जो कोई इस विधिकी निन्दा करता है, वह जिनागमद्रोही तथा जिनाज्ञा लोपी होता है, अत इस विधिमें सन्देह नहीं करना चाहिए। सकलकीर्ति आचार्यने अपने कथाकोषमें, तथा श्रुतसागर, दामोदर, देवनन्दी और अभ्रदेव आदिने भी इस विधिका कथन किया है। अत ऊपर जिस विधिका कथन किया है, वह समीचीन है, क्रमपूर्वक है, अक्रमिक नहीं है।

विवेचन—शीर्षमुकुट सप्तमी व्रत श्रावण सुदी सप्तमीको किया जाता है। इस दिन कन्याएँ या सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने सौभाग्यकी वृद्धिके लिए भगवान् आदिनाथका पूजन, अभिषेक करती हैं तथा प्रोषधोपवास करती हुई धर्मध्यानसे दिन व्यतीत करती हैं। इस व्रत में 'ओं ह्रीं श्रीवृषभतीर्थकराय नम ' इस मन्त्रका या 'ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथाय नम ' इस मन्त्रका जाप किया जाता है। रातको जागरण करना आवश्यक माना गया है। मुकुटसप्तमी व्रतमें भगवान् आदिनाथ और पार्श्वनाथके नामोंकी एक हजार आठ जाप करनी चाहिए। इस व्रतमें रातको वृहत्स्वयम्भूस्तोत्र, सङ्कटहरण विनती, दु खहरण विनती, कल्याणमन्दिर, भक्तामर आदि स्तोत्रका पाठ करना चाहिए। अष्टमीके दिन अभिषेक, पूजन और सामायिकके पश्चात् एकाशन करना चाहिए। षष्ठीसे लेकर अष्टमी तक तीन दिनोंका पूर्ण शीलव्रत पालन किया जाता है।

अक्षयनिधि व्रतकी विधि

अक्षयनिधिनियमस्तु श्रावणशुक्ला दशमी भाद्रपदशुक्ला तत्कृष्णा चेति दशमीत्रय पञ्चवर्षं यावत् व्रत कार्यम्। दशमी हानौ तु नवम्या वृद्धौ तु यस्मिन् दिने पूर्णा दशमी तस्मिन्नेव दिने व्रतं कार्यम्। वृद्धिगततिथौ सोदयप्रमाणेऽपि व्रतं न कार्यम्।

अर्थ—अक्षयनिधि व्रत श्रावणशुक्ला दशमी, भाद्रपदशुक्ला दशमी, भाद्रपद कृष्णा दशमी, इस प्रकार तीन दशमियोको किया जाता है। यह व्रत पाँच वर्ष तक करना होता है। दशमी तिथिकी हानि होनेपर नवमीको व्रत और दशमी तिथिकी वृद्धि होनेपर जिस दिन पूर्ण दशमी हो उस दिन व्रत किया जाता है। वृद्धिगत तिथि के उदयमे अधिक हो तो भी दूसरे दिन व्रत करनेका विधान नहीं है। यह व्रत वर्षमे तीन दिवस अधिक नहीं किया जाता है, तिथि वृद्धि होनेपर भी एक दिन अधिक करनेका नियम नहीं है।

विवेचन—अक्षयनिधि व्रत श्रावण सुदी दशमी, भादो बदी दशमी और भादों सुदी दशमी इन तीनों दशमी तिथियोंको वर्षमें एक बार किया जाता है। इस व्रतका दूसरा नाम अक्षयफल दशमी व्रत भी है। अक्षयनिधि व्रत करनेवालेको दशमीके दिन प्रोषध करना चाहिए। गृहारम्भ छोड़कर श्रीजिन मन्दिरमें जाकर भगवान् आदिनाथका अभिषेक और पूजन करना चाहिए। 'ॐ ह्रीं नमो वृषभाय' इस मन्त्रका जाप उपवासके दिन १००८ करना चाहिए। रात्रिमें जागरण, शक्ति न होनेपर अल्प निद्रा ली जाती है। धर्मध्यान व्रतके दिन विशेष रूपसे किया जाता है। शास्त्रत श्रावण सुदी नवमीसे लेकर भादो सुदी एकादशी तक इस व्रतके धारीको पालना चाहिए।

मासिक सुगन्ध दशमी व्रत

मासिकसुगन्धदशमीव्रत तु पौषशुक्लपञ्चमीमारभ्य दशमी

पर्यन्त भवति हानौ वृद्धौ च स एव मार्गो ज्ञेय, इत्यादीनि मासिकानि भवन्ति ॥

अर्थ—सुगन्धदशमी व्रत पौषशुक्ल पञ्चमीसे दशमी तक किया जाता है। तिथिकी हानि, वृद्धि होनेपर पूर्वोक्त क्रम समझना चाहिए। इस प्रकार मासिक व्रतोंका कथन समाप्त हुआ।

विवेचन—सुगन्ध दशमी व्रत भादो सुदी दशमीको किया जाता है। न मालूम आचार्यने यहाँ किस अभिप्रायसे पौष सुदी पञ्चमीसे पौष सुदी दशमी तक किये जानेवाले व्रतको सुगन्ध दशमी व्रत कहा है। इस व्रतकी प्रसिद्धि भादो सुदी दशमीकी है।

व्रतके दिन चारों प्रकारके आहारका त्याग कर श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा, अभिषेक आदि करे। दसवें तीर्थंकर श्रीशीतलनाथ भगवान्‌की पूजा विशेषत की जाती है। रात्रि जागरणपूर्वक बितायी जाती है। 'ॐ ह्रीं अर्हं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप किया जाता है। प्रोषधके दूसरे दिन चौबीसों भगवान्‌की पूजा तथा अतिथिको आहार दान देनेके उपरान्त पारणा की जाती है। इस व्रतको सौभाग्यवती आकांक्षाप्राप्त स्त्रियाँ करती हैं। व्रतके मध्याह्नमें पूर्वोक्त मन्त्रके प्रत्येक उच्चारणके साथ अग्निमें धूपका हवन किया जाता है।

सांवत्सरिक व्रत

सांवत्सरिकानि नन्दीश्वरपङ्क्तिचारित्र्यशुद्धिदुःखहरण सुखकरणलक्षणपङ्क्तिसिंहनिष्क्रीडितभद्रावसन्तत्रिलोकसारश्रुतस्कन्धविमानपङ्क्तिमुरजमध्यमृदङ्गमध्यशातकुम्भश्रुतज्ञानद्वादशव्रतत्रिपञ्चाशत्क्रियाचातिशयादीनि व्रतानि वात्सरिकानि भवन्ति।

अर्थ—नन्दीश्वरपंक्ति, चारित्र्यशुद्धि, दुःखहरण, सुखकरण, लक्षण पंक्ति, सिंहनिष्क्रीडित, भद्रावसन्त, त्रिलोकसार, श्रुतस्कन्ध, विमान पंक्ति, मुरजमध्यमृदंग, मध्यशातकुम्भ, श्रुतज्ञान, द्वादशव्रत, त्रिपञ्चाशत् क्रिया एवं चातिशय आदि व्रत सांवत्सरिक व्रत कहे जाते हैं।

नन्दीश्वरपक्तो षट्पञ्चाशदुपवासा द्विपञ्चाशत्पारणा भवन्ति। इदं व्रतं वत्सरमध्ये मासत्रयमष्टादशदिनपर्यन्तं स्वशक्त्या करणीयम्।

अर्थ—नन्दीश्वरपंक्ति व्रतमें ५६ उपवास और ५२ पारणाएँ होती हैं। यह व्रत एक वर्षमें तीन मास अठारह दिन तक अपनी शक्तिके अनुसार किया जाता है।

विवेचन—नन्दीश्वरपंक्ति व्रत १०८ दिनमें पूर्ण होता है। इसमें पहले चार उपवास और चार पारणाएँ की जाती हैं। पश्चात् एक वेला—दो दिनका उपवास करनेके अनन्तर पारणा करनेका नियम है। तदुपरान्त एक उपवास, पश्चात् पारणा इस प्रकार १२ उपवास और १२ पारणाएँ करनी पड़ती हैं। अनन्तर एक वेला करनेके उपरान्त पारणा की जाती है। इसके पश्चात् उपवास और पारणा इस क्रमसे करते हुए १२ उपवास और १२ पारणाएँ सम्पन्न की जाती हैं। पुनः एक वेला करनेके अनन्तर पारणा की जाती है। तत्पश्चात् उपवास और पारणाके क्रमसे १२ उपवास और पारणा करनेका विधान है। पुनः एक वेला और पारणा करनेके पश्चात् उपवास और पारणा क्रमसे आठ उपवास और आठ पारणाएँ करनी चाहिए। इस प्रकार इस व्रतमें कुल चार वेला, और अड़तालीस उपवास तथा बावन पारणाएँ होती हैं। कुल उपवास (४+१२+१२+१२+८+४ वेला=८)=५६ उपवास। पारणाएँ ४+१+१२+१+१२+१+१२+१+८=५२ होती हैं। इस व्रत में 'ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपस्थाष्टत्रिंशज्जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप किया जाता है। तीन महीना अठारह दिनतक शीलव्रतका पालन भी करना चाहिए।

चारित्र्यशुद्धि व्रतकी व्यवस्था

चारित्र्यशुद्धौ द्वादशशतचत्वारिंशदुपवासा सूनक्रमेण हिंसादिपापानां त्यागश्च कार्यः। इदं षड्वर्षकाले परिपूर्णं भवति।

निरान्न च क्रियते, तत्र भुक्तिरेकान्तरेण वा पञ्चादानि यावत्काय ततश्चोद्यापनम्, पूर्वतिथिक्षये पूर्वा तिथिरमावस्या कार्या एत द्व्रत पाक्षिक चार्ये प्रोक्त तेषामपेक्षया द्वितीया पूर्वा भवति, व्रत तु चतुर्थीपर्यन्त भवति। परन्तु नेतन्मत प्रमाण, कथ बला त्कारिणा मते चतुर्थी दशलाक्षणिकव्रतस्यादिधारणादिनत्वात् न ग्राह्या, अधिकतिथावधिकमार्गण व्रत कार्यम् दाने लाहे भोग उपभोगे वीरियेण सम्मतेण केवलल्द्धीउ दसणणाणे चरित्तेय इति फल ज्ञातव्यम्।

अर्थ—हे भगवन्! अपूर्व व्रतका क्या स्वरूप है, इस प्रकार प्रश्न करनेपर, गौतम गणधरने उत्तर दिया—हे श्रावकोत्तम! सुनिये—भाद्रपद मासमें शुक्ल पक्षम पूर्वादि तीन दिन और तीन रात्रियोंमें व्रत करते हैं। एक दिन व्रत, पश्चात् एकाशन पुन व्रत इस प्रकार तीन दिन व्रत किया जाता है। पाँच वर्ष तक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन किया जाता है। पूर्व तिथिके क्षय होनेपर पूर्वा तिथि अमावस्या मानी जाती है। कुछ आचाय इस व्रतको पाक्षिक मानते हैं। उनके मतसे तिथिक्षय होनेपर पूर्वा द्वितीया तिथि ली गयी है, अत द्वितीयासे चतुर्थी पयन्त व्रत करना चाहिए। परन्तु यह मत प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि बलात्कार गणके आचाय चतुर्थी तिथिको दशलक्षण व्रतकी धारणा तिथि मानते हैं, अत चतुर्थीका ग्रहण नहीं होना चाहिए।

तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए। इस व्रतका फल अपूर्व ही होता है। दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीय, सम्यक्त्व, क्षायिक लब्धि, क्षायिक ज्ञान और क्षायिक दशन और क्षायिक चारित्र आदिकी प्राप्ति इस व्रतके करनेसे होती है।

विवेचन—अपूव व्रत भादों सुदी प्रतिपदासे लेकर तृतीया तक किया जाता है। इसका दूसरा नाम त्रैलोक्य तिलक व्रत भी है। इस व्रतमें प्रतिपदाको उपवास कर गृहारम्भका त्यागकर तीनों कालकी चौबीसीकी पूजा करनी चाहिए अथवा तीन लोककी रचनाकर अकृत्रिम

चैत्यालयोंकी स्थापना कर विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। तीनों काल 'ॐ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धयकृत्रिमजिनालयेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए। द्वितीयाके दिन उपवास करना और शेष धार्मिक विधि पूर्ववत् ही सम्पन्न की जाती है। तृतीयाके दिन उपवास करना, घरका आरम्भ त्याग कर जिनालयमें जाकर उत्साह पूर्वक धार्मिक अनुष्ठानोंको पूर्ण करना। अकृत्रिम जिनालयोंका पूजन, त्रिकाल सम्बन्धी चतुर्विंशति जिनपूजन आदि पूजन विधानोंको विधिपूर्वक करना चाहिए। इस दिन तीनों काल 'ॐ ह्रीं त्रिकालसम्बन्धित्रिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप किया जाता है। रात जागरण कर धर्मध्यान पूर्वक वितायी जाती है तथा चौबीसों भगवानकी स्तुतियाँको रातमें पढ़ कर भावनाओंको पवित्र किया जाता है। तिथि क्षय होनेपर इस व्रतको अमावस्यासे आरम्भ करना चाहिए, समाप्ति सर्वदा ही तृतीयाको की जाती है। लोकमें त्रिलोक व्रतका विधान अन्यत्र केवल तृतीयाका ही मिलता है, परन्तु पूरा विधि तीन दिनोंमें सम्पन्न की जाती है। तीन वर्ष या पाँच वर्ष व्रत करनेके पश्चात् उद्यापन किया जाता है।

पुरन्दर-व्रत-विधि

अथ पुरन्दरव्रतमाह—यत्र तत्र कस्मिंश्चिन्मासे समारभ्य शुक्लपक्षे प्रतिपदमारभ्याष्टमीपर्यन्तं कार्यम्। अत्र प्रतिपदष्टम्यो प्रोषधं शेषमेकभुक्तञ्च वा एकान्तरेण व्रतं कार्यम्। एतद्व्रतमनियतमासिकं नियतपाक्षिकं द्वादशमासिकं ज्ञेयम्। फलञ्चैतत्—

दारिद्र्यमृगशार्दूलं मूलं मोक्षस्य निश्चलम्।
पुरन्दरविधिं विद्धि सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥१॥

अर्थ—पुरन्दर व्रतका स्वरूप कहते हैं—किसी भी महीनेमें शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे अष्टमी तक पुरन्दर व्रतका पालन किया जाता है। प्रतिपदा और अष्टमीको प्रोषध तथा शेष दिनोंमें एकाशन अथवा एकान्तरसे उपवास और एकाशन करने चाहिए अर्थात् प्रतिपदाको उपवास द्वितीयाको एकाशन, तृतीयाको उपवास चतुर्थीको एकाशन, पञ्चमीको उपवास

पहीरा एकाशन, सप्तमीरा उपवास और अष्टमीरा एकाशन, किये जाते हैं। यह व्रत अनियत मासिक और नियत पाक्षिक है, क्योंकि इसके लिए कोई भी महीना निश्चित नहीं है पर शुक्ल पक्ष निश्चित है। इसका फल निम्न है—

पुरन्दर व्रत दरिद्रतारूपी मृगको नष्ट करनके लिए सिंहके समान है और मोक्षरूपी लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिए मूल कारण है अर्थात् इस व्रतके पालन करनेसे निश्चय ही मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। तथा यह व्रत मनुष्योंको सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करता है। अभिप्राय यह है कि पुरन्दर व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे रोग, शोक, व्याधि, व्यसन सभी दूर हो जाते हैं तथा कालान्तरमें परम्परासे निर्वाणकी प्राप्ति होती है।

विवेचन—क्रियाकोषमें बताया गया है कि पुरन्दर व्रतमें किसी भी महीनेकी शुक्ला प्रतिपदासे लेकर अष्टमी तक लगातार आठ दिनका प्रोषध करना चाहिए। आठों दिन घरका समस्त आरम्भ त्यागकर जिनालयमें भगवान् जिनेन्द्रका अभिषेक, पूजा, आरती एवं स्तवन आदि करने चाहिए। आठ दिनके उपवासके पश्चात् नवमी तिथिको पारणा करनेका विधान है। यह काम्य व्रत है, दरिद्रता एवं रोग शोकका दूर करनेके लिए किया जाता है। व्रतके दिनोंमें रात्रिको धर्मध्यान करना, रात्रि जागरण करना, जिनेन्द्र प्रभुकी आरती उतारना एवं भजन पढ़ना आदि क्रियाएँ भी करना आवश्यक है। रातके मध्यभागमें अल्प निद्रा लेना तथा जिनेन्द्र प्रभुके गुणोंका चिन्तन करना और सामायिक स्वाध्याय करना भी इस व्रतकी विधिके भीतर परिगणित है। प्रोषधके दिनोंमें स्नान, तैलमर्दन, दन्तधावन आदि क्रियाओंका त्याग करना चाहिए। यदि आठ दिनतक लगातार उपवास करनेकी शक्ति न हो तो चार दिनके पश्चात् पारणा कर लेनी चाहिए, पारणामें एक ही अन्न तथा एक ही प्रकारकी वस्तु लेनी चाहिए। जिनमें उपयुक्त प्रकारसे व्रत करनेकी शक्ति न हो, वे अष्टमी और प्रतिपदाका उपवास करें तथा शेष दिन एकाशन

करें। अन्य धार्मिक क्रियाएँ समान हैं, स्नान करनेवालेको द्रव्यपूजा और स्नान न करनेवाले श्रावकको भावपूजा करनी चाहिए। व्रतके दिनोंमें प्रतिदिन णमोकार मन्त्रका एक हज़ार आठ बार जाप करना चाहिए। एकाशनके दिन तीन बार प्रातः, दोपहर और सन्ध्याको एक हज़ार आठ बार णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए।

दशलक्षण व्रतकी विधि

दशलाक्षणिकव्रते भाद्रपदमासे शुक्ले श्रीपञ्चमीदिने प्रोषध कार्य, सर्वगृहारम्भं परित्यज्य जिनालये गत्वा पूजार्चनादिकञ्च कार्यम्। चतुर्विंशतिका प्रतिमा समारोप्य जिनास्पदे दशलाक्षणिकं यन्त्र तदग्रे ध्रियते, ततश्च स्नपनं कुर्यात्, भव्य मोक्षाभिलाषी अष्टधापूजनद्रव्यैः जिनं पूजयेत्। पञ्चमीदिनमारभ्य चतुर्दशीपर्यन्तं व्रत कार्यम्, ब्रह्मचर्यविधिना स्थातव्यम्। इद व्रत दशवर्षपर्यन्तं करणीयम्, ततश्चोद्यापन कुर्यात्। अथवा दशोपवासा कार्या। अथवा पञ्चमीचतुर्दश्योरुपवासद्वय शेषमेकाशन मिति केषाञ्चिन्मतम्, तत्तु शक्तिहीनतयाङ्गीकृत न तु परमो मार्ग।

अर्थ—दशलक्षण व्रत भाद्रपद मासमें शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे आरम्भ किया जाता है। पञ्चमी तिथिको प्रोषध करना चाहिए तथा समस्त गृहारम्भका त्यागकर जिन-मन्दिरमें जाकर पूजन, अर्चन, अभिषेक आदि धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करनी चाहिए। अभिषेकके लिए चौबीस भगवान्‌की प्रतिमाओंको स्थापन कर उनके आगे दशलक्षण यन्त्र स्थापित करना चाहिए। पश्चात् अभिषेक क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए। मोक्षाभिलाषी भव्य अष्ट द्रव्योंसे भगवान् जिनेन्द्रका पूजन करता है। यह व्रत भादों सुदी पञ्चमीसे भादो सुदी दशमीतक किया जाता है। दसों दिन ब्रह्मचर्यका पालन किया जाता है।

इस व्रतको दस वर्षतक पालन किया जाता है, पश्चात् उद्यापन कर

दिया जाता है। इस व्रतकी उत्कृष्ट विधि तो यही है कि दस उपवास लगातार अर्थात् पञ्चमीसे लेकर चतुर्दशी तक दस उपवास करने चाहिए। अथवा पञ्चमी और चतुर्दशीका उपवास तथा शेष दिनोंमें एकाशन करना चाहिए, परन्तु यह व्रत विधि शक्तिहीनोंके लिए बतायी गयी है, यह परममार्ग नहीं है।

विवेचन—दशलक्षण व्रत भाद्र, माघ और चैत्र मासके शुक्लपक्षमें पञ्चमीसे चतुर्दशीतक किया जाता है। परन्तु प्रचलित रूपमें केवल भाद्रपदमास ही ग्रहण किया गया है। दशलक्षण व्रतके दस दिनोंमें त्रिकाल सामायिक, वन्दना और प्रतिक्रमण आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए। व्रतारम्भके दिनसे लेकर व्रत समाप्तितक जिनेन्द्र भगवान्‌के अभिषेकके साथ दशलक्षण यन्त्रका भी अभिषेक किया जाता है। नित्य नैमित्तिक पूजाओंके अनन्तर दशलक्षणपूजा की जाती है। पञ्चमी षष्ठी, सप्तमी आदि दश तिथियोंमें क्रमशः प्रत्येक तिथिको

'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तममार्दवधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमार्जवधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमसत्यधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमशौचधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमसंयमधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमतपधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमत्यागधर्माङ्गाय नमः'
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमाकिञ्चनधर्माङ्गाय नमः' एवं
'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय नमः'

मन्त्रका जाप करना चाहिए। समस्त दिन स्वाध्याय, पूजन, सामायिक आदि कार्योंमें व्यतीत करे, रात्रि जागरण करे और समस्त विकथाओंका त्याग कर आत्मचिन्तनमें लीन रहे। दसों दिन यथाशक्ति प्रोषध, वेला, तेला, एकाशन, ऊनोदर एवं रसपरित्याग करने चाहिए। स्वादिष्ट

भोजनका त्याग करे तथा स्वच्छ और सादे वस्त्र धारण करने चाहिए। इस व्रतका पालन दस वर्षतक किया जाता है।

तिथिक्षय होनेपर दशलक्षण व्रतकी व्यवस्था और व्रतका फल

आदितिथिक्षये चतुर्थीतः, मध्यतिथिक्षये चतुर्थीतः अष्टम्यादितिथिह्रासेऽपि चतुर्थीतः व्रतं कार्यम्। नन्वेकान्तरेण व्रते कृते सति अष्टम्यामपि पारणा भवतीति दूषणम्, नैव वाच्यम्, एकान्तरस्यागमोक्तत्वात्। तिथिक्षयेऽपि पञ्चम्या पारणादोष आगच्छति, इति न वाच्यं प्रोषधोपवासकथितपञ्चम्या चतुर्थ्यामेवाध्यारोपात्। एवं दशवर्षपर्यन्तं व्रतं पालनीयम्, ततश्चोद्यापनं भवेत्। एतस्य फलं तु मुक्तिरिति निर्णयः।

अर्थ—दशलक्षण व्रतमें आदितिथि पञ्चमीका अभाव होनेपर चतुर्थी तिथिसे व्रतारम्भ, मध्यतिथिका अभाव होनेपर चतुर्थीसे व्रतारम्भ और अष्टमी तिथिके अनन्तर चतुर्दशी तक किसी भी तिथिका ह्रास होनेपर चतुर्थीसे ही व्रतका आरम्भ किया जाता है।

यहाँ शंका की गयी है कि जो एकान्तर उपवास और पारणा करेगा, उसे अष्टमीकी पारणा करनी होगी अर्थात् पञ्चमीका उपवास षष्ठीकी पारणा, सप्तमीका उपवास अष्टमीकी पारणा, नवमीका उपवास दशमीकी पारणा इत्यादि एकान्तर उपवासके क्रमसे अष्टमीकी पारणा आती है, यह दोष है। क्योंकि अष्टमी पर्वतिथि है, इसका उपवास अवश्य करना चाहिए। आचार्य उत्तर देते हैं कि यहाँ पर्वतिथिका विचार नहीं किया जाता है, आगममें एकान्तर उपवास करनेका क्रम बताया गया है, अतः यहाँपर एकान्तर उपवास क्रम ही ग्राह्य है। इसलिए अष्टमीको पारणा करनेमें दोष नहीं है।

मध्यमें तिथिक्षय होनेपर चतुर्थीको उपवास किया जायगा, जिससे एकान्तर उपवास करनेवाला पञ्चमीको पारणा करेगा, यह भी दोष है।

क्योंकि दशलक्षण व्रतका प्रारम्भ पञ्चमीको होना चाहिए, किन्तु पञ्चमीको पारणा आती है। आचार्य इस शंकाका समाधान करते हुए कहते हैं कि मध्यमें तिथिक्षय होनेपर चतुर्थीको उपवास किया जाता है, किन्तु इस चतुर्थीमें ही पञ्चमीका अध्यारोप कर लिया जाता है। उत्तम क्षमाधर्मकी भावना तथा जाप, जो कि पञ्चमीको किया जाता है इसी चतुर्थीको कर लिये जाते हैं, अतः चतुर्थीको ही पञ्चमी मान लिया जाता है। अतएव पञ्चमीकी पारणामें कोई दोष नहीं है। इस प्रकार इस दशलक्षण व्रतका पालन दस वर्ष तक करना चाहिए।

इस व्रतका फल मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति है; यों तो इस व्रतमें लौकिक ऐश्वर्य और अभ्युदयकी प्राप्ति होती है, पर वास्तवमें यह व्रत मोक्ष लक्ष्मीको कालान्तरमें देता है।

विवेचन—तिथिक्षय होनेपर दशलक्षण व्रतको चतुर्थीसे प्रारम्भ किया जाता है और तिथिवृद्धि होनेपर व्रत एक दिन अधिक किया जाता है। अन्तिम तिथिकी वृद्धि होनेपर अर्थात् दो दिन चतुर्दशी होनेपर प्रथम दिन व्रत किया जाता है। यदि दूसरी चतुर्दशी भी छः घटीसे अधिक हो तो उस दिन भी व्रत करना होता है तथा छः घटी प्रमाणसे अल्प होने पर पारणा की जाती है। इस व्रतका फल अनुपम होता है। दस धर्म आत्माके वास्तविक स्वरूप हैं, इनके चिन्तन, मनन और जीवनमें उतारनेसे जीव शीघ्र ही अपने कर्मोंको तोड़कर निर्वाण प्राप्त करता है। उत्तम क्षमादि धर्म आत्माकी कर्मकालिमाको नष्ट करनेमें समर्थ हैं। व्रतोपवाससे विषयोंकी ओर ले जानेवाली इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है तथा जीव अपने उत्थानका मार्ग प्राप्त कर लेता है।

पुष्पाञ्जलि व्रतकी विशेष विधि और व्रतका फल

पूर्वकथितपुष्पाञ्जलिव्रतं पञ्चदिनपर्यन्तं करणीयम्। तत्र श्वेतपीतकुसुमादिभिः चतुर्विंशतिविकसितसुगन्धितसुमनोभिश्चतुर्विंशतिजिनान् पूजयेत्। यथोक्तकुसुमाभावे पूजयेत्

पीततन्दुलैः । पञ्चवर्षानन्तरं उद्यापनं कार्यम् । येन केवलज्ञानसम्प्राप्तिरेतस्य परमं फलम् । तिथिक्षये वा तिथिवृद्धौ पूर्वोक्त एव क्रमः स्मर्तव्यः । पुष्पाञ्जलिव्रते पञ्चमीषष्ठ्योरुपवासः सप्तम्यां पारणा अष्टमीनवम्योरुपवासः दशम्यां पारणा, एकान्तरेण तु तिथिक्षये चादिदिने गृहीते पारणाद्वयं मध्ये कार्यम्; पञ्चम्यामष्टम्यां च षष्ठ्यामष्टम्यां वा यथैकान्तरं स्यात्तथा कार्यम् । एतत् पुष्पाञ्जलिव्रतं कर्मरोगहरं मुक्तिप्रदं च पारम्पर्येण भवति ।

अर्थ—पहले बतलाये हुए पुष्पाञ्जलि व्रतको पाँच दिन तक करना चाहिए । इस व्रतमें केतकी, बेला, चम्पा आदि विकसित और सुगन्धित पुष्पोंसे चौबीस भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए । यदि वास्तविक पुष्प न हों या वास्तविक पुष्पोंसे पूजन करनेमें उपयुक्त न समझें तो पीले चावलों से भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए । पाँच वर्षके पश्चात् व्रतका उद्यापन कर देना होता है । इस व्रतका परम केवलज्ञानकी प्राप्ति होना बताया गया है अर्थात् विधिपूर्वक पुष्पाञ्जलि व्रतके पालनसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है । तिथिक्षय या तिथिवृद्धि होनेपर पूर्वोक्त क्रम ही अवगत करना चाहिए । तिथिक्षयमें एक दिन पहलेसे और तिथिवृद्धिमें एक दिन अधिक व्रत किया जाता है । पुष्पाञ्जलि व्रतमें पञ्चमी और षष्ठी इन दोनों दिनोंका उपवास, सप्तमीको पारणा, अष्टमी और नवमीका उपवास तथा दशमीको पारणा की जाती है । एकान्तर उपवास करनेवालेको अर्थात् एक दिन उपवास दूसरे दिन पारणा, पुनः उपवास तत्पश्चात् पारणा इस क्रमसे उपवास करनेवालेको तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहले से व्रत करनेके कारण मध्यमें दो पारणाएँ करनी चाहिए । पञ्चमी और अष्टमीकी पारणा अथवा षष्ठी और अष्टमीकी पारणा की जाती है । एकान्तर उपवास और पारणाका क्रम बन सके ऐसा करना चाहिए । यह पुष्पाञ्जलि व्रत कर्मरूपी रोगको दूर करनेवाला, लौकिक अभ्युदयका प्रदाता एवं परम्परासे मोक्षलक्ष्मीको प्रदान करनेवाला है ।

विवेचन—पुष्पाञ्जलि व्रतकी विधि पहले लिखी जा चुकी है। आचार्यने यहाँपर कुछ विशेष बातें इस व्रतके सम्बन्धमें बतलायी हैं। पुष्पाञ्जलि शब्दका अर्थ है कि पुष्पोंका समुदाय अर्थात् सुगन्धित, विकसित और कीटाणु रहित पुष्पोंसे जिनेन्द्र भगवान्की पूजा इस व्रतवालेको करनी चाहिए। पहले व्रत विधिमें लिखे गये जापको भी पुष्पोंसे ही करना चाहिए। यदि पुष्प चढ़ानेमें एतराज हो तो पीले चावलोंसे पूजन तथा लवंगोंसे जाप करना चाहिए। पाँचों दिन पूजन और जाप करना आवश्यक है। इस व्रतका बड़ा भारी माहात्म्य बताया गया है, विधिपूर्वक इसके पालनेसे केवलज्ञानकी प्राप्ति परम्परासे होती है, कर्मरोग दूर होता है तथा नाना प्रकारके लौकिक ऐश्वर्य, धन धान्यादि विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। इसकी गणना काम्य व्रतोंमें इसीलिए की गयी है, कि इस व्रतको विधिपूर्वक पालकर कोई भी व्यक्ति अपनी लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण कर सकता है।

उत्तममुक्तावली व्रतकी विधि

उत्तममुक्तावलीव्रत वच्मि, तृतीयभवमोक्षदम्। भाद्रपदशुक्लसप्तम्यां प्रोषधं कृत्वा अष्टम्यामुपवासं कुर्यात्। पश्चात्—

आश्विने मेचके पक्षे षष्ठ्यां सूर्यप्रभो भवेत्।
चन्द्रप्रभस्त्रयोदश्यामेव चन्द्रप्रभस्तथा ॥१॥
आश्विनशुक्लैकादश्यां कुर्याद् दुष्कर्मशान्तये।
कुमारसम्भवो नामोपवासः शुभदो भवेत् ॥२॥
कार्तिके श्यामले पक्षे द्वादश्यां प्रोषधो भवेत्।
नाम्ना नन्दीश्वरस्तस्य माहात्म्यं येन वर्णितम् ॥
कार्तिके धवले पक्षे तृतीयादिवसे मत।
सर्वार्थसिद्धिकं नाम चतुर्वर्गप्रसाधनम् ॥
कार्तिके धवले पक्षे लब्ध्वश्चैकादशीदिने।
प्रातिहार्यविधिर्नाम कथितं धर्मवृद्धये ॥

एकादश्यां तु मार्गस्य मेरुके प्रतिशुभप्रदे ।
सर्वसुखप्रदं नाम प्रभावं केन वर्ण्यते ॥
आग्रहायणके शुक्ले तृतीये प्रोषधं शुभं ।
अनन्तविधिरित्युक्तमनन्तसुखसाधनम् ॥
एवं चतुर्षु मासेषु, उपवासाः प्रकीर्तिताः ।
प्रत्यब्दं ते विधातव्या मनोऽभीष्टमिति साधुभिः ॥

उपवासदिने जिनेन्द्रस्नपनं पूजनं कार्यम्, नवमदर्शे व्रतोद्यापनं करणीयम्। इति उत्तममुक्तावलीव्रतं भूरिसाधुभिः निगदितम्।

अर्थ—उत्तम मुक्तावली व्रतकी विधिको कहते हैं, यह व्रत तृतीय भवमें मोक्ष देनेवाला है। इस व्रतका प्रारम्भ भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को होता है। सप्तमीको एकाशन कर भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको उपवास करना चाहिए पश्चात् आश्विन वदी षष्ठीको सूर्यप्रभ नामका उपवास तथा आश्विनवदी त्रयोदशीको चन्द्रप्रभ नामका उपवास करना चाहिए। आश्विन शुक्लपक्षमें दुष्कर्मोंके क्षय करनेके लिए एकादशी तिथिको कुमार संभव नामका उपवास करना चाहिए। यह उपवास सब प्रकारसे शुभ करनेवाला होता है।

कार्तिक कृष्णपक्षमें द्वादशी तिथिको प्रोषधोपवास करना चाहिए। इस उपवासकी नन्दीश्वर संज्ञा है। इसकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर सकता है। कार्तिक शुक्लपक्षमें तृतीयाको चतुर्गतिको देनेवाला यथार्थ सिद्धि नामक उपवास किया जाता है। इस उपवासके करनेसे सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। कार्तिक शुक्लमें एकादशी तिथिको प्रातिहार्य नामक उपवास किया जाता है, यह धर्मवृद्धिको करनेवाला होता है। मार्गशीर्ष कृष्णपक्षमें एकादशी तिथिको सर्वसुखप्रद नामक उपवास किया जाता है। इसके प्रभावका वर्णन कौन कर सकता है। अगहन सुदी तृतीयाको अनन्तविधि नामका प्रोषधोपवास किया जाता है, यह अनन्तसुखका देने वाला होता है। इस प्रकार प्रत्येक वर्षमें भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक और मार्गशीर्ष इन चार महीनोंमें उपवास करने

चाहिए। इस विधिसे नौ वर्षतक व्रत पालनकर उद्यापन करना चाहिए।

उपवासके दिन भगवान् जिनेन्द्रका अभिषेक, पूजन करने चाहिए। इस प्रकार नौ वर्षतक व्रतका पालन कर नौवें वर्ष उद्यापन कर देना चाहिए, ऐसा अनेक श्रेष्ठ आचार्योंने उत्तम मुक्तावली व्रतके सम्बन्धमें कहा है।

विवेचन—मुक्तावली व्रतकी विधि पहले बतायी जा चुकी है। आचार्यने यहाँपर उत्तममुक्तावली व्रतकी विधि बतलायी है। उत्तम मुक्तावली व्रत भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक और अगहन इन चार महीनों-में पूरा किया जाता है। भाद्रपद शुक्लपक्षमें सप्तमीका एकाशन और अष्टमीका उपवास, क्वारमें कृष्णपक्षमें षष्ठी और त्रयोदशीको और शुक्लपक्षमें एकादशीको उपवास, कार्तिकमें कृष्णपक्षमें द्वादशीको, और शुक्लपक्षमें तृतीया और एकादशीको उपवास एवं अगहनमें कृष्णपक्षमें एकादशीको और शुक्लपक्षमें तृतीयाको उपवास किया जाता है। इस व्रतमें उपवास-के दिनोंमें पञ्चामृत अभिषेक करनेका विधान है। व्रतके दिनोंमें चतु-र्विंशति जिनपूजा की जाती है। रात जागरण पूर्वक बितायी जाती है। शील व्रत भाद्रपदसे आरम्भ कर अगहनतक पाला जाता है।

इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः' मन्त्रका जाप प्रतिदिन उपवासके दिन तीन बार, शेष दिन एक बार एक-एक माला अर्थात् १०८ बार जाप करना चाहिए। चारों महीनोंमें इसीका पालन किया जाता है तथा भोजन हरी, नमक या कोई रस छोड़कर किया जाता है। उपवासके दिन गृहारम्भका बिल्कुल त्याग करना आवश्यक होता है। पारणाके दिन भगवान्‌के अभिषेकके अनन्तर दीन-दुःखी व्यक्तियोंको आहार करानेके उपरान्त भोजन करना होता है। भोजनमें प्रायः माड़ भात लेनेका विधान है।

प्रकारान्तरसे सुगन्धदशमी व्रतकी विधि

सुगन्धदशमीमाह—

भद्रे भाद्रपदे मासे शुक्लेऽस्मिन्पञ्चमीदिने।
उपोष्यते यथाशक्ति क्रियते कुसुमाञ्जलिः ॥

तथा षष्ठ्या च सप्तम्या चाष्टम्या नवमीदिने ।
जिनानामग्रतो भूयो दशम्या जिनवेश्मनि ॥
उपवास समादाय विधिरेष विधीयते ।
चतुर्विंशतितीर्थानां स्नपनं पूजनं ततः ॥
सुमधुररसैः पूजा धूपं दशविधं तथा ।
पूर्णन्दुदशमे वर्षे तदुद्यापनमाचरेत् ॥

अर्थ—सुगन्धदशमी व्रतकी विधि कहते हैं—श्रेष्ठ भाद्रपद महीनेके शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे यथाशक्ति पुष्पाञ्जलिव्रत करते हुए षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी और नवमीका उपवास या एकान्तर उपवास करने चाहिए। दशमीको जिन मन्दिरमें जाकर उपवास ग्रहण किया जाता है तथा चौबीस तीर्थंकरोंकी पूजा, अभिषेक क्रिया की जाती है। दशाङ्गी धूप भगवान्‌के सामने खेयी जाती है। दस वर्ष तक इस व्रतका पालन किया जाता है, इसके पश्चात् उद्यापन क्रिया सम्पन्न की जाता है।

अक्षयनिधि व्रतकी विधिके सम्बन्धमें विशेष

अक्षयनिध्याख्य व्रत श्रावणशुक्लपक्षे दशमीदिने दशाब्द-मध्यघटोपरिस्थितचतुर्विंशतिकायाः स्नपनं पूजनं च कार्यम्, दशवर्षपर्यन्तं व्रतं भवतीति। पुत्रपौत्रादिवृद्धिश्च भवेति।

अर्थ—अक्षयनिधि व्रतमें विशेष विधि यह है कि श्रावणशुक्ला दशमीके दिन दस कमलोंके ऊपर घड़ेको स्थापितकर उसके ऊपर चौबीस भगवान्‌की प्रतिमाओंको या किसी भी भगवान्‌की प्रतिमाको स्थापित कर अभिषेक और पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार भादों वदी दशमी और भादों सुदी दशमीको भी व्रत करना चाहिए। अक्षयनिधि व्रतके दश वर्ष तक करनेसे पुत्र, पौत्र, धन, धान्यकी वृद्धि होती है।

विवेचन—अक्षयनिधि व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ हैं—प्रथम मान्यता श्रावणवदी दशमी, भादोंवदी दशमी और भादों सुदी दशमी इन तीन तिथियोंमें व्रत करनेकी है। इस मान्यताका आचार्यने पहले

वर्णन किया है। द्वितीय मान्यताके अनुसार यह व्रत श्रावणवदी दशमी से आरम्भ किया जाता है तथा भादा वदी दशमीको समाप्त होता है। इसमें दोनों दशमी तिथियोंमें उपवास तथा शेष तिथियोंमें एकाशन किये जाते हैं। व्रतारम्भके दिन दस कमलोंके ऊपर केशर, चन्दन आदिसे सस्कृत मिट्टीके घड़ेको स्थापित कर, घड़ेके ऊपर थाल रखा जाता है। थालमें अष्टकमलदल बनाकर भगवानकी प्रतिमा सिंहासन पर स्थापित की जाती है। इस विधिसे प्रतिदिन भगवानका अभिषेक और पूजन किये जाते हैं। अर्थात् श्रावण सुदी दशमीके दिन प्रतिमा घटके ऊपर स्थापित की जाती है, यह भादा वदी दशमी तक स्थापित रहती है। प्रतिदिन अभिषेक और पूजन होते रहते हैं। इस व्रतमें प्रतिदिन दस अष्टक, दस अर्घ और दस फल चढ़ाये जाते हैं। प्रतिदिन तीनों समय सामायिक किया जाता है तथा त्रेसठ शलाकापुरुषोंके पुण्य चरित्रोंका अध्ययन, मनन और चिन्तन आदि कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

एकाशनके दिनोंमें भी प्रथम दिन माड़भात, द्वितीय दिन रसत्याग पूर्वक आहार, तृतीय दिन दूध त्याग सहित आहार, चतुर्थ दिन दही त्याग सहित आहार, पञ्चम दिन नमक त्यागसहित आहार, षष्ठ दिन नियमित रूपसे एक ही अन्नका आहार, सप्तम दिन पुनः माड़भात, अष्टम दिन अलौना—बिना नमक और मीठेका भोजन, नवम दिन ऊनोदर, दशम दिन दही त्याग पूर्वक आहार, एकादशवें दिन माड़भात, द्वादशवें दिन एक अन्न आहार, त्रयोदशवें दिन परिगणित वस्तुओंका आहार, चौदहवें दिन ऊनोदर या माड़भात और पन्द्रहवें दिन उपवास किया जाता है। ये सभी दिन संयमके दिन कहलाते हैं। इनमें वाणीसंयम और इन्द्रिय

---

१ व्रत अवैनिधिको उपवास। श्रावणसुदि दशमी करितास॥
भादोंवद जब दशमी होय। तिहूँके प्रोषध अवलोय॥
अवर सकल एकन्त जु करै। सो दस वरषहि पूरो करै॥
उद्यापन करि छाँडै ताहि। तातरिपुगणी करिहै जाहि॥
—क्रियाकोश किसनसिंह।

संयमका पालन करना चाहिए। भाद्रवदी एकादशीको व्रत समाप्त होनेके पश्चात् एकाशन किया जाता है। पश्चात् पूर्ववत् सारी क्रियाएँ सम्पन्न होने लगती हैं। इस व्रतको विधिपूर्वक सम्पन्न करनेसे सभी लौकिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

मेघमाला व्रतकी विशेष विधि

मेघमाला कथयाम्यहम्—
भद्रे भाद्रपदे मासे मेचके प्रतिपद्दिने।
आरम्भेत व्रत मास प्रोषधेनान्तरेण च॥
स्नात्य च सुनीरस्य धाराभि ब्रह्मचारिभि।
आसन परिधात्य शुक्लमेवांशुकद्वयम्॥ १॥
जिनालये पुर प्रस्थायाकाशे विष्टर शुभम्?
संस्थाप्य मेघ मालेय शुक्ल धार्य वितानकम्॥
विष्टरे श्रीजिनाधीश यथाशक्ति महोत्सवम्।
स्नापयेदमृतेनापि पञ्च या परमेश्वरम्॥
संस्थाप्य कलशैदचैव वितानोपरि शान्तये।
गन्धाम्बुचिन्तयेदेव वारिमेघाद्धृत यथा॥ १॥

पूर्वं संस्नाप्य पूजयेत्, तिथिहानिवृद्धौ षोडशकारणवत्मेघमाला ज्ञेया। मासिकव्रतत्वात्तत्पारणा पात्रदानादनन्तरं पञ्चवर्ष यावत्करणीयम्। तत उद्यापनं कुर्यात्।

अर्थ—मेघमाला व्रतकी विधिका वर्णन किया जाता है। कल्याणकारी भाद्रपद मासमें कृष्ण पक्षकी प्रतिपदासे एक महीने तक व्रत करना चाहिए। एकान्तर उपवास व्रतके दिनोंमें करना चाहिए। व्रत धारण करनेवाले ब्रह्मचारीको स्वच्छ प्रासुक जलसे स्नान करके व्रत विधिको सम्पन्न करना चाहिए। व्रत समाप्त होनेतक दो शुक्ल वस्त्र धारण करने चाहिए। अर्थात् एक स्वच्छ धोती तथा दूसरा दुपट्टा धारण कर व्रत सम्पन्न करना चाहिए। यदि कोई नारी इस व्रतको सम्पन्न करे तो उसे एक साड़ी तथा एक अन्य वस्त्र धारण कर व्रत सम्पन्न करना चाहिए।

जिनालयके प्रांगणमें एक स्वच्छ दूधके समान सफेद चँदोवा लगा कर उसके नीचे सिंहासन बिठाकर भगवान्‌को स्थापित करना चाहिए। भगवान्‌को स्थापित करनेकी विधि यह है कि एक घड़ेको चन्दन, कपूर, केशर आदिसे मरकृत कर उसके ऊपर थाल रखकर भगवान्‌को विराजमान करना चाहिए। प्रतिदिन अभिषेक, पूजन आदि कार्योंको उत्साह और उत्सव सहित करना चाहिए। पञ्चामृतसे प्रतिदिन भगवान्‌का अभिषेक होना चाहिए। शांति प्राप्त करनेके लिए अभिषेक के कलशोंको स्वच्छ चँदोवेके ऊपर स्थापित कर मेघोंके वर्षणके समान अभिषेक किया जाता है। जल, चन्दन आदि पदार्थोंसे भगवान्‌का अभिषेक होना चाहिए। गन्धोदककी चिन्ता इस प्रकार करनी चाहिए, मानो मेघकी जलधारा ही गिर रही हो। इस प्रकार अभिषेकके अनन्तर भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए।

यदि तिथि वृद्धि या तिथि-हानि हो तो सोलहकारण व्रतके समान एक दिन पहलेसे तथा एक दिन अधिक मेघमाला व्रत नहीं किया जाता है। मासिक व्रत होनेके कारण इस व्रतकी पारणा पात्रदानके अनन्तर की जाती है। आश्विन वदी प्रतिपदाको व्रत करनेके अनन्तर इस व्रतकी समाप्ति होती है। पाँच वर्षतक व्रत किया जाता है, पश्चात् उद्यापन करनेका विधान है। मेघमाला व्रतमें तिथिवृद्धि और तिथि हानिमें सोलहकारण व्रतके समान व्यवस्था है।

रत्नत्रय व्रतकी विधि

अथ रत्नत्रयव्रतमुच्यते—भाद्रपदमासे सिते पक्षे द्वादशीदिने स्नात्वा गत्वा जिनागारे पूजयित्वा जिनान्। भोजनानन्तरं जिन-चेश्मनि गन्तव्यम्। त्रयोदश्यां सम्यग्दर्शनपूजा चतुर्दश्यां सम्य-ग्ज्ञानपूजा पौर्णमास्यां सम्यक्चारित्रपूजा आश्विनप्रतिपदि महार्घ्यमेकमुक्तं पूर्णाभिषेकश्च पञ्चामृतैः करणीयः, चर-स्थिरबिम्बानाम्॥

अर्थ—रत्नत्रय व्रतको कहते हैं—भाद्रपद शुक्ल में द्वादशी तिथिको स्नान कर जिनालयमें जाकर जिन भगवान्‌की पूजा की जाती है। भोजनके अनन्तर जिन मन्दिरमें जाना चाहिए। वहाँ शास्त्रस्वाध्याय, स्तोत्रपाठ आदि धर्मध्यानमें समयको व्यतीत करना चाहिए। त्रयोदशी तिथिको सम्यग्दर्शनकी पूजा, चतुर्दशीको सम्यग्ज्ञानकी पूजा, पूर्णिमाको सम्यक्‌चारित्रकी पूजा, और आश्विनकृष्णा प्रतिपदाको महार्घ्य, एक बार भोजन तथा चल और अचल जिनबिम्बोंका पञ्चामृत पूर्ण अभिषेक किया जाता है।

तिथिक्षय और तिथिवृद्धि होनेपर रत्नत्रय व्रतकी व्यवस्था

तिथिक्षये चादिदिन चाधिकेऽप्यधिक फलमिति। द्वादश्यधिके पूर्वतिथिनिर्णयग्रहणात् धारणाहः त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, इति तिथित्रयस्य मध्येऽन्यतरस्य वृद्धिगते सति प्रोषधाधिक्य कार्यम्, पारणाधिक्ये नियमो नास्तीति। तिथिह्रासे द्वादशीत व्रत कार्यम्॥

अर्थ—तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहले व्रत किया जाता है और तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन अधिक व्रत करना पड़ता है। एक दिन अधिक व्रत करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होती है। यदि द्वादशी तिथि की वृद्धि हो तो पूर्वतिथि निर्णयके अनुसार व्रत धारण करना चाहिए। यदि त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमासे कोई तिथि बढ़े तो एक अधिक प्रोषध करना चाहिए। यदि पारणाका दिन अर्थात् प्रतिपदाकी वृद्धि हो तो एक दिन अधिक उपवास या एकाशन करनेकी आवश्यकता नहीं है। तिथिक्षय होनेपर द्वादशीसे व्रत करना चाहिए।

काम्यव्रतोंका फल

एत्र पूर्वोक्तमनन्तचतुर्दशीव्रतमपि काम्यमस्ति। काम्य व्रताचरणेन दु सदारिद्र्यादिक विलीयते, धनधान्यादिक वर्द्धते।

चन्दनषष्ठीलब्धिविधानव्रतयोरपि काम्यत्वात् पुत्रपौत्रधनधान्यैश्वर्यविभूतीनां वृद्धिः जायते । विधिपूर्वककाम्यव्रताचरणेन इष्टसिद्धिर्भवति रोगशोकाद्यः पलायन्ते, अमरा किंकरा भवन्ति, किं बहुना ॥ काम्यानि समाप्तानि ॥

अर्थ—इस प्रकार पूर्वोक्त अनन्तचतुर्दशी व्रत भी काम्य व्रत है। काम्यव्रतोंके पालन करनेसे दुःख, दरिद्रता, शोक, व्याधि आदि दूर हो जाती हैं और धन, धान्य, ऐश्वर्य आदिकी वृद्धि होती है। चन्दनषष्ठी और लब्धिविधान व्रतोंको भी काम्यव्रत होनेसे इनका पालन करने पर पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, ऐश्वर्य, विभूति आदिकी वृद्धि होती है। विधिपूर्वक काम्यव्रतोंके आचरणसे इष्ट सिद्धि होती है। रोग, शोक, व्याधि, आपत्ति आदि दूर हो जाता है। अधिक क्या, काम्यव्रतोंके आचरणसे देव दास बन जाते हैं, सभी प्रकारकी कामनाएँ सफल हो जाती हैं।

तात्पर्य यह है कि काम्यव्रत शब्दका अर्थ ही है कि जो व्रत किसी कामनासे किया जाता है तथा किसी प्रकारकी अभिलाषाको पूर्ण करता है, वह काम्य है। इस प्रकार काम्यव्रतोंका वर्णन पूर्ण हुआ।

अकाम्यव्रतोंका वर्णन

अथाकाम्य लक्षणपंक्तिसंज्ञक मेरुपंक्तिसंज्ञक नन्दीश्वरपंक्तिसंज्ञक पल्यव्रतविधानमित्यादिकं ज्ञेयम् । आर्षग्रन्थेषु कथाकोषादिषु स्वरूपं ज्ञातव्यम् । अत्र तु विस्तारभयान्न प्रतन्यते, इति अकाम्यानि समाप्तानि ॥

अर्थ—लक्षणपंक्ति, विमानपंक्ति, मेरुपंक्ति, नन्दीश्वरपंक्ति, पल्य व्रतविधान आदि अकाम्यव्रत हैं। आर्ष ग्रन्थ कथाकोष आदिमें इनका स्वरूप बताया गया है, वहींसे अवगत करना चाहिए। यहाँ विस्तार भयसे नहीं लिखा गया है। इस प्रकार अकाम्य व्रतोंका निरूपण समाप्त हुआ।

विवेचन—स्वर्गके विमानोंमें ६३ पटल हैं। एक-एक पटलकी अपेक्षा चार-चार उपवास और एक-एक बेला करना चाहिए। इस

प्रकार ६३ पटलोंकी अपेक्षा कुल २५२ उपवास और ६३ बेला तथा अन्तमें एक तेला करके व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है। इस व्रतको समाप्त करनेमें ६९७ दिन लगते हैं। यह व्रत सार किया जाता है। यों तो इसका प्रारम्भ किसी भी महीनेमें किया जा सकता है, पर श्रावणमें इसे प्रारम्भ करना अच्छा होता है। यदि श्रावण कृष्ण प्रतिपदाको आरम्भ किया तो प्रथम उपवास, अनन्तर पारणा, द्वितीय उपवास अनन्तर पारणा, तृतीय उपवास अनन्तर पारणा, चतुर्थ उपवास अनन्तर पारणा, इसके पश्चात् एक बेला उपवास किया जायगा। इस प्रकार चार उपवास चार पारणाएँ और एक बेला प्रथम पटल सम्बन्धी किये जायँगे। इसी तरह ६३ पटलोंके उपवास और पारणाएँ होंगी, अन्तमें एक तेला कर व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है। अतः कुल उपवास ६३ × ४ = २५२ दिन, ६३ बेला = ६३ × २ = १२६ दिन, एक तेला = ३ दिन। २५२ + १२६ + ३ = ३८१ उपवासके दिन। पारणाएँ २५२ + ६३ बेलाके अनन्तर + १ तेलाके अनन्तर = ३१६ पारणा के दिन ३८१ + ३१६ = ६९७ दिन इस व्रतको पूर्ण करनेमें लगते हैं। इस व्रतके लिए किसी तिथिका विधान नहीं है।

पल्यविधान व्रतमें एक वर्षमें ७२ उपवास किये जाते हैं। प्रथम उपवास आश्विन वदी षष्ठीको किया जाता है, द्वितीय आश्विन वदी त्रयोदशीको, तृतीय बेला आश्विन सुदी एकादशी और द्वादशीको किया जाता है। इस प्रकार आगे आगे भी उपवास और बेला किये जाते हैं। क्रम निम्न प्रकार है—

आश्विन वदी	६ तिथि	उपवास	सुदी	३	उपवास
„ „	१३	उपवास	सुदी	१२	उपवास
„ सुदी	११,१२	बेला—दो दिनका उपवास	मार्गशीर्ष वदी	११	उपवास
			„ सुदी	३	उपवास
„ सुदी	१४	उपवास	सुदी	१२	उपवास
कार्त्तिक वदी	१२	उपवास	पौष वदी	२	उपवास

पौष वदी अमावस्या उपवास
,, सुदी ५ उपवास
,, सुदी ७ उपवास
,, पूर्णिमा उपवास
माघ वदी ४ उपवास
,, ७ उपवास
,, १४ उपवास
,, सुदी ७-८ बेला—दो दिनका उपवास
,, १० उपवास
फाल्गुन वदी ५ ६ बेला—दो दिनका उपवास
फाल्गुन सुदी १ उपवास
,, ११ उपवास
चैत्र वदी १-२ बेला-दो दिनका उपवास
,, ४ उपवास
,, ६ उपवास
,, ८ उपवास
,, ११ उपवास
,, सुदी ७ उपवास
,, १० उपवास
वैशाख वदी ४ उपवास
,, ,, १० उपवास
,, सुदी २-३ बेला-दो दिनका उपवास
,, ,, ० उपवास
,, ,, १३ उपवास

ज्येष्ठ वदी १० उपवास
,, ,, १३ १४ ३० तेला-तीन दिनका उपवास
ज्येष्ठ सुदी ८ उपवास
,, १० उपवास
,, १५ उपवास
आषाढ़ वदी १० उपवास
,, ,, १३ १४ ३० तेला-तीन दिनका उपवास
,, सुदी ८ उपवास
,, ,, १० उपवास
,, ,, १५ उपवास
श्रावण वदी ४ उपवास
,, ,, ६ उपवास
,, ,, ८ उपवास
,, ,, १४ उपवास
,, सुदी ३ उपवास
,, ,, १५ उपवास
भादों वदी २ उपवास
भादों वदी ६-७ बेला-दो दिन का उपवास
,, १२ उपवास
भादों सुदी ५-६ ७ तेला-तीन दिनका उपवास
,, ,, ९ उपवास
,, ,, ११ १२ १३ तेला-तीन दिनका उपवास
,, ,, १५ उपवास

इस प्रकार कुल ४८ उपवास, ४ तेला और ६ बेला किये जाते हैं। अतएव ४८+१२+१२ = ७२ उपवास होते हैं। व्रतके दिन गृहारम्भका त्याग कर धर्मध्यान पूर्वक समयको बिताया जाता है। शेष अवशिष्ट व्रतोंका निर्णय पहले किया जा चुका है।

उत्तम फलदायक व्रतोंका निर्देश

अथोत्तमार्थानि रत्नत्रयषोडशकारणाष्टाह्निकदशलाक्षणिकपञ्चकल्याणकमहापञ्चकल्याणकसिंहनिष्क्रीडितश्रुतज्ञानसूत्रजिनेन्द्रमाहात्म्यत्रिलोकसारघातिक्षयध्यानपङ्क्तिचारित्रशुद्धिगुणपङ्क्तिप्रमादपरिहारसंयमपङ्क्तिप्रतिष्ठाकारणमहोत्सवादीनि व्रतानि उत्तमार्थानि ज्ञेयानि। एतेषां विशेषस्तु आर्षग्रन्थेभ्यो ज्ञेयः।

अर्थ—रत्नत्रय, षोडशकारण, अष्टाह्निका, दशलक्षण, पञ्चकल्याणक, महापञ्चकल्याणक, सिंहनिष्क्रीडित, श्रुतज्ञानसूत्र, जिनेन्द्रमाहात्म्य, त्रिलोकसार, घातिक्षय, ध्यानपङ्क्ति चारित्रशुद्धि, गुणपङ्क्ति, प्रमादपरिहार, संयमपङ्क्ति, प्रतिष्ठाकारणमहोत्सव और सन्यासमहोत्सव आदि व्रत उत्तमार्थसाधक होते हैं। इनका विशेष वर्णन आर्षग्रन्थोंसे अवगत करना चाहिए।

विवेचन—श्रुतज्ञान व्रतमें सोलह प्रतिपदाओंके सोलह उपवास, तीन तृतीयाओंके तीन उपवास, चार चतुर्थियोंके चार उपवास, पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, छ षष्ठियोंके छ उपवास, सात सप्तमियोंके सात उपवास, आठ अष्टमियोंके आठ उपवास, नव नौमियोंके नौ उपवास, बीस दशमियोंके बीस उपवास, ग्यारह एकादशियोंके ग्यारह उपवास, बारह द्वादशियोंके बारह उपवास, तेरह त्रयोदशियोंके तेरह उपवास, चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास, पन्द्रह पूर्णमासियोंके पन्द्रह उपवास एवं पन्द्रह अमावस्याओंके पन्द्रह उपवास किये जाते हैं।

पञ्चकल्याणक व्रतमें अवसर्पिणीके चौबीस तीर्थंकरोंके पञ्चकल्याणक हों, उन उन तिथियोंमें उपवास करने चाहिए।

पञ्चकल्याणक व्रत-तिथि-बोधक चक्र

तीर्थंकर	गर्भकल्याणक	जन्मकल्याणक	तपकल्याणक	ज्ञानकल्याणक	निर्वाणकल्याणक
१ ऋषभनाथ	आषाढ वदी २	चैत्र वदी ९	चैत्र वदी ९	फाल्गुन वदी ११	माघ वदी १४
२ अजितनाथ	ज्येष्ठ वदी ३०	पौष सुदी १०	पौष सुदी ९	पौष सुदी ११	चैत्र सुदी ५
३ संभवनाथ	फाल्गुन वदी ८	मार्गशीर्ष सुदी १५	मार्गशीर्ष सुदी १५	कार्त्तिक वदी ४	चैत्र सुदी ६
४ अभिनन्दननाथ	वैशाख सुदी ६	पौष सुदी १२	पौष सुदी १२	पौष सुदी १४	वैशाख सुदी ६
५ सुमतिनाथ	श्रावण सुदी २	वैशाख वदी १०	वैशाख सुदी ९	चैत्र सुदी ११	चैत्र सुदी ११
पद्मप्रभ	माघ वदी ६	कार्त्तिक वदी १३	मार्गशीर्ष वदी १०	चैत्र सुदी १५	फाल्गुन वदी ४
सुपार्श्वनाथ	भादों सुदी ६	ज्येष्ठ सुदी १२	ज्येष्ठ सुदी १२	फाल्गुन वदी ६	फाल्गुन वदी ७
चन्द्रप्रभ	चैत्र वदी ५	पौष वदी ११	पौष वदी १२	फाल्गुन वदी ७	फाल्गुन वदी ७
पुष्पदन्त	फाल्गुन वदी ९	मार्गशीर्ष सुदी ९	मार्गशीर्ष सुदी ९	कार्त्तिक सुदी २	भादों सुदी ८
शीतलनाथ	चैत्र वदी ८	पौष वदी १२	पौष वदी १२	पौष वदी १४	आश्विन सुदी ८

११ श्रेयान्सनाथ	ज्येष्ठ वदी ६	फाल्गुन वदी ११	फाल्गुन वदी ११	माघ वदी ३०	श्रावण सुदी १५
वासुपूज्य	आषाढ सुदी ६	फाल्गुन वदी १४	फाल्गुन वदी १४	माघ सुदी २	भादों सुदी १४
ाथ	ज्येष्ठ वदी १०	पौष सुदी ४	पौष सुदी ४	माघ सुदी ६	आषाढ वदी ८
ाथ	कार्त्तिक वदी १	ज्येष्ठ वदी १२	ज्येष्ठ वदी १२	चैत्र वदी ३०	चैत्र वदी ३०
ाथ	वैशाख सुदी १३	पौष सुदी १३	पौष सुदी १३	पौष सुदी १५	ज्येष्ठ सुदी ४
१६ शान्तिनाथ	भादो वदी ७	ज्येष्ठ वदी १४	ज्येष्ठ वदी ४	पौष सुदी ११	ज्येष्ठ वदी १४
१७ कुन्थुनाथ	श्रावण वदी १०	वैशाख सुदी १	वैशाख सुदी १	चैत्र सुदी ३	वैशाख सुदी १
१८ अरहनाथ	फाल्गुन सुदी ३	मार्गशीर्ष सुदी १४	मार्गशीर्ष सुदी १०	कार्त्तिक सुदी १२	चैत्र वदी ३०
१९ मल्लिनाथ	चैत्र सुदी १	मार्गशीर्ष सुदी ११	मार्गशीर्ष सुदी ११	मार्गशीर्ष सुदी ११	फाल्गुन सुदी ५
२० मुनिसुव्रतनाथ	श्रावण वदी २	चैत्र वदी १०	वैशाख वदी १०	वैशाख वदी ९	फाल्गुन वदी १२
२१ नमिनाथ	आश्विन वदी २	आषाढ वदी १०	आषाढ वदी १०	मार्गशीर्ष सुदी ११	वैशाख वदी १४
२२ नेमिनाथ	कार्त्तिक सुदी ६	श्रावण सुदी ६	श्रावण सुदी ६	आश्विन सुदी १	आषाढ सुदी ७
२३ पार्श्वनाथ	वैशाख वदी २	पौष वदी ११	पौष वदी ११	चैत्र वदी ४	श्रावण सुदी ७
वीर	आषाढ सुदी ६	चैत्र सुदी १३	कार्त्तिक वदी १३	वैशाख सुदी १०	कार्त्तिक वदी ३०

[illegible]

पञ्चपरमेष्ठी व्रत

अरिहन्तके ६४ गुणोंके लिए चार चतुथियों के चार, आठ अष्टमियों-के आठ उपवास, बीस दशमियों के बीस उपवास और चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास किये जाते हैं। सिद्ध परमेष्ठीके आठ मूल गुण-के आठ अष्टमियोंके आठ उपवास किये जाते हैं। आचार्य के ३६ मूल गुणोंके लिए बारह द्वादशियोंके बारह उपवास, छ षष्ठियोंके छ उपवास, पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, दस दशमियोंके दस उपवास और तीन तृतीयाओंके तीन उपवास, इस प्रकार कुल ३६ उप-वास किये जाते हैं। उपाध्याय परमेष्ठीके २५ मूल गुण होते हैं, उनके लिए ग्यारह एकादशियोंके ग्यारह उपवास और चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास सम्पन्न किये जाते हैं। साधु परमेष्ठीके २८ मूल गुण हैं। इनके लिए पन्द्रह पञ्चमियोंके पन्द्रह उपवास, छ षष्ठियोंके छ उपवास एव सात प्रतिपदाओंके सात उपवास किये जाते हैं। इस प्रकार कुल १४३ उपवास करनेका विधान है। जिस परमेष्ठीके मूल गुणोंके उपवास किये जा रहे हों, व्रतके दिन उस परमेष्ठीके गुणोंका चिंतन करना तथा 'ॐ ह्रीं अर्हद्भ्यो नम , ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो नम , ॐ ह्रीं आचार्य-भ्यो नम , ॐ ह्रीं उपाध्यायेभ्यो नम , ॐ ह्रीं सर्वसाधुभ्यो नम.' का क्रमश जाप करना चाहिए।

सर्वार्थसिद्धि व्रत

कार्तिक सुदी अष्टमीसे लगातार आठ दिन उपवास किये जाते हैं तथा कार्तिक सुदी सप्तमीको एकाशन कर मार्गशीर्ष वदी प्रतिपदाको भी पुन एकाशन करनेका विधान है। इस व्रतमें लगातार आठ दिनतक उपवास करना चाहिए। व्रतके दिनोंमें 'ओंसिद्धाय नम ' मन्त्रका जप किया जाता है।

धर्मचक्र व्रत

धर्मचक्र व्रत २२ दिनोंमें पूर्ण होता है। इसमें १६ उपवास और ६ पारणाएँ सम्पन्न होती हैं। प्रथम उपवास, पारणा, पश्चात् दो उप-

वास पारणा, अनन्तर तीन उपवास पारणा, तत्पश्चात् चार उपवास पारणा, पश्चात् पाँच उपवास पारणा एवं अन्तमें एक उपवास और पारणा की जाती है। धर्मचक्र व्रतके दिनोंमें 'ॐ ह्रीं अरिहन्तधर्मचक्राय नमः' मन्त्रका जाप गुग्गुल और धूप देकर किया जाता है।

नवनिधि व्रत

नवनिधि व्रतमें २१ उपवास किये जाते हैं। चौदह चतुर्दशियोंके चौदह, नौ नवमियोंके नौ, तीन तृतीयाओंके तीन एवं पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास किये जाते हैं। प्रत्येक उपवासके अनन्तर एकाशन करनेका विधान है। इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं अक्षयनिधिप्राप्तेभ्यो जिनेन्द्रेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप किया जाता है।

शील व्रत

शील व्रत एक वर्षमें पूर्ण किया जाता है। वर्षके ३६० दिनोंमें एकान्तरसे उपवास करने चाहिए। सम्पूर्ण शीलका पालन करना इस व्रतके लिए अनिवार्य है। बात यह है कि देवी, मनुष्यणी, तिर्यञ्चणी और अचेतन इन चार प्रकारकी स्त्रियोंको पाँच इन्द्रिय तथा मन, वचन, काय और कृत कारित अनुमोदनासे गुणा करे तो १८० दिन उपवास के आते हैं। अर्थात् ४ × ५ × ३ × ३ = १८० दिन उपवास और १८० दिन पारणा की जाती है अतः वर्ष भर एकान्तर रूपसे उपवास और एकाशन करने चाहिए। इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं समस्तशीलव्रतमण्डिताय श्रीजिनाय नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए।

त्रेपन क्रिया व्रत

इस व्रतमें श्रावकके आठ मूल गुणोंकी विशुद्धिके निमित्त आठ अष्टमियोंके आठ उपवास, पाँच अणुव्रतोंकी विशुद्धिके लिए पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, तीन गुणव्रतोंकी विशुद्धिके लिए तीन तृतीयाओंके तीन उपवास, चार शिक्षाव्रतोंकी विशुद्धिके लिए चार चतुर्थियोंके चार उपवास, बारह तपोंकी विशुद्धिके लिए बारह द्वादशियोंके बारह उपवास, साम्य

भावकी प्राप्तिके निमित्त एक प्रतिपदाका उपवास, ग्यारह प्रतिमाओंकी विशुद्धिके लिए ग्यारह एकादशियाके ग्यारह उपवास, चार प्रकारके दानोंके देनेके निमित्त चार चतुर्थियोंके चार उपवास, जल छाननेकी क्रियाकी विशुद्धिके लिए प्रतिपदाका एक उपवास तथा निशिभोजन त्यागकी विशुद्धिके लिए प्रतिपदाका एक उपवास एवं रत्नत्रयकी विशुद्धि के लिए तीन तृतीया तिथियोंके तीन उपवास, इस प्रकार कुल ५३ उपवास किये जाते हैं। व्रतके दिनोंमें णमोकारमन्त्रका जाप प्रतिदिन १००८ बार वा कमसे कम तीन मालाओं प्रमाण करना चाहिए। व्रतके दिनोंमें भी शीलव्रतका पालन करना आवश्यक है।

कर्मचूर व्रत

कर्मचूर या कर्मक्षय व्रत २९६ दिनोंमें पूरा किया जाता है। इस व्रतमें १४८ कर्मप्रकृतियोंको नष्ट करनेके निमित्त १४८ उपवास किये जाते हैं। प्रत्येक उपवासके अनन्तर पारणा की जाती है। यह व्रत लगातार २९६ दिनतक एकान्तर रूपसे उपवास और पारणाका क्रम लगाकर किया जाता है। व्रतके दिनमें 'ॐ सर्वकर्मरहिताय सिद्धाय नमः' अथवा णमोकार मन्त्रका जाप करनेका नियम है। व्रतके दिनोंमें पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत एवं सम्यक् तपका आचरण तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेका विधान है।

लघु सुखसम्पत्ति व्रत

इस व्रतमें १२० उपवास किये जाते हैं। प्रतिपदाका एक, दो द्वितीयाओंके दो, तीन तृतीयाओंके तीन, चार चतुर्थियोंके चार, पाँच पञ्चमियोंके पाँच, छ षष्ठियोंके छ, सात सप्तमियोंके सात, आठ अष्टमियों के आठ, नौ नवमियोंके नौ, दश दशमियोंके दश, ग्यारह एकादशियोंके ग्यारह, बारह द्वादशियोंके बारह, तेरह त्रयोदशियोंके तेरह, चौदह चतुर्दशियोंके चौदह एवं पन्द्रह पूर्णमासियोंके पन्द्रह इस प्रकार एक सौ बीस उपवास सम्पन्न किये जाते हैं। १+२+३+४+५+६+७+८+९+१०+११+१२+१३+१४+१५ = १२० उपवास। उपवासके दिनोंमें

श्रावकके उत्तरगुणोंका पालना और शीलव्रत धारण करना आवश्यक है।

बारहसौ चौंतीस व्रत या चारित्रशुद्धि व्रत

यह व्रत भादों सुदी प्रतिपदासे आरम्भ होता है, इसमें १२३४ उपवास तथा एकाशन करने पड़ते हैं। दस वर्ष और साढ़े तीन माहमें पूर्ण किया जाता है। यदि एकान्तर व्रत किया जाय तो पाँच वर्ष पौने दो माहमें पूर्ण होता है। उपवासके अनन्तर पारणाके दिन रस त्याग कर या नीरस भोजन करे, आरम्भ परिग्रहका त्याग कर भक्ति पूजामें निमग्न रहे। 'ॐ ह्रीं असि आ उ सा चारित्रशुद्धिव्रतेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप प्रतिदिन १०८ बार दिनमें तीन बार करे और व्रत पूर्ण होनेपर उद्यापन करनेका विधान है।

इष्टसिद्धिकारक निःशल्य अष्टमी व्रत

भादों सुदी अष्टमीको चारों प्रकारके आहारका त्याग कर श्री जिनालयमें जाकर प्रत्येक पहर अभिषेक और पूजन करे। दिनमें चार बार पूजन और अभिषेक किये जाते हैं। त्रिकाल सामायिक और स्वाध्याय करने चाहिए। रातको जागरणपूर्वक स्तोत्र भजन पढ़ते हुए बिताना चाहिए। पश्चात् नवमीको अभिषेक पूजन करके अतिथिको भोजन कराके स्वयं भोजन करे। चारों प्रकारके संघको चतुर्विध दान देना चाहिए। यह व्रत १६ वर्षतक किया जाता है, तत्पश्चात् उद्यापन करनेका विधान है। इस व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

कोकिलापञ्चमी व्रत

आषाढ़ बदी पञ्चमीसे पाँच मासतक प्रत्येक कृष्णपक्षकी पञ्चमीको पाँच वर्षतक यह व्रत किया जाता है। इस व्रतमें उपवासके दिन चारों प्रकारके आहारका त्याग कर पूजन, अभिषेक, शास्त्र स्वाध्याय एवं धर्म

ध्यान करने चाहिए। 'ओं ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः' मन्त्रका जाप इस व्रतमें करना चाहिए।

जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति व्रत

अरिहन्त भगवान्‌के गुणोंका चिन्तन करते हुए दस जन्म, दस केवलके अतिशयके कारण बीस दशमियाकी बीस उपवास, देवकृत चौदह अतिशयके कारण चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास, आठ प्रातिहार्यके कारण आठ अष्टमियोंके आठ उपवास, सोलह कारण भावनाकी प्राप्तिके लिए सोलह प्रतिपदाओंके सोलह उपवास, पचकल्याणकी प्राप्ति के निमित्त पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, इस प्रकार कुल २० दशमी + १४ चतुर्दशी + ८ अष्टमी + १६ प्रतिपदा + ५ पञ्चमी = ६३ प्रोषधोपवास किये जाते हैं।

गुरुके समक्ष व्रत ग्रहण करनेका आदेश

व्रतादानव्रतत्याग कार्यो गुरुसमक्षत ।
नो चेत्तन्निष्फल ज्ञेय कृत शिक्षादिक भवेत् ॥
यो स्वय व्रतमादत्ते स्वय चापि विमुञ्चति ।
तद्व्रत निष्फल ज्ञेय साक्ष्याभावात् कृत फलम् ॥
गुरुप्रदिष्ट नियम सर्वकार्याणि साधयेत् ।
यथा च भूतिकाद्रोण विद्यादानपरो भवेत् ॥
गुर्वभावतया त्यक्त व्रत किं कार्यकृद् भवेत् ।
केवल मृतिकावेश्म किं कुर्यात् कर्तृवर्जितम् ॥
अतो व्रतोपदेशस्तु ग्राह्यो गुर्वाननात् खलु ।
त्याज्यश्चापि विशेषेण तस्य साक्षितया पुन ॥
क्रममुल्लध्य यो नारी नरो वा गच्छति स्वयम् ।
स एव नरक याति जिनाज्ञागुरुलोपत ॥

इति आचार्यसिंहनन्दिविरचित व्रततिथिनिर्णय समाप्त ॥

अर्थ—गुरुके समक्षसे ही व्रतोंका ग्रहण और व्रताका त्याग करना चाहिए। गुरुकी साक्षीके बिना ग्रहण किये और त्यागे व्रत निष्फल

होते हैं, अतः उन व्रतोंसे धन धान्य, शिक्षा आदि पदार्थकी प्राप्ति नहीं हो सकती है, जो स्वयं व्रतोंको ग्रहण करता है और स्वयं ही व्रतोंको छोड़ देता है, उसके व्रत निष्फल हो जाते हैं। गुरुकी साक्षी न होनेसे व्रतोंका क्या फल होगा? अर्थात् कुछ भी नहीं। गुरुसे यथाविधि ग्रहण किये गये व्रत नियम ही सभी कार्योंको सिद्ध कर सकते हैं। जैसे भिल्लराज द्रोणाचार्यकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर उसे गुरु मानकर विद्या-साधन करता था, उसे इस मूर्तिकामय गुरुकी कृपासे विद्याएँ सिद्ध हो गयी थीं, इस प्रकार गुरुकी कृपासे ही व्रत सफल होते हैं। बिना गुरुकी भावनाके ग्रहण किये गये व्रत कुछ भी कार्यकारी नहीं हो सकते हैं। जैसे मिट्टीका घर बिना छतके निरर्थक है, उसी प्रकार गुरुके साक्ष्यके बिना स्वयं व्रत भी निष्फल हैं। अतएव गुरुके मुखसे व्रतोंको ग्रहण करना चाहिए तथा उन्हींकी साक्षी पूर्वक व्रतोंका छोड़ना चाहिए। जो स्त्री या पुरुष क्रमका उल्लंघन कर स्वेच्छासे व्रत करते हैं, वे गुरुकी अवहेलना एवं जिनाज्ञाका लोप करनेके कारण नरकमें जाते हैं।

विवेचन—व्रत सर्वदा गुरुके सामने जाकर ग्रहण करने चाहिए। यदि गुरु न मिलें तो किसी त्यागी विद्वान्, ब्रह्मचारी, व्रती या अन्य धर्मात्मासे व्रत लेना चाहिए। तथा व्रतोंको गुरु या विद्वान्, ब्रह्मचारीके समक्ष छोड़ना भी चाहिए। यदि गुरु, विद्वान्, ब्रह्मचारी आदिका सान्निध्य भी प्राप्त न हो सके तो जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिमाके सामने ग्रहण करने तथा छोड़ने चाहिए। बिना साक्ष्यके व्रतोंका यथार्थ फल प्राप्त नहीं होता है। लोकमें एक उदाहरण प्रसिद्ध है कि एक सेठके मकान बन रहा था, उसमें ईंट, चूना, सीमेण्ट ढोनेका कार्य बहु मजदूर कर रहे थे। एक मजदूर चुपचाप बिना अपना नाम लिखाये काम करने लगा, दिन भर कठोर श्रम किया। सन्ध्या समय जब सबको मजदूरी दी जाने लगी तो वह परिश्रमी मजदूर भी मुनीमके सामने पहुँचा और कहने लगा—सरकार मैंने दिनभर सबसे अधिक श्रम किया है, अतः मुझे अधिक मजदूरी मिलना चाहिए। मुनीमने रजिस्टरसे मिलाकर सभी नामदर्ने

मज़दूरोंको मज़दूरी दे दी, परन्तु जिसने कठोर श्रम किया और अपना नाम रजिस्टरमें दर्ज नहीं कराया था, उसे मज़दूरी नहीं दी। मुनीमने साफ़ साफ़ कह दिया कि तुम्हारा नाम रजिस्टरमें नोट नहीं है, अत तुम्हें मज़दूरी नहीं दी जा सकती। इसी प्रकार जिन्होंने गुरुकी साक्षीसे व्रत ग्रहण नहीं किया है, उनके फलकी प्राप्ति नहीं होती है, अथवा अत्यल्प फल मिलता है। अतएव स्वेच्छासे कभी भी व्रत ग्रहण नहीं करने चाहिए।

इस प्रकार आचार्यसिंहनन्दिविरचित व्रततिथिनिर्णय समाप्त हुआ।